उपेक्षिता

(सामाजिक उपन्यास)

प्रकाशक

प्रत्यूष-प्रकाशन

रामबाग, कानपुर।

लेखक :—

बाल्मीकि त्रिपाठी

प्रकाशन-काल :—

१९६०

मूल्य :—

४ रुपये ५० नये पैसे

मुद्रक :—

अमर मुद्रण कार्यालय

हर्षनगर, कानपुर।

प्रकाशक :—

प्रत्यूष-प्रकाशन

रामबाग, कानपुर।

लेखक :—

बाल्मीकि त्रिपाठी

प्रकाशन-काल :—

१९६०

मूल्य :—

४ रुपये ५० नये पैसे

मुद्रक :—

अमर मुद्रण कार्यालय

हर्षनगर, कानपुर।

पूज्य अग्रज,

पं० योगेश्वर प्रसाद त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य

१

"अरे, कहाँ हो ?" रुग्ण पुत्र के बगल में बैठी हुई बिमला की घबड़ाहट फूट पड़ी परन्तु प्रत्युत्तर में कुछ भी सुनाई न दिया।

विमला बैठी न रह सकीं और बाहर की ओर दौड़ पड़ीं। मुन्ना कई दिनों से रोगग्रस्त था। उसकी परिचर्या में लगे रहने के कारण विमल बाबू अनेक रातों से सो न पाये थे, इसलिये बगल के कक्ष में आराम कुरसी पर बैठते ही झपकी लग गई थी। बिमला ने जब पति को निद्रा निमग्न पाया तो पकड़ कर हिलाया। विमल बाबू चौंक पड़े और पत्नी की ओर देखते हुये पूंछा—"क्या है ?"

"मुन्ने को न जाने क्या होता जा रहा है।" विमला की घबराहट व्यक्त हो गई।

कुर्सी से उठते हुये विमल बाबू ने कहा—"अभी-अभी तो मैं उसे ठीक छोड़ आया था। क्या होगया इतनी ही देर में ?"

"अब तो वह न आँखें खोलता है, न मुँह।" पत्नी ने पति का अनुसरण करते हुये कहा।

विमल बाबू ने पुत्र की स्थिति पत्नी के कथनानुसार ही पाया। उनके पैरों के नीचे से पृथ्वी सरक गई। घबराहट के चिन्ह मुख मुद्रा पर प्रगट होने लगे। हाथ-पैर फूल गये। उन्हें अपना एक मात्र पुत्र जाता हुआ दिखाई देने लगा। विमला कभी पति की ओर देखती तो कभी बच्चे की ओर। विमल बाबू टकटकी लगाये मुन्ने की ओर देखें जा रहे थे। पत्नी ने जिज्ञासा व्यक्त की—"आप खड़े-खड़े देख क्या रहे हैं ? जल्दी से किसी डाक्टर को बुला लाइये न।"

पत्नी की बात सुनकर विमल बाबू की कर्तव्य बुद्धि जाग्रत हो उठी। उन्होंने तत्क्षण कहा—"अभी लाता हूं डाक्टर को।"

पति के जाने के उपरान्त विमला पुनः पुत्र के मुँह की ओर देखने लगीं। मुन्ना अचेत पड़ा था। माँ के अनेक प्रयास करने पर भी वह अपने रोग पर विजय प्राप्त करके न बोल सका। कुछ ही समय के भीतर विमल बाबू ने डाक्टर के साथ भीतर प्रवेश किया। डाक्टर ने बगल में पड़ी कुरसी पर बैठकर मुन्ने को भली भाँति देखा। नेत्र खोलने की चेष्टा की, मुँह खोलने के लिये चम्मच भी डाला; परन्तु सब प्रयास विफल हुये। अपनी जानकारी के लिये उन्होंने दो-एक प्रश्न भी किये। प्रश्नों और मुन्ने की स्थिति का अध्ययन करने के पश्चात वह बोले—
"डा० कान्त को दिखाया है इसे ?"
"जी नहीं।" विमल बाबू ने उत्तर दिया।

"तो फिर उन्हें शीघ्र बुलाकर दिखा दीजिये। कन्डीशन काफी सीरियस है।" कहकर डाक्टर उठ खड़े हुये और बाहर की ओर चल दिये। विमल बाबू भी डाक्टर साहब को कार तक पहुँचाने गये। दवाओं का वैग कर की पिछली सीट पर रखते हुये, विमल बाबू ने प्रश्न किया—
"डाक्टर साहब ! आप कुछ नहीं कर सकते ?"

"मरीज को अपने हाथ में लेकर मैं आपको धोखे में नहीं रखना चाहता। मेरी ताकत के बाहर हो चुका है अब वह।"
बिमल बाबू अपराधी की भाँति धीरे-धीरे भीतर आये। उन्हें अपनी ओर आता हुआ देखकर दूर से ही पत्नी ने प्रश्न किया—"कान्त को बुलाने नहीं गये क्या ?"

दो कदम और आगे बढ़कर विमल बाबू ने उत्तर दिया—"नहीं।"
"देखिये, व्यर्थ में समय न नष्ट करिये। जल्दी जाकर बुला लाइये।"
"अब किसी के बुलाने से कुछ नहीं होने का। जब इतने बड़े-बड़े डाक्टर कुछ न कर सके तो वही क्या कर लेगा ?"
"हो सकता है कि उसी के हाथ मुन्ने को अच्छा होना हो।"
"तुम भी न जाने कैसी बातें करती हो। कहीं कुछ मनुष्य के किये धरे होता है। ईश्वरेच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं होने का।"

"इस समय वाद-विवाद का समय नहीं है। आप कान्त को बुलाने जाते हैं या नहीं ?"
"क्या मेरा निर्णय नहीं जानती ?"
"जानती हूं, परन्तु क्रोधावेश में किया हुआ निर्णय अविवेकपूर्ण भी तो हो सकता है।"
"ऐसा तुम सोच सकती हो, परन्तु मुझे अपने निर्णय के औचित्य पर तनिक भी सन्देह नहीं।"
विमला पति के हठी स्वभाव से परिचित थीं। वह नहीं चाहती थीं कि किसी भी प्रकार पति के साथ वाद-विवाद में समय नष्ट हो। उस समय एक-एक क्षण बहुमूल्य था। मृत्यु मुन्ने के सिर पर मंडरा रही थी। कान्त को बुलाकर मुन्ने को न दिखाने का तात्पर्य था उसे मौत के मुँह में जान-बूझकर ढकेलना। मुन्ने की स्थिति का ध्यान आते ही ममत्व जाग उठा। नेत्र अश्रुपूरित हो गये। करुण स्वर में याचना करते हुये विमला ने पति से कहा—"इस समय ईश्वर के लिये कान्त को बुला लाइये वरना............।"
"मैं सब कुछ कर सकता हूं, लेकिन उसके पास नहीं जा सकता।"
"देखिये हठ न करिये। हठ के दुष्परिणाम की कल्पना मात्र कितनी भयानक है—आप क्यों नहीं सोचते।"
"मुन्ने की माँ! तुम मेरे स्वभाव से भली भाँति परिचित हो। मैंने अपने जीवन में अपने निर्णय के विरुद्ध कभी आचरण नहीं किया। अगर तुम यह सोच रही हो कि तुम्हारे आँसू मुझे विचलित कर देंगे, तो तुम भ्रम में हो।"
"वह तो मैं जानती हूं, परन्तु मैं इस समय आपसे मुन्ने की भीख माँग रही हूं, मेरी कोख खाली मत होने दीजिये।" साड़ी का पल्ला पति के समक्ष फैलाकर विमला ने अपनी करुणा व्यक्त की।
पत्नी की याचना ने एक क्षण के लिये विमल बाबू को विचलित कर दिया, परन्तु कान्त का ध्यान आते ही वह पुनः पूर्व विचार पर अड़

गये। पत्नी को पकड़ कर सांत्वनापूर्ण स्वर में बोल उठे—"क्या तुम समझती हो कि मैं मुन्ने को नहीं चाहता, क्या मैं चाहता हूं कि मेरा एकमात्र पुत्र काल कवलित हो जाय, क्या तुम्हारी इस प्रार्थना को ठुकराने में मेरा हृदय नहीं फटा जा रहा है, परन्तु मेरी स्थिति पर भी तो विचार करो।"

"तो आप नहीं जायेंगे कान्त को बुलाने ?" विमला के स्वर में दृढ़ता थी।

"तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करती ?"

"क्या रखा है समझने की कोशिश में ? आज चार दिन होगये। मुन्ने की हालत दिन पर दिन गिरती जा रही है। जितने डाक्टर आयें, सबने एक स्वर से कान्त को दिखाने को कहा, लेकिन मैं देख रही हूं कि आप मुन्ने के प्राण लेने पर तुले हैं।"

"यह तुम क्या कह रही हो ? क्या कोई पिता अपने पुत्र का शत्रु हो सकता है ?"

"और शत्रु किसे कहते हैं ? जान-बूझकर पुत्र को मौत के मुंह में ढकेलने वाला क्या पिता हो सकता है ?"

विमला के रुख में परिवर्तन हो चुका था। वह इस समय पति को भिन्न दृष्टि से देख रही थीं। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि विमल बाबू कैसे इतने कठोर हो गये कि उनकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देते। मुन्ने के ऊपर तरस नहीं खाते। ऐसी बात नहीं थी कि वह पत्नी की स्थिति को न समझ रहे हों। उन्होंने मनोविज्ञान में एम० ए० किया था। आई० सी० एस० के पद से अभी पिछले वर्ष ही अवकाश ग्रहण किया था, परन्तु थे प्राचीन भारतीय संस्कृति के उपासक। सनातनी आदर्शों मान्यताओं एवं धारणाओं के विरुद्ध आचरण करना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। एक बार वह जो निर्णय कर लेते उससे उन्हें हटाना किसी भी शक्ति के परे होता था। इस हठवादिता के कारण उन्हें जीवन में अनेक बार पदोन्नति के अवसरों से भी हाथ धोना पड़ा था।

आत्म निर्णय ही उनके लिये सब कुछ था। उसकी रक्षा वह अपने प्राणपण से करते थे। आज भी उनके समक्ष कठिन समस्या थी। एक ओर पुत्र के जीवन का प्रश्न और दूसरी ओर कान्त के प्रति किये गये निर्णय की समस्या। दोनों ही विचारणीय थे। पत्नी का आग्रह भी कम सशक्त न था। ऐसे अवसरों पर प्रायः वह सब कुछ ईश्वर पर छोड़ देते थे। अपना ईश्वरवादी दृष्टिकोण पत्नीं के समक्ष रखते हुये उन्होंने कहा—"देखो विमला! मुन्ने को ईश्वर के भरोसे छोड़ दो। ईश्वरेच्छा के विरुद्ध कान्त तो क्या कोई भी उसे न बचा सकेगा।"

विमल बाबू के ये शब्द विमला के हृदय में तीर की भाँति जा चुभे। वह तिलमिला उठीं। आवेश में आकर सहसा वह बोल पड़ीं—अकर्मण्यता को ईश्वरेच्छा के आवरण से ढकने का ढोंग आप जैसे विवेकी पुरुष को शोभा नहीं देता। अपनी हठवादिता को ईश्वरीय आस्था के रंग में रंग कर और अधिक प्रोज्ज्वल बनाना चाह रहे हैं—लेकिन इससे लाभ?"

"विमला! आज यह तुम्हारी ईश्वर के प्रति अनास्था कैसी?"

"ईश्वर के प्रति अनास्था नहीं, बल्कि ईश्वरवादियों की अकर्मण्यता देखकर मुझे असीम वेदना हो रही हैं। इसी प्रकार संसार में न जाने कितने अत्याचार, अनाचार, दुराचार तथा पापाचार इन ईश्वरवादियों द्वारा हुये हैं। अब मैं आपके अंध विश्वास की अनुगामिनी नहीं बनी रह सकती। आप अपनी ईश्वरेच्छा लिये बैठे रहिये और मैं जाती हूं मुन्ने को लेकर।" कहकर विमला मुन्ने के पास गई, उसे उठाकर कन्धे से लगाया और चल पड़ीं पैदल ही।

विमल बाबू पत्नी को न रोक सके वह उनका जाना खड़े देखते रहे।

२

रात्रि का समय था। विद्युत प्रकाश रात्रि के अंधकार को निगलने की असफल चेष्टा कर रहा था; फिर भी संघर्ष के कारण अंधकार किसी को कष्ट नहीं पहुंचा पा रहा था। प्रकाशित मार्ग पर विमला पुत्र को कंधे से चिपकाये निकल पड़ी थीं। दो-चार कदम ही बढ़ पाईं होंगीं कि एक तांगे वाले ने बगल में आकर आवाज दी—"आइये, तांगे पर बैठ लीजिये माता जी।"

विमला ने ताँगे वाले की ओर एक बार देखा और तांगे में बैठ गईं। तांगे वाले ने घोड़े की लगाम खींची, टिक-टिक की ध्वनि मुँह से उच्चारित की और घोड़ा गतिवान हो उठा। चौराहा पार करने के उपरान्त सड़क की बाईं ओर अग्रसर होते हुये तांगे वाले ने शालीनता पूर्वक पूंछा—"कहां चलना है माता जी?"

"सिविल लाइन्स।" विमला का मौन फूट पड़ा।

उचित मार्ग का अनुसरण कर रहा था उसका घोड़ा। विमला न जाने किन विचारों में खोई हुई थीं कि सहसा ताँगा रुकने के कारण धक्का लगा जिसके परिणाम स्वरूप बिमला की विचारधारा विशृंखलित हो गई। आगे की ओर गरदन घुमाकर विमला ने तांगे वाले से प्रश्न किया—"क्या आ गया सिविल लाइन्स?"

तांगे वाले ने उत्तर दिया—"नहीं, एक आदमी सामने आ गया था इस लिये तांगा एकदम रोकना पड़ा। सिविल लाइन्स का मोहल्ला तो शहर के उस कोने पर है। अभी तो थोड़ी ही दूर आये हैं।" कहकर तांगे वाले ने पुनः घोड़ा बढ़ाया और घोड़ा चिर-परिचित सड़क नापने लगा। चाल साधारण थी। विमला ने एक-आध बार इस बीच में मुन्ने को देखने की चेष्टा की। प्रतिक्षण दुष्परिणाम की कल्पना-मात्र से वह कांप उठतीं। यह जानकर कि अभी आधा रास्ता भी नहीं तय कर पाई हैं—उन्होंने तांगे वाले से दयनीय स्वर में कहा—"मेरा मुन्ना बहुत सख्त बीमार है। जरा, जल्दी पहुंचा दो।"

घोड़े को तेज भगाने के अभिप्राय से उसने एक चाबुक जमाया और घोड़ा सरपट भागने लगा। घोड़े की चाल से संतुष्ट होकर तांगे वाले ने विमला से पूछा—"माता जी! आपने डा० कान्तीनाथ को दिखाया है?"

"क्या तुम उन्हें जानते हो?"

"उन्हें कौन नहीं जानता। कौन डाक्टर है उनकी बराबरी करने वाला इस शहर में? अभी थोड़े ही दिन तो हुये हैं उन्हें इस शहर में आये हुये। लोग कहते हैं कि वह विलायत से पढ़कर आये हैं। माता जी! आपको क्या बताऊँ, न जाने कौन सा जादू है उनके हाथ में कि उनका हाथ लगते ही मरीज भला चंगा दिखने लगता है। अभी परसों की ही तो बात है मेरा छोटा लड़का एकदम बीमार पड़ गया। कै-दस्त शुरू हो गये। घर के बगल में एक डा० साहब को दिखाया। उन्होंने पैसे लेकर दवा दी, लेकिन कुछ भी फायदा न हुआ। उसकी हालत बिगड़ती ही गई। मैंने डा० साहब को फिर दिखाया। उन्होंने उसे देखकर कहा—"इसे डा० कान्तीनाथ के पास ले जाओ। मैं लड़के को लेकर शाम के वक्त डा० साहब के अस्पताल में गया। माता जी! मैं वहां की हालत आपसे क्या कहूं। वहां मरीजों की इतनी भीड़ थी कि बैठने को कौन कहे खड़े होने तक को भी जगह न थी। जैसे तैसे मैं उनके सामने कुछ दूर पर खड़ा हो गया। एक मरीज को देखने के बाद उन्होंने दूसरे मरीज को देखने के लिये जैसे ही गरदन उठाई वैसी ही मेरे लड़के पर उनकी नजर पड़ गई। उन्होंने तुरन्त मुझे हाथ के इशारे से अपनी ओर बुलाया। माता जी! उनका मुझे बुलाना था कि एक सेठ जी ने डाक्टर साहब से कहा—डा० साहब मेरा नम्बर है। पहिले आप मेरे बच्चे को देख लीजिये।"

डा० साहब ने धीरे से कहा—"उसके बच्चे की हालत बहुत ज्यादा खराब मालूम देती है। उसका इन्तजाम करके आपके बच्चे को देखता हूं।"

इस पर सेठ जी ने कहा—"डाक्टर साहब ! आप मुझसे दूने पै
लीजिये, लेकिन मेरे बच्चे को पहले देख लीजिये ।"
सेठ जी का इतना कहना था कि डाक्टर साहब ने सेठ जी की
गौर से देखा और माता जी ऐसी बात कही जैसी मैंने आज तक
भी डाक्टर के मुँह से न सुनी थी ।
"क्या कहा था ?" बिमला ने पूँछा ।
डा० साहब ने कहा—"सेठ जी ! आप पैसे वाले हैं । पैसे वालों के
हजारों डाक्टर हैं । आप पैसे देकर किसी भी डाक्टर को दिखा स
हैं, घर बुला सकते हैं, लेकिन ये ग़रीब बेचारे किसके पास जा
कहाँ जांय ? कौन है इनका जो विना फीस के इनके बच्चों
देखता है ?"
डा० साहब का इतना कहना था कि सेठ जी का मुँह उतर गर
वह चुपचाप वहीं खड़े रहे । मेरे लड़के को उन्होंने अपनी मेज
लिटाने को कहा । मैंने उसे लिटा दिया । उन्होंने उसे देखते ही
एक डांट बताई—"अभी तक कहां रखा इसे । जब लड़का बेकाबू हो
है तब लाया है मेरे पास । अगर मरीज मर जाय तो डाक्टर स
को बुरा भला कहेंगे । माता जी ! वह मुंह से यह सब कह
थे लेकिन उनके हाथ लड़के को देखने में फँसे थे । उन्होंने एक
से कुछ दवा देने को कहा । उसने दवा पिलाई । दवा पीते ही
ने आँखें खोल दीं । उसके आँखें खोलते ही उन्होंने मुझसे कहा
"जाओ इसे बाहर ले जाकर बैठो । अभी घर मत ले जाना । एक
मैं इसे फिर देखूंगा ।" थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर देखा और दवा
दवा लेने के बाद मैंने दो रुपये का नोट उनकी ओर बढ़ाया । उन
नोट की ओर देखकर मेरी ओर देखा और मुस्करा कर पूंछा—"
काम करते हो ?"
"तांगा चलाता हूं ।" मैंने उत्तर दिया ।
"तांगे-रिक्से वालों से मैं पैसे नहीं लेता ।"

"दवा के दाम तो ले लीजिये।"
"जाओ बाबा ! क्यों तंग किये हो। दूसरे मरीजों को देखने दो" कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा—"और हाँ, देखो कल सुबह फिर इसका हाल बताना आकर।" कहकर दूसरे मरीज को देखने लगे। मैं भगवान से उनकी लम्बी जिन्दगी की दुआ माँगता हुआ नीचे उतर आया।
"अब तुम्हारे लड़के की तबियत कैसी है ?" विमला ने प्रश्न किया।
"भला चंगा खेलता हुआ छोड़कर आया हूं।" तांगे वाले ने उत्तर दिया।
तांगा छिप्रगति से आगे बढ़ रहा था। सिविल लाइन्स के बंगले प्रारम्भ हो गये थे। तांगे वाले ने सामने ही देखते हुये पूछा—माता जी ! सिविल लाइन्स आ गया। "ले चलूँ डा० साहब के यहां ?"
"ले चलो।"
सामने की ओर चाबुक उठाकर संकेत करते हुये तांगे वाले ने कहा—
"वह रहा सामने बाईं ओर डाक्टर साहब का बंगला।"
चन्द क्षणों में बंगले के सामने ताँगा रुक गया बिमला ने उतर कर पूछा—"कितने पैसे हुये तुम्हारे ?"
"माता जी ! मैं पैसे नहीं लूँगा।"
"क्यों ?"
"जिस दिन डा० साहब ने मुझसे पैसे नहीं लिये उसी दिन से मैंने कसम खा ली कि उस सवारी से, जो भी डाक्टर साहब के यहाँ आयेगी, पैसे नहीं लूँगा। जिस तरह वह गरीबों का ध्यान रखते हैं उसी तरह मैं भी उनकी सेवा करना चाहता हूं।"
"सेवा डाक्टर साहब की करना, लेकिन मुझसे पैसे लेने में क्या हर्ज है ?"
"मैं भला गरीब आदमी डाक्टर साहब की क्या सेवा कर सकता हूं ? वह मोटर पर चलते हैं। यह भी तो नहीं हो सकता कि उन्हें तांगे पर ही सैर करा सकूं। शायद उनके मरीजों की सेवा करके ही उनकी सेवा कर सकूँ।"

तांगे वाले के इतना कहने पर भी बिमला ने पैसे देने चाहे, लेकिन उसने न लिये और पूछा—"अगर आप अभी लौटना चाहें तो मैं खड़ा रहूं, क्योंकि आपको इतनी रात को इस मोहल्ले में दूसरा तांगा मुश्किल से मिलेगा।"

"अब तुम जाओ। हम आज रात यहीं रुकेंगे।"

तांगा वाले ने अपना तांगा घुमाया और लौट पड़ा।

विमला ने फाटक पर खड़े होकर एक बार शानदार बंगले पर दृष्टि डाली और आगे बढ़ीं। इसके पूर्व कि वह आगे बढ़कर बंगले में प्रवेश कर सकें फाटक से थोड़ी दूर पर ही द्वार रक्षक ने प्रश्न किया—"कौन है?"

विमला चौंकी और घूमकर देखा तो एक नौकर दिखाई दिया। उसके प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा उन्होंने उससे प्रश्न कर दिया—"कान्त बेटा है अन्दर?"

"कौन डाक्टर साहब?"

"हाँ, हाँ, डाक्टर कान्त।" बिमला की घबड़ाहट बढ़ती जा रही थी।

"अभी तो अस्पताल से नहीं लौटे हैं, लेकिन आते ही होंगे आप उस कमरे में चलकर बैठिये तब तक। जब वह आयेंगे तो मैं आपको बता दूंगा।"

बिमला ने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी और पूंछा—"डाक्टर साहब की पत्नी कहाँ हैं?"

"बीबी जी।"

"हाँ।"

"अन्दर बैठके में होंगी।"

"मुझे उनके पास ले चलो।"

"इस वक्त वह अपने दोस्तों के साथ बातचीत कर रही हैं।"

"तो क्या हुआ?"

"इस वक्त मैं तो क्या कोई भी नौकर उनके पास नहीं जा सकता।"

"क्यों ?"

"उनका ऐसा ही हुक्म है।"

बिमला कुछ क्षणों तक मौन विचार करती रहीं, तत्पश्चात बोल उठीं—"अच्छा तो मैं खुद ही चली जाती हूं उनके पास।" कहकर विमला ने पैर बढ़ा दिये।

द्वाररक्षक ने घबड़ाहट के स्वर में पूँछा—"आपको बीबी जी से क्या काम ? आप तो अपना मरीज डा० साहब को दिखाना चाहती हैं। जब तक वह न आ जायँ तब तक आप यहीं बैठकर उनका इन्तजार करिये।"

विमला के बढ़ते हुये पैर कुछ ठिठके, लेकिन नौकर की बात के प्रति उपेक्षा कर भाव प्रदर्शित करते हुये वह आगे बढ़ गईं। सीढ़ियों को उन्होंने एक ही साँस में पार कर लिया और भीतर प्रवेश किया। अति आधुनिक ढंग से सुसज्जित अतिथि कक्ष था। विद्युत प्रकाश से जगमगा रहा था। वेशकीमती वस्तुयें बड़े करीने से लगी हुईं थीं। फर्श पर बहुमूल्य लाल रंग की कालीन बिछी हुई थी, परन्तु था वहां कोई नहीं। विमला वहां खड़ी यह सोच ही रही थीं कि किस ओर को जाँय कि सहसा बाईं ओर से कहकहों की ध्वनि कान में पड़ी। उनके पग विद्युत चालित यन्त्र की भाँति उसी ओर को बढ़ गये। धीरे से रेशमी परदा हटाया और बैठे व्यक्तियों पर दृष्टि डाली। द्वार से प्रवेश करते हुये एक अनजान महिला को देखकर सहसा वहां का क्रियाकलाप रुक गया और सबकी दृष्टि का केन्द्र बिन्दु विमला हो गई। डाक्टर की पत्नी शीला सोफे पर बैठी थीं। वहीं से तनिक रोबीले स्वर में पूंछा। "तुम यहाँ किसकी आज्ञा से घुस आईं ?"

"अपने घर में किसी की आज्ञा की क्या आवश्यकता ?"

"यह तुम्हारा घर नहीं, बँगला है–बँगला, डाक्टर साहब का बँगला।"

"कान्ती मेरा बेटा है, मैं उसकी माँ हूं। उसका बँगला मेरा बँगला है।"

तांगे वाले के इतना कहने पर भी बिमला ने पैसे देने चाहे, लेकिन उसने न लिये और पूछा—"अगर आप अभी लौटना चाहें तो मैं खड़ा रहूं क्योंकि आपको इतनी रात को इस मोहल्ले में दूसरा तांगा मुश्किल से मिलेगा।"

"अब तुम जाओ। हम आज रात यहीं रुकेंगे।"

तांगा वाले ने अपना तांगा घुमाया और लौट पड़ा।

विमला ने फाटक पर खड़े होकर एक बार शानदार बंगले पर दृष्टि डाली और आगे बढ़ीं। इसके पूर्व कि वह आगे बढ़कर बंगले में प्रवेश कर सकें फाटक से थोड़ी दूर पर ही द्वार रक्षक ने प्रश्न किया—"कौन है?"

विमला चौंकी और घूमकर देखा तो एक नौकर दिखाई दिया। उसके प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा उन्होंने उससे प्रश्न कर दिया—"कान्त बेटा है अन्दर?"

"कौन डाक्टर साहब?"

"हाँ, हाँ, डाक्टर कान्त।" बिमला की घबड़ाहट बढ़ती जा रही थी।

"अभी तो अस्पताल से नहीं लौटे हैं, लेकिन आते ही होंगे आप उस कमरे में चलकर बैठिये तब तक। जब वह आयेंगे तो मैं आपको बता दूंगा।"

बिमला ने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी और पूंछा—"डाक्टर साहब की पत्नी कहाँ हैं?"

"बीबी जी।"

"हाँ।"

"अन्दर बैठके में होंगी।"

"मुझे उनके पास ले चलो।"

"इस वक्त वह अपने दोस्तों के साथ बातचीत कर रही हैं।"

"तो क्या हुआ?"

"इस वक्त मैं तो क्या कोई भी नौकर उनके पास नहीं जा सकता।"

"क्यों ?"

"उनका ऐसा ही हुक्म है।"

विमला कुछ क्षणों तक मौन विचार करती रहीं, तत्पश्चात बोल उठीं—"अच्छा तो मैं खुद ही चली जाती हूं उनके पास।" कहकर विमला ने पैर बढ़ा दिये।

द्वाररक्षक ने घबड़ाहट के स्वर में पूँछा—"आपको बीबी जी से क्या काम ? आप तो अपना मरीज डा० साहब को दिखाना चाहती हैं। जब तक वह न आ जायँ तब तक आप यहीं बैठकर उनका इन्तजार करिये।"

विमला के बढ़ते हुये पैर कुछ ठिठके, लेकिन नौकर की बात के प्रति उपेक्षा कर भाव प्रदर्शित करते हुये वह आगे बढ़ गई। सीढ़ियों को उन्होंने एक ही साँस में पार कर लिया और भीतर प्रवेश किया। अति आधुनिक ढंग से सुसज्जित अतिथि कक्ष था। विद्युत प्रकाश से जगमगा रहा था। वेशकीमती वस्तुयें बड़े करीने से लगी हुई थीं। फर्श पर बहुमूल्य लाल रंग की कालीन बिछी हुई थी, परन्तु था वहां कोई नहीं। विमला वहां खड़ी यह सोच ही रही थीं कि किस ओर को जाँय कि सहसा बाईं ओर से कहकहों की ध्वनि कान में पड़ी। उनके पग विद्युत चालित यन्त्र की भाँति उसी ओर को बढ़ गये। धीरे से रेशमी परदा हटाया और बैठे व्यक्तियों पर दृष्टि डाली। द्वार से प्रवेश करते हुये एक अनजान महिला को देखकर सहसा वहां का क्रिया-कलाप रुक गया और सबकी दृष्टि का केन्द्र बिन्दु विमला हो गई। डाक्टर की पत्नी शीला सोफे पर बैठी थीं। वहीं से तनिक रोबीले स्वर में पूंछा। "तुम यहाँ किसकी आज्ञा से घुस आईं ?"

"अपने घर में किसी की आज्ञा की क्या आवश्यकता ?"

"यह तुम्हारा घर नहीं, बँगला है—बँगला, डाक्टर साहब का बँगला।"

"कान्ती मेरा बेटा है, मैं उसकी माँ हूं। उसका बँगला मेरा बँगला है।"

"क्या खूब रिश्ते ढूंढ़ लेते हैं ये लोग भी। जो भी बुढ़िया आती है वही डा० साहब की माँ बन जाती है। उन्होंने भी इन लोगों को इतना सिर चढ़ा रखा है कि सभी को माँ कह कर ही सम्बोधित करते हैं।"

"इसीलिये तो बिना पूंछे घुसती चली आई।" साथ ही बैठे हुये शीला के एक मित्र ने कहा।

"सारा मजा किरकिरा होगया।" एक अन्य युवती ने कहा।

"शीला ने जब मित्रों की ये बातें सुनीं तो उनके क्रोध की सीमा न रही। आवेश में आकर उन्होंने खड़े होते हुये कहा—जाओ, यहां से फौरन चली जाओ।"

इसी बीच पोर्टिको में कार रुकने की आवाज हुई। डा० कान्त ने कार से उतर कर ड्राइंग रूम में प्रवेश किया। अपने स्वभावानुसार ड्राइंग रूम पार करके जैसे ही अन्य कक्ष में पैर रखा वैसे ही विमल ने जोर से पुकारा—"बेटा कान्त।"

डा० साहब ने पीछे मुड़ कर देखा। सामने माँ दिखाई दीं। वह लपक कर आगे बढ़े। इसके पूर्व कि वह माँ के पास आ सकें शीला बीच में आ खड़ी हुईं। डा० कान्त ने शीला को हाथ से हटाते हुये कहा—"हटो शीला! ये मेरी माँ हैं।"

बीच में दृढ़ता से खड़े होते हुये शीला ने कहा—"इसे बताने की क्या आवश्यकता? यह तो मैं भी जानती हूं कि हर बृद्ध स्त्री आपकी माँ होती है और.... ...।"

"शीला। यह सब क्या बके जा रही हो?" डाक्टर कान्त की चीख गूंज उठी।

अन्य मित्रगण भी उसी कक्ष की ओर बढ़ने लगे।

"आप मुझे कहते हैं कि मैं बक रही हूं और जो यह बुढ़िया घंटे भर से मेरा सिर खाये हुये है सो कुछ नहीं।"

"शीला जरा होश से बातें करो। तुम नहीं जानतीं यह मेरी माँ हैं।"

सभी मित्रों के सामने पति के इस व्यवहार पर शीला का आत्माभिमान जाग उठा वह व्यंग्यात्मक स्वर में बोलीं—"और इसकी गोद का लड़का भी तो आपका भाई होगा ?"

"शीला।" डा० कान्त की चीत्कार विशाल कक्ष में प्रध्वनित हो उठी। शीला भी डा० कान्त की इस चीत्कार से सहम गई, परन्तु प्रतिशोधाग्नि को जैसे और आहुति मिल गई। वह फुफकारती हुई बोली—"मैं ऐसे नहीं देखने दूंगी इसके बच्चे को। इन लोगों ने मेरा जीवन नष्ट कर दिया है। जब देखो तब कोई न कोई किसी को लिये खड़ा रहता है। न रात चैन न दिन। आखिरकार मैं भी तो कुछ हूं आपके लिये। मेरी भी कुछ इच्छायें हैं, अभिलाषायें हैं, लेकिन आपको इनसे छुट्टी मिले तब न।"

बिमला मुन्ने को लिये पति-पत्नी के संघर्ष को विस्फरित नेत्रों से देख रही थीं, परन्तु सुन-समझ कुछ भी न पा रही थीं। ज्यों-ज्यों देर हो रही थी त्यों-त्यों डाक्टर कान्त का क्रोध बढ़ रहा था। चेहरा तम-तमाया हुआ था। मुट्ठियाँ कसी थीं। फर्श पर पैर पटकते हुये उन्होंने शीला को डाँटा—"हट जाओ बीच से।" साथ ही डा० कान्त का हाथ बीच से हटाने के लिये शीला के शरीर से जा लगा। शीला हाथ का धक्का सम्हाल न सकी और गिर पड़ी। डा० कान्त ने मुन्ने को देखा, नब्ज पकड़ी और पलकें खोलीं, लेकिन कुछ कह न सके। विमला विक्षिप्त की भाँति खड़ी थी। ज्योंही डा० कान्त ने दीर्घ स्वांस लेते हुये गरदन सीधी की त्योंही विमला ने उनके चेहरे की ओर देखा और प्रश्न किया—"बेटा कैसा है मुन्ना ?"

डा० कान्त मौन थे।

"बोलते क्यों नहीं ? कैसा है मुन्ना ?" विमला के स्वर में तेजी थी।

डा० कान्त फिर भी कुछ न बोले।

"कान्त ! जवाब क्यों नहीं देते ?" विमला चीत्कार कर उठी।

विमला जब मुन्ने को लेकर चल दी थी तब विमल बाबू कुछ भी न

कह सके थे। चुपचाप पत्नी का जाना देखते रहे थे, परन्तु दृष्टि से ओझल होते ही वह भी न रुक सके और चल पड़े। पत्नी के कुछ ही देर बाद वह भी आ गये, लेकिन उन्होंने भीतर प्रवेश नहीं किया था, बाहर बरामदे में ही खड़े पति-पत्नी वार्तालाप सुन रहे थे। पत्नी की चीत्कार और डा० कान्त की खामोशी ने उन्हें अन्दर प्रविष्ट होने के लिये बाध्य कर दिया, वह अन्दर गये। चारों ओर उड़ती हुई दृष्टि डालते हुये पत्नी से कहा—"चलो, घर चलें।"

पति की बात का कोई प्रभाव उन पर न पड़ा। उन्होंने पति को देखते ही कहा—"आप आ गये। लीजिये आप ही मुन्ने को दिखा दीजिये।"
विमल बाबू ने मुन्ने को पत्नी के हाथ से ले लिया और उस पर दृष्टि डाली। उनकी धारणा सत्य निकली। मुन्ना मर चुका था। उन्होंने संयत स्वर में पत्नी से कहा—"अभी तक तुम नहीं देखने दे रही थीं और अब वह स्वयं नहीं देखेगा।"

पति के इतना कहते ही विमला आगे बढ़ी और शान्त, सिर नीचा किये हुये खड़े डा० कान्त के हाथ पकड़ कर झकझोरते हुये बोली—"बेटा! मुन्ना बहुत ज्यादा बीमार है। इसे कुछ दवा दो, इनजेक्शन लगाओ।"
डा० कान्त फिर भी टस से मस न हुये।

विमल बाबू ने मुन्ने को एक हाथ से सम्हाला और आगे बढ़कर दूसरे हाथ से पत्नी की बाँह पकड़ते हुये उन्होंने कहा—"सारी दवायें मुन्ने के लिये समाप्त हो चुकी हैं। आओ चलें।"
विमला ने पति की बात पर फिर भी ध्यान न दिया और पति के मुंह की ओर देखते हुये बोली—"यह तो कुछ बोलता ही नहीं, आप ही बुलाइये न।"
"अब वह नहीं बोलेगा।" विमल बाबू का स्वर शान्त था।
"क्यों बेटा, क्यों, मुझ माँ से इतने नाराज हो कि मुझसे बोलोगे भी नहीं। देखो तुम्हारा छोटा भाई कितना सख्त बीमार है। कुछ करते

क्यों नहीं इसके लिये ?" माँ विमला के मुँह से निकला हुआ एक-एक शब्द करुणासिक्त था।
डा० कान्त का धैर्य टूट गया। वह अपने को न सम्हाल सके और 'माँ' कह कर विमला से लिपट गये। नेत्रों से अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी।
विमल बाबू ने पत्नी को पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुये कहा—"चलो यहां से। मुन्ना अब इस दुनियां में नहीं रहा।"
विमल बाबू के लिये वह माँ-बेटे का मिलन असह्य था। उन्होंने पत्नी का हाथ पकड़ते हुये कहा—"चलो, मुन्ना नहीं है अब इस संसार में।"
"ऐसा अपशकुन आप क्यों बोल रहे हैं ? कान्त के रहते मुन्ना को कुछ नहीं हो सकता।" कान्त के मुँह पर दृष्टि गड़ाकर विमला ने कहा—"बेटा लो देखो यह कितने दिन से बीमार है। तमाम डाक्टरों ने देखा है इसे, लेकिन कोई भी अच्छा न कर सका। अच्छा भी कैसे कर सकता ? मुन्ना तो तुम्हारे हाथ से अच्छा होना चाहता था।"
कान्त मौन थे।
विमला ने पति के हाथ से मुन्ने को लेते हुये कहा—,,लो बेटा, अब तुम सम्हालो इसे। मैं इनसे कह कर हार गई, लेकिन यह न लाये इसे तुम्हारे पास।"
डा० कान्त फिर भी टस से मस न हुये।
"बेटा, जल्दी देखो और दवा दो। देर होती जा रही है। डाक्टर ने कहा था कि जल्दी दिखाना।"
"माँ अब बहुत देर हो गई है।"
"क्या मतलब ?"
"मुन्ना अब नहीं रहा।" कान्त का इतना कहना था कि विमला के हाथ से मुन्ना छूट गया। 'मुन्ना' चीत्कार ध्वनित हो उठा। उनके नेत्र विस्फारित हो गये। वह अपलक नेत्रों से न जाने क्या देख रहीं थीं। विमल बाबू ने आगे बढ़कर ज्योंही मुन्ने को उठाना चाहा त्योंही पत्नी

ने रोकते हुये कहा—"मत उठाइये इसे। यह तो अपने भाई के यहां ठीक होने आया है। कान्त इसे ठीक कर देगा। अब इसे किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। यह स्वयं ही उठ खड़ा होगा।" कान्त की ओर देखते हुये विमला ने कहा—देखो बेटा! मुन्ना कितना शान्त लेटा है। तुम्हारी दवा की प्रतीक्षा कर रहा है। दो न इसे दवा।" और अधिक सुन सकना विमल बाबू के लिये असह्य था। वह समझ गये कि विमला अपनी विक्षिप्तावस्था में बोल रही हैं। उन्होंने लपक कर मुन्ने को उठा लिया और पत्नी को घसीटते हुये बाहर ले चले।

३.

डा० कान्तीनाथ अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र थे। माता-पिता का असीम स्नेह उन्हें प्राप्त था, परन्तु स्नेह ने उन्हें कभी भी कर्तव्य भ्रष्ट न होने दिया। किसी कार्य को कल के लिये छोड़ना तो उन्होंने जाना ही न था। प्रारम्भ से ही उनके जीवन का सिद्धान्त था कि कल कभी आता ही नहीं। जो लोग कल की प्रतीक्षा करते हैं वे जीवन भर बेकल रहते हैं। उसी सिद्धान्त के कारण उन्होंने विद्यार्थी जीवन में आशातीत सफलता प्राप्त की। कर्मठता और लगन ने उन्हें परीक्षाओं में सर्वश्रेष्ट स्थान दिलाया। मेधावी छात्र होने के नाते वह सदैव अपने शिक्षकों संरक्षकों एवं अन्य शुभचिन्तकों के कृपा पात्र बने रहे। एम० बी० बी० एस० करने के उपरान्त सरकार की ओर से उन्हें विदेश भेज दिया गया। विदेशों में रह कर चिकित्सा सम्बन्धी काफी ज्ञान प्राप्त किया। अनेक देशों के प्रमुख चिकित्सकों से मिलकर उनसे विचार विमर्श करके बालकों सम्बन्धी अनेक रोगों की जानकारी हासिल की। पूरे तीन वर्ष पश्चात् वह स्वदेश के लिये रवाना होगये।

हवाई जहाज से लौटने की सूचना तार द्वारा वह अपने माता-पिता को कुछ दिन पूर्व ही दे चुके थे। वायुयान रवाना हुआ। स्वजनों के दर्शन की लालसा हृदय में अति तीव्र थी। हृदय में उत्साह था। 'जब जहाज से उतरेंगे तो कौन-कौन मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा, उनसे कैसे मिलूँगा, माँ कितनी प्रसन्न होगी मुझे देखकर, मुझे गले लगा लेगी' इत्यादि विचारों में डा० कान्तीनाथ खोये हुये थे कि चालक ने सहसा इंजन खराब होने की सूचना दी। इसके पूर्व कि यात्री सम्हल पायें जहाज तेजी के साथ नीचे की ओर जाने लगा। चालक सम्हालने का भरसक प्रयास करता, परन्तु वह उसके नियन्त्रण के बाहर होता जारहा था। अन्ततोगत्वा जहाज एक पहाड़ी से टकरा गया। जहाज नष्ट-भ्रष्ट हो गया। जहाज का गिरना ग्रामीणों के कौतूहल का विषय बन गया। आस-पास खेतों में काम करने वाले कृषक दर्शनार्थ दौड़ पड़े। जहाज को चारों ओर से वे लोग देख-देख कर आश्चर्य प्रगट कर रहे थे। यात्रियों के शवों को पकड़-पकड़ कर बाहर घसीटा। जिसे बाहर निकालते उसी को मरा हुआ पाते। कान्तीनाथ की सांस चल रही थी। उन्हें उठाकर एक ग्रामीण अपने घर लाया और अपनी लड़की से कहा— जा, जल्दी वैद्य जी को बुला ला।"

"यह कौन है बापू?" कान्तीनाथ को देखकर उस ग्रामीण बाला ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की।

"जा, पहले बुला तो ला।"

वह दौड़ती हुई वैद्य जी के पास गई और वैद्य जी को साथ लाकर थोड़ी ही देर में खड़ा कर दिया। वैद्य जी ने कान्तीनाथ को हिला डुला कर देखा। नब्ज देखी, उन्हें कुछ आशा बँधी। तत्काल उन्होंने जेब से एक दवा निकाली और सुँघाया। दवा सूँघते ही कान्तीनाथ को होश आगया। उन्होंने आंखें खोलदीं। पासे खड़े लोगों के चेहरों पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। वैद्य जी ने दो एक जड़ी बूटी पीसने के लिये कहा। धन्नों ने फौरन जाकर दवा पीसी। उसका लेप कान्तीनाथ के सारे

शरीर में किया गया। तीन दिन तक वह लेप लगा रहा। ग्रामीण आते, देखकर चले जाते। धन्नो और उसके पिता ने रात-दिन जाग-जाग कर एक कर दिया। प्रति दिन दोनों समय वैद्य जी आते और जैसा करने के लिये कह जाते वे दोनों प्राणी वैसा ही करते। दोनों के अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप कान्तीनाथ की स्थिति धीरे-धीरे सुधरती गई। तीन दिन पश्चात् कान्तीनाथ कुछ बोल सके, परन्तु वैद्य जी का आदेश था कि वह कुछ न बोलें। वह बोलने की लाख कोशिश करते, परन्तु धन्नों और उसके पिता के कारण बोलने न पाते। धन्नो कान्तीनाथ को पानी देती, दूध पिलाती तथा दवा इत्यादि देने में पिता की सहायता करती। उनकी सेवा परायणता देखकर कान्तीनाथ का हृदय उनके प्रति कृतज्ञता से भर जाता। उनका त्याग, उनकी आत्मीयता, उनकी सेवा भावना एवं उनके अनुराग ने कान्तीनाथ को अभिभूत कर दिया था। दिन बीतता रात आती, रात व्यतीत होती दिन प्रारम्भ होता। इस प्रकार छः दिन व्यतीत हो गये। अब कान्तीनाथ की स्थिति यह थी कि वह सहारा लेकर बैठ सकते थे। अपने हाथ से पानी, दूध तथा दवा इत्यादि पी लेते। उन्होंने लेटे-लेटे अनुभव किया कि उनकी सेवा करने में पिता-पुत्री दोनों में आलस्य का तो नाम न था। अब तो जब कभी वैद्य जी आते तो उनसे विचार-विमर्श करते। प्रातः काल एक दिन वैद्य जी ने देखकर दवा इत्यादि की व्यवस्था करते हुये कहा—अब तो आप काफी ठीक हैं।"

"हां, सब आपकी कृपा है।"

"मेरी क्यों, इन लोगों की कहो। कौन सी कसर उठा रखी है इन लोगों ने तुम्हारी सेवा करने में। रात-दिन एक कर दिया।"

"वह तो मैं देख रहा हूं वैद्य जी। परिवार के लोगों से भी अधिक आत्मीयता पूर्ण व्यवहार किया है इन लोगों ने मेरे साथ। मैं इन लोगों का जीवन भर कृतज्ञ रहूंगा।"

"वाह बाबू जी! आप भी कैसी बातें करते हैं। जो हमें करना

चाहिये था वही हमने किया है।"

"आप जैसे विचारों के यदि सभी लोग हो जायं तो संसार में कष्ट, दुःख नाम की कोई चीज ही न रह जाय।" कान्तीनाथ ने गम्भीर स्वर में कहा।

"हीरा वाकई में हीरा हैं। इसका ऐसा परस्नेही दूसरा आदमी गांव में नहीं है। पास-पड़ोस में किसी के यहां कुछ काम हो हीरा सदैव उपस्थित हैं।" धन्नो की ओर देखकर-"और यह भी बाप से कुछ कम थोड़े ही है। अपने बापू की बिल्कुल नकल करती है हर काम में।" वैद्य जी के इतना कहते ही धन्नो लजाकर अन्दर भाग गई। अन्य रोगी को देखने की बात कहकर वैद्य जी भी चल दिये।

हीरा ने देखा कि कान्तीनाथ के चेहरे पर आज विशेष प्रसन्नता खेल रही है। वास्तव में कान्तीनाथ ठीक थे। धीरे से हीरा ने कहा-बाबू जी! अब तो आपकी हालत काफी ठीक है-वैद्य जी कह गये हैं।"
"हां बापू।" धन्नो हीरा को बापू कहती थी। वही सम्बोधन कान्तीनाथ ने भी किया। अपने प्रति प्रयोग किये गये 'बापू' शब्द को सुनकर हीरा को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। हृदय गद्-गद् हो गया। प्रेमाश्रु छलक आये। एक क्षण के लिये हीरा को अपने पुत्र मोती का स्मरण हो आया। यदि वह जीवित होता तो कान्तीनाथ के ही इतना होता। हीरा को कान्तीनाथ के रूप में मोती ही दिखाई देने लगा। हीरा को किन्हीं विचारों में खोया हुआ जानकर कान्तीनाथ ने कहा-
"बापू! क्या सोच रहे हो?"

कान्तीनाथ के प्रश्न ने हीरा की विचारधारा भंग कर दी। चौंककर हीरा ने कहा-"कुछ नहीं बेटा। योंही कुछ खेती-बारी के बारे में सोच रहा था। एक खेत अधजुता पड़ा है। सोचता हूं अब तो आप उठ-बैठ सकते हैं-उसे जाकर पूरा कर डालूं।"
"हां, हां बापू! अब तो मैं आप लोगों की कृपा से भला चंगा दीखता

हूं। आपका मेरे कारण बहुत नुकसान हुआ है। अब आप अपना काम-धन्धा देखिये।"

"काम-धन्धा तो जीवन भर करना है। आप जैसे लोगों की सेवा करने का मौका तो कभी-कभी ही मिलता है। आप घबड़ाइयेगा नहीं। मैं बिटिया से कहे जा रहा हूं-वह आपका पूरा-पूरा ध्यान रखेगी। मैं दोपहर तक जरूर वापस आ जाऊंगा।"

"आप बेफिक्र होकर जाइये। वह तो वैसे ही मेरा काफी ध्यान रखती है—कहने की क्या आवश्यकता ?"

"फिर भी बचपना ही तो ठहरा अभी उसका। कहीं किसी खेल में लग जाय तो फिर आपको कष्ट होगा।"

"नहीं बापू ! ऐसी बात नहीं है। रात-दिन तो बेचारी मेरा काम करती रहती है।"

इसी बीच धन्नो दूध गर्म करके ले आई और गिलास आगे बढ़ाते हुये कहा—"बापू दूध।"

"ला बेटी ! मैं तो भूल ही गया था।" घूमकर गिलास धन्नो से ले लिया और कान्तीनाथ को पकड़ा दिया। कान्तीनाथ ने एक घूँट दूध पीकर कहा—"देखा बापू ! मैंने कहा था न कि यह मेरा कितना ध्यान रखती है। आपको कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"ध्यान तो मेरा भी काफी रखती है। इसके अलावा और है ही कौन मेरा अब इस दुनियां में।" धन्नो की ओर देखते हुये उन्होंने आदेशात्मक स्वर में कहा—"देख बेटी ! आज मैं खेत पर जा रहा हूं। तू जरा बाबू जी का ध्यान रखना।"

"अच्छा बापू !"

"कहीं किसी के साथ खेल में न पड़ जाना।

"नहीं बापू ! मैं कहीं नहीं जाऊँगी।"

"अच्छा तो फिर मैं जाता हूं।" कहकर हीरा उठ खड़े हुये

"दोपहर को रोटी लाऊँ बापू ?"

"नहीं दोपहर तक तो मैं लौट आऊँगा।"

"मगर बापू काफी दिन चढ़े तक तो आप खेतों पर पहुंचेंगे ही। क्या जाते ही लौट आइयेगा ?"

"नहीं बेटी !. सोचता हूं कि वह दो बीघे वाला खेत जो अधजुता पड़ा है जाकर जोत डालूँ।"

"तब तो बापू—तुम दिन डूबने के पहिले नहीं लौट पाओगे।" दिन भर क्या भूखे रहोगे ?"

"बाबू जी को अकेला इस हालत में छोड़ना भी तो ठीक नहीं है।"

"आप बापू मेरी ओर से निश्चिन्त रहिये। दवा-पानी आदि मैं ले ही सकता हूँ। आप दिन भर भूखे कैसे रहेंगे ?"

"हम गरीबों को भूख-प्यास की इतनी चिन्ता कहां रहती है ? शाम को ही आकर खाऊँगा।"

"नहीं बापू ! दोपहर को जब बाबू जी सो जायेंगे तब मैं दौड़ कर जल्दी से खाना दे जाऊँगी।"

"अच्छा। कहकर हीरा ने अपने हल-बैल सम्हाले और खेतों की ओर चल दिया।

कुछ देर बाद धन्नो ने शहद में दवा मिलाकर कान्तीनाथ को चटानी चाही। कान्तीनाथ ने हाथ में लेने का प्रयास किया। धन्नों ने तुनुक कर कहा--

"क्यों, क्या मुझे दवा चटाना नहीं आता ? बापू के हाथ से कैसे चाट लेते थे ?"

"तुम अपने हाथ से दवा खिलाओगी ?"

"क्यों नहीं खिलाऊँगी ! जब बापू आपका सारा काम मेरे जिम्मे छोड़ गये हैं तब मैं न करूँगी आपका काम तो और कौन करेगा ?"

"लेकिन अब तो मैं अपने हाथ से भी खा सकता हूं।" कान्तीनाथ की बात सुनकर धन्नों विचार में पड़ गई। आज पहली बार तो उसे अवसर प्राप्त हुआ था कान्तीनाथ की सेवा करने का। वह उनका प्रत्येक कार्य

हूं। आपका मेरे कारण बहुत नुकसान हुआ है। अब आप अपना काम-धन्धा देखिये।"

"काम-धन्धा तो जीवन भर करना है। आप जैसे लोगों की सेवा करने का मौका तो कभी-कभी ही मिलता है। आप घबड़ाइयेगा नहीं। मैं बिटिया से कहे जा रहा हूं-वह आपका पूरा-पूरा ध्यान रखेगी। मैं दोपहर तक जरूर वापस आ जाऊंगा।"

"आप वेफिक्र होकर जाइये। वह तो वैसे ही मेरा काफी ध्यान रखती है—कहने की क्या आवश्यकता ?"

"फिर भी बचपना ही तो ठहरा अभी उसका। कहीं किसी खेल में लग जाय तो फिर आपको कष्ट होगा।"

"नहीं बापू ! ऐसी बात नहीं है। रात-दिन तो बेचारी मेरा काम करती रहती है।"

इसी बीच धन्नो दूध गर्म करके ले आई और गिलास आगे बढ़ाते हुये कहा—"बापू दूध।"

"ला बेटी ! मैं तो भूल ही गया था।" घूमकर गिलास धन्नो से ले लिया और कान्तीनाथ को पकड़ा दिया। कान्तीनाथ ने एक घूँट दूध पीकर कहा—"देखा बापू ! मैंने कहा था न कि यह मेरा कितना ध्यान रखती है। आपको कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"ध्यान तो मेरा भी काफी रखती है। इसके अलावा और है ही कौन मेरा अब इस दुनियां में।" धन्नो की ओर देखते हुये उन्होंने आदेशात्मक स्वर में कहा—"देख बेटी ! आज मैं खेत पर जा रहा हूं। तू जरा बाबू जी का ध्यान रखना।"

"अच्छा बापू !"

"कहीं किसी के साथ खेल में न पड़ जाना।"

"नहीं बापू ! मैं कहीं नहीं जाऊँगी।"

"अच्छा तो फिर मैं जाता हूं।" कहकर हीरा उठ खड़े हुये

"दोपहर को रोटी लाऊँ बापू ?"

"नहीं दोपहर तक तो मैं लौट आऊँगा।"

"मगर बापू काफी दिन चढ़े तक तो आप खेतों पर पहुंचेंगे ही। क्या जाते ही लौट आइयेगा?"

"नहीं बेटी! सोचता हूं कि वह दो बीघे वाला खेत जो अधजुता पड़ा है जाकर जोत डालूँ।"

"तब तो बापू—तुम दिन डूबने के पहिले नहीं लौट पाओगे।" दिन भर क्या भूखे रहोगे?"

"बाबू जी को अकेला इस हालत में छोड़ना भी तो ठीक नहीं है।"

"आप बापू मेरी ओर से निश्चिन्त रहिये। दवा-पानी आदि मैं ले ही सकता हूँ। आप दिन भर भूखे कैसे रहेंगे?"

"हम गरीबों को भूख-प्यास की इतनी चिन्ता कहां रहती है? शाम को ही आकर खाऊँगा।"

"नहीं बापू! दोपहर को जब बाबू जी सो जायेंगे तब मैं दौड़ कर जल्दी से खाना दे जाऊँगी।"

"अच्छा। कहकर हीरा ने अपने हल-बैल सम्हाले और खेतों की ओर चल दिया।

कुछ देर बाद धन्नो ने शहद में दवा मिलाकर कान्तीनाथ को चटानी चाही। कान्तीनाथ ने हाथ में लेने का प्रयास किया। धन्नो ने तुनुक कर कहा—

"क्यों, क्या मुझे दवा चटाना नहीं आता? बापू के हाथ से कैसे चाट लेते थे?"

"तुम अपने हाथ से दवा खिलाओगी?"

"क्यों नहीं खिलाऊँगी! जब बापू आपका सारा काम मेरे जिम्मे छोड़ गये हैं तब मैं न करूँगी आपका काम तो और कौन करेगा?"

"लेकिन अब तो मैं अपने हाथ से भी खा सकता हूं।" कान्तीनाथ की बात सुनकर धन्नो विचार में पड़ गई। आज पहली बार तो उसे अवसर प्राप्त हुआ था कान्तीनाथ की सेवा करने का। वह उनका प्रत्येक कार्य

अपने हाथ से ही करना चाहती थी। उसे इसमें कुछ विशेष आनन्द की अनुभूति होती थी। धन्नों के चेहरे पर उदासी तत्क्षण दौड़ गई। उसने दवा आगे बढ़ाते हुये कहा–"लीजिये।"

कान्तीनाथ ने धन्नों के चेहरे पर एक दृष्टि डाली तो देखा कि धन्नों के नेत्र अश्रु पूरित हो उठे हैं। अपनी सेवा से बंचित करके जो ठेस उस ग्रामीण बाला के हृदय को पहुंची–उसका अनुभव करके उन्हें बड़ा दुःख हुआ, परन्तु कुछ भी कहने का उन्हें साहस न हुआ और दवा ले ली।

धन्नों तत्काल अन्दर चली गई और अपनी वेदना नेत्रों द्वारा बहाने लगी। कान्तीनाथ ने भी दवा खा ली और चुपचाप लेटकर सोचने लगे। ज्यों-ज्यों धन्नों के प्रति किये गये व्यवहार पर विचार करते त्यों-त्यों उनका दुःख बढ़ता जाता। उससे मुक्त होने का उपाय सोचने लगे, परन्तु कोई मार्ग ही न सूझ रहा था। कुछ समयोपरान्त उन्हें कुछ प्यास अनुभव हुई। उन्होंने पानी मांगना चाहा, परन्तु यह सोचकर कि उस ग्रामीण बाला को क्या कह कर सम्बोधित करें चुप रह गये। धन्नों को नाम से सम्बोधित करके किसी ने उनके सामने पुकारा नहीं था, इसलिये उन्हें नाम ज्ञात न हो सका था। बड़ी देर तक इसी उधेड़-बुन में पड़े रहे। प्यास की अनुभूति तीव्रतर होती गई। जब उनसे न रहा गया तो उन्होंने 'पानी' शब्द का जोर से उच्चारण किया। यद्यपि धन्नों रोटी बनाने की तैयारी आरम्भ कर चुकी थी, तथापि उसके कान बाहर की ओर ही लगे थे। उसने रसोई घर से ही उत्तर दिया–"अभी लाई।"

कुछ क्षणों में ही पानी लेकर वह आ उपस्थित हुई और पानी का गिलास आगे बढ़ा दिया। कान्तीनाथ से सर्व प्रथम तो गिलास की ओर देखा तत्पश्चात् धन्नों के उदास एवं गम्भीर चेहरे पर दृष्टि डाली। धन्नों ने उन्हें अपनी ओर देखते हये देखकर कहा–"लीजिये।"

"पिलाओगी नहीं ?"

क्या दवा की भांति इसे अपने हाथों नहीं ले सकते ?"

"स्वयं दवा लेने का परिणाम तो देख लिया।"
"क्या देख लिया ?"
"तुम्हारा नाराज होना।"
"मैं क्यों नाराज होने लगी ? मेरी आपने क्या हानि की है ?"
"हानि तो कोई नहीं की, लेकिन तुम्हारी सेवा भावना को ठेस अवश्य पहुंचाया है।"

"मेरी सेवा भावना को ठेस क्यों पहुंचायी है ? बापू कह गये थे कि मैं उनके वापस आने तक मैं आपका ध्यान रखूँ, इसलिये आप जो भी काम कहेंगे वह कर दूंगी वरना.......।"
"वरना क्या ?"

"मैं हूं ही कौन आपकी ?" कहने को तो धन्नो आवेश में आकर कह गई, लेकिन उसका गौर वर्ण चेहरा रक्ताभ हो उठा।
"इसका उत्तर तो तुम्हारा हृदय ही देगा तुम्हें ?"
"मेरा हृदय कुछ नहीं कहता।"
"कुछ नहीं कहता ?"
धन्नो ने केवल स्वीकारात्मक सिर हिला दिया।
कान्तीनाथ का मानस-कमल खिल उठा। चरम औत्सुक्य व्यक्त करते हुये उन्होंने पूँछा—क्या कहता है ?"
"आपको अभी एक सेविका की आवश्यकता है।" धन्नो ने धीरे से कहा।

"तुम अपने को मेरी सेविका क्यों स्वीकार करती हो ?"
"सेवा जो करती हूं।"

"यह तो एक असहाय प्राणी की सहायता है।"
"हम गरीब तो सेवा ही कर सकते हैं और वह भी ठुकरा दी जाती है।"
"वह अपराध तो मैंने पहले ही स्वीकार कर लिया था। अब उसके लिये तुमसे क्षमा माँगता हूं।"

"आप भी बाबू जी हम लोगों की हँसी उड़ाते हैं। आप इतने बड़े हैं–हम गरीब भला क्या आपको क्षमा कर सकते हैं ?"

"तुम हमें बड़ा क्यों समझती हो ?'

"क्योंकि हम लोग गरीब हैं।"

"गरीबों के सहारे खड़ा होने वाला बड़ा कैसे हो सकता है ?"

"हो क्यों नहीं सकता ? ये बड़े-बड़े जमीन्दार हम गरीबों के सहारे ही तो बड़े आदमी कहलाते हैं।"

कान्तीनाथ को आगे कोई उत्तर न सूझ पड़ा। धन्नों की तार्किक शक्ति से वह काफी प्रभावित हुये। पराजय स्वीकार करते हुये उन्होंने कहा—तुम मुझे कुछ भी समझो, लेकिन मैं अपने को तुमसे बड़ा नहीं मानता।"

"बड़ा न मानते होते तो क्या मेरे हाथ से दवा खाने से इन्कार कर देते।"

"तुमने गलत समझा हैं। मैं नहीं चाहता था कि तुम्हें कष्ट पर कष्ट देता जाऊँ।"

"आप क्या समझेंगे कि इस कष्ट में भी कितना आनन्द है।"

"तो फिर क्यों इतनी देर से अपने को आनन्द से वंचित किये हो ? लाओ, पिलाओ पानी।" कहकर कान्तीनाथ ने पानी के लिये मुँह आगे बढ़ा दिया।

धन्नो ने पानी का गिलास मुँह से लगा दिया। गिलास खाली करने के उपरान्त कान्तीनाथ ने कहा—"तुम्हारे हाथ का पानी भी ज्यादा अच्छा लगता है।"

"क्यों नहीं ? बहुत प्यासे रहने के पश्चात जो मिला है।" कहकर धन्नो मुस्करा दी।

कान्तीनाथ की भी मुस्कान बिखर गई। मुस्कान पर नियन्त्रण पाते हुये कान्तीनाथ ने पूछा—"एक बात पूँछू ?"

"पूँछिये।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"ओफ हो, तो आपको इतने दिन यहाँ रहते हो गये--अभी तक मेरा नाम ही नहीं मालूम ?"

"अगर मालूम होता तो पूँछता ही क्यों ?"

"क्या करियेगा जानकर हम देहातिनों के नाम ? हम लोगों के नाम अच्छे नहीं होते ।"

"नाम भी कहीं खराब हुआ करते हैं ? जब मैं ठीक हो जाऊँगा तो बाहर निकलूंगा, शहर जाऊँगा, लोगों से इस जहाज की दुर्घटना का वर्णन करूँगा तब मै उन्हें बताऊँगा कि एक ग्रामीण लड़की ने मेरे प्राणों की रक्षा की । मान लो अगर किसी ने पूँछा कि कौन थी वह लड़की तो मैं क्या उत्तर दूंगा ? ?"

"कह दीजियेगा धन्नों ने ?"

"ओह ! तो तुम्हारा नाम धन्नो ?"

धन्नो के कपोल लज्जा से रक्ताभ हो उठे । दृष्टि नीची हो गई । उसे आश्चर्य हो रहा था कि जिसे छिपाने का वह प्रयास कर रही थी वह अपने आप कैसे मुँह से निकल गया, लेकिन अब तो तीर छूट चुका था, वापस आने से रहा । लज्जा के कारण जमीन में गड़ी जा रही थी वह । कान्तीनाथ को उसकी अवस्था का भान हो गया । उन्होंने उसे उस अवस्था से मुक्त करने के लिये कहा--"बैठ जाओ न । बहुत देर हो गई तुम्हें खड़े--खड़े ।"

"अरे मुझे तो याद ही नहीं रहा---मेरा चूल्हा ठण्डा हो गया होगा ।" कहकर वह तेजी के साथ भाग गई ।

४

हीरा के परिवार में दो ही प्राणी थे। एक वह स्वयं और दूसरी उसकी लड़की धन्नो। हीरा के पिता सुखी सम्पन्न थे। हीरा को शहर भेज कर शिक्षा दिलाई थी। शिक्षा प्राप्त हीरा गाँव का व्यवसाय न देख सका और नगर में ही नौकरी करने लगा। कुछ समयोपरान्त हीरा के पिता का स्वर्गवास हो गया। हीरा को नौकरी छोड़कर गाँव आना पड़ा। हीरा तीन भाई थे जिनमें वह सबसे बड़े थे। कुछ समय तक तो तीनों भाई साथ रहे। हीरा ने सामर्थ्यानुसार उनकी पढ़ने-लिखने की व्यवस्था की परन्तु वे पढ़ न सके, परिणामतः वे भी ग्रामीण निवासी बन गये। धीरे-धीरे हीरा ने उनके ब्याह किये। उनकी गृहस्थी बसाई। दोनों भाई महान अकर्मण्य थे। वे कुछ भी काम न छूते। दिन भर इधर-उधर गाँव में मारे-मारे घूमना, कहीं किसी के पास बैठना कहीं किसी से बातें करना—चुगली करना, लड़ना-झगड़ना आदि उन लोगों के दैनिक कार्यक्रमों की सूची थी। हीरा उन्हें समझाता, लेकिन उनके कान में जूँ तक न रेंगती। वे हीरा की बात तो चुपचाप सुन लेते; और मुँह पर कुछ न कहते, लेकिन पीठ-पीछे तमाम बातें अपने साथी-संगियों से कहते। उनके द्वारा हीरा के कानों तक खबरें पहुंचती। लोग हीरा से कहते 'ये लोग दिन भर मारे-मारे घूमा करते हैं। इन पर गृहस्थी का बोझ क्यों नहीं डाल देते?'

हीरा मुस्कराकर शालीनतापूर्वक उत्तर देता—"इनके अभी खाने-खेलने के दिन हैं। आखिरकार एक न एक दिन तो गृहस्थी का बोझ पड़ना ही है। अभी से क्यों इन्हें चिंता फिकर करने दूं।"

हीरा के इस उत्तर को सुनकर लोग मौन रह जाते। हीरा दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह जुता रहता और उसके भाई मौज करते। हीरा की पत्नी अत्यन्त सुशील थी। वह अपनी दोनों छोटी देवरानियों को पुत्रियों के समान समझती थी, परन्तु मालकिन वही थी घर की—

यह बात उन दोनों को असह्य थी। शनैः शनैः पारस्परिक कलह को जन्म मिलने लगा। आये दिन किसी न किसी बात पर कहा-सुनी हो जाती। दोनों बहुयें अपने-अपने पतियों से नमक-मिर्च लगा-लगा कर बातें कहतीं। उसका परिणाम यह होता कि पितृवत् व्यवहार करने वाला भाई भी उनकी दृष्टि में शत्रु हो गया। भाई का प्रत्येक कार्य-व्यवहार दोषपूर्ण दिखाई देने लगा। अन्ततोगत्वा एक दिन पारस्परिक बंटवारा हो गया। खेत भी बंट गेए। दस-दस बीघा खेत और एक एक बाग प्रत्येक के हिस्से में पड़ा। जो भाई हीरा के संरक्षकत्व में पड़े-पड़े मौज किया करते थे, उन्हें अब आटा-दाल का भाव माळूम होने लगा, परन्तु उनकी अकर्मण्यता ने उनका पल्ला न छोड़ा। खेत बटाई पर उठा दिए गए जिनसे उत्पन्न थोड़ा बहुत अनाज मिल जाता जो खाने भर को भी पूरा न पड़ता। अमल के लिये प्रति दिन पैसा कहां से आता? धीरे-धीरे बाग के पेड़ बिकने लगे। जब बाग समाप्त हो गये तब खेतों की बारी आई। खेत थोड़े-थोड़े करके रेहेन रखे जाने लगे। हीरा यह सब बरबादी देखता, कभी-कभी उन्हें समझाता भी, लेकिन उसका प्रभाव उन पर उल्टा ही होता। उनके परिवारों को संकटावस्था में देख कर हीरा कभी कभी विभिन्न प्रकार से सहायता कर देता। वह सहायता वे लोग ले तो लेते, लेकिन अनिच्छा व्यक्त करने में न चूकते।

हीरा का स्वभाव बड़ा मृदुल था। लड़ाई-झगड़ों से तो वह कोसों दूर था। प्रत्येक के दुख सुख का समभागी बनने को वह सदैव प्रस्तुत रहता था। गांव का प्रत्येक व्यक्ति उससे प्रेम करता था। परसेवा तो उसके जीवन का अंग था। किसी पर कोई संकट आ जाता तो हीरा सबसे आगे दिखाई देता। इसी बीच गांव में हैजे का प्रकोप हुआ। कीड़ों-मकोड़ों की भांति स्त्री, पुरुष, बाल-बृद्ध सभी मरने लगे। हीरा जिसे बीमार सुनता उसी की सेवा सुश्रुषा के लिए दौड़ा जाता। परिवार के परिवार नष्ट होने लगे। हीरा के दोनों भाई के

परिवारों की भी गाँव के अन्य परिवारों की सी दशा हुई। एक भाई को छोड़ कर कोई न बचा। हीरा की पत्नी भी हैजे का शिकार हो गई। हीरा पर यह बज्रघात हुआ। जीवन संगिनी का अकस्मात् बिछड़ जाना हीरा के लिये असह्य था, परन्तु एकमात्र पुत्री धन्नो को छाती से लगाए वह उसने सब सह लिया। भाई ने सब कुछ अपना स्वाहा करने के पश्चात् डाका डालना प्रारम्भ किया। डाके का श्रीगणेश हीरा के यहाँ से ही हुआ। एक दिन हीरा खेतों की रखवाली कर रहा था। धन्नो अल्प आयु की होने के कारण पिता के पास ही रहती थी। अतः घर खाली पड़ा था। हीरा के भाई को कुछ लोगों ने घर में घुसते हुये देख लिया था। उसकी चौर्य प्रवृत्ति से सभी लोग परिचित थे, इसलिये लोगों ने हल्ला मचाया। वह पकड़ा गया। हीरा से रात ही में खेत में बुला कर भाई की करतूत बयान की गई। हीरा ने भाई से पूछा—"क्यों भाई! ये लोग ठीक कह रहे हैं?"

"भइया, मैं घर में घुसा जरूर था, लेकिन मैं चोरी की नियत से थोड़े ही गया था। मैं तो भूखा था, इसलिये अपना घर समझकर खाना खाने गया था।" उसने गिड़गिड़ा कर कहा।

हीरा को उस पर दया आ गई। हीरा ने उपस्थित लोगों को सम्बोधित करते हुये कहा—"आप लोगों का उपकार मैं जीवन भर न भूलूँगा। आप लोग मेरे कितने शुभचिंतक हैं कि मेरी अनुपस्थिति में भी मेरे घर का ध्यान रखते हैं—इसके लिये मैं आपका चिर कृतज्ञ रहूंगा, परन्तु हो सकता है कि भाई ठीक कहता हो। वास्तव में भूँख लगी हो और खाने गया हो।"

"तुम नहीं जानते इसे हीरा भाई। यह बड़ा पक्का चोर है। इसने कई चोरियाँ की हैं।"

"भाई आप लोग इस बार मेरे कहने पर इसका अपराध क्षमा कर दीजिये। कदाचित भविष्य में अपनी भूल सुधार ले।"

"चोर कभी-कभी ही पकड़ में आता है। हम कई लोगों की जो

चोरी हुई है उसे दिलवा दीजिये अपने भाई से। हम लोग छोड़ देंगे, वरना हम इसे अवश्य पुलिस के हवाले करेंगे।" जिन लोगों की हाल में ही चोरियाँ हुईं थीं वे एक-एक करके एकत्र होने लगे और हीरा का पक्ष निर्बल पड़ता गया।

हीरा सिर झुकाये खड़ा था। मुँह पर कालिख पुत चुकी थी। जिस मान प्रतिष्ठा को जीवन भर कमाया था वह एक क्षण में ही भाई द्वारा किये गये असामाजिक कार्य द्वारा समाप्त हो गई। हीरा ने दीर्घ नि:स्वास छोड़ते हुये कहा—"जो आप लोगों की इच्छा हो सो करिये।" हीरा के मानवतापूर्ण व्यवहार की जड़ें इतनी गहरी जमीं थीं कि उनका एकदम सूख जाना सरल कार्य न था। एक वृद्ध ने भीड़ में से आगे निकलकर जोरदार शब्दों में कहा—"आप लोगों को शरम नहीं आती हीरा की प्रार्थना ठुकराते हुये। हैजे के प्रकोप में कितनों को जीवन दान दिया—कितनों के मुँह में पानी डाला—कितनों को दिन रात सेवा करके उठा कर बैठा दिया—यह सब इतनी जल्दी भूल गये। क्या हीरा के इतने उपकार भी आप लोगों पर नहीं हैं कि उसकी एक छोटी भी प्रार्थना आप लोग मान लें ?"

कोई टस से मस न हुआ।

वृद्ध ने अपना रंग जमते देखा। कड़क भरे स्वर में हीरा से कहा—"ले जाओ हीरा अपने भाई को। अब फिर कभी यदि इसने ऐसा अनुचित कार्य किया तो फिर हम लोग तुम्हारी बात अस्वीकार करने को मजबूर हो जायेंगे।"

हीरा का कृतज्ञता पूर्ण स्वर फूट पड़ा—"भविष्य में फिर कभी यदि ऐसा कार्य करे तो आप लोग जो चाहियेगा करियेगा, मैं एक शब्द भी न कहूंगा।"

एक-एक करके सभी चल दिये।

हीरा ने भाई को बहुत ऊँचा-नीचा समझाया। वह सब सुनता रहा, परन्तु कुछ ही दिनों में पुनः एक चोरी करके भाई की शिक्षा से अप्र-

भावित अपने को सिद्ध कर दिया। इस बार हीरा भी उसकी रक्षा न कर सके। ग्रामीण पूर्व घटना से सतर्क रहने लगे थे। एक दिन उसे पकड़ ही तो लिया और मार-पीट कर पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस ने उसे जेल भेज कर उस पर मुकदमा चलाया। हीरा ने काफी दौड़ धूप की। कुछ लें देकर पुलिस को मनाने की चेष्टा की। वकील किया। गवाहों को कमजोर बनाने के लिये उन्हें भी कुछ खिलाया-पिलाया, लेकिन सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। अपने खेत गिरवीं रखकर भी हीरा अपने भाई को न बचा सका। कई बार चोरी करने के जुर्म उस पर साबित करके पुलिस ने उसे तीन वर्ष का कठोर कारावास और दो-सौ रुपया जुर्माने का भागी बना दिया। हीरा ने दो सौ रुपया तो ज़मा कर दिया, लेकिन भाई को सजा तो भुगतनी ही पड़ी।

हीरा के सिर पर कर्ज का भारी बोझ था। इस दुर्घटना का उसके स्वास्थ्य पर काफी बुरा प्रभाव पड़ा। कुछ दिन के लिये उसने चारपाई पकड़ ली। उपचार और पुनः स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये हीरा को और कर्जा लेना पड़ा। उसी वर्ष बर्षा न होने के कारण सूखा भी पड़ गया। कर्ज पर कर्ज और उसपर ब्याज पर ब्याज बढ़ता चला गया। दो वर्ष में ही उसके आधे खेत हाँथ से निकल गये। फिर भी कर्ज पूरा अदा न हो पाया। रहा सहा कर्ज भी और खेत बेंच कर हीरा ने अदा कर दिया। अब केवल दो बीघा खेत ही जीवन-यापन के लिये उसके पास शेष थे। उसी को जोत-बोकर दिन काटने लगा। कभी-कभी किसी के खेत बटाई पर भी जोत लेता था। फिर भी उसकी औदार्य प्रकृति में कोई कमी न आई। जिसकी उससे जो सेवा बन पड़ती वह करता।

धन्नो धीरे-धीरे सयानी होने लगी। हीरा उसे रोज देखता लेकिन यह न जान पाया कि उसने युवावस्था में कब पदार्पण किया। उसका गौरवर्ण स्वस्थ शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बी नाक, रक्तिम कपोल तथा मृदुल स्वभाव सबको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर

लेता था। अतिथि-सेवा-भावना उसने अपने पिता से पैतृक सम्पति के रूप में प्राप्त की थी। पिता का एक-एक गुण उसमें कूट-कूट कर भरा था। हीरा उसका स्वयं शिक्षक था। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वह पिता की एक-एक बात को बड़े मनोयोग से सुनती और स्मरण कोष में एकत्र करती जाती। भोजनोपरान्त जब दोनों पिता-पुत्री रात्रि में लेटते तो पारस्परिक वाद-विवाद छिड़ जाता जो घटों चला करता। पुत्री की जिज्ञासु प्रवृत्ति को जहाँ तक हीरा से हो सकता असन्तुष्ट न रहने देते। इस प्रकार धन्नो ग्रामीण बाला होकर भी बौद्धिक कोशल में किसी नागरी बाला से कम न थी।

कान्तीनाथ को पानी पिलाकर वह अन्दर चली गई, बुझे हुये चूल्हे को पुनः जलाया और दाल चढ़ा दी। आटा निकाल कर माँड़ा और रोटियाँ बनाने लगी। कान्तीनाथ से अकेले न रहा गया। वह धीरे से उठे और चुपके-चुपके चलकर धन्नो के सामने जा खड़े हुये। धन्नो ने कान्तीनाथ को समक्ष खड़े देखकर साश्चर्य प्रश्न किया—"आप यहाँ ?"

"हाँ, अकेले पड़े-पड़े ऊब गया तो सोचा तुम्हारे पास ही चलकर बैठूँ।" कहकर कान्तीनाथ वहीं दिवाल का सहारा लेकर बैठ गये।

धन्नो घबड़ाकर चौके से बाहर निकल आई और आज्ञा के स्वर में में कहा—"चलिये, लेटिये चलकर बिस्तर पर। आपने सुना था वैद्य जी ने क्या कहा था ?"

"क्या कहा था ?"

"कि अभी आप कम से कम एक सप्ताह और न चलियें-फिरिये। और आप हैं कि आज ही से चलने फिरने लगे।"

"तो फिर तुम मुझे और क्यों चलने को कहती हो ?"

"क्या मतलब ?"

"अगर बिस्तर तक जाऊँगा तो फिर चलना पड़ेगा। इसलिये थोड़ी देर के लिये मुझे यहीं बैठे रहने दो।"

"यहाँ बैठकर क्या करियेगा ?"

"तुम्हारा खाना बनाना देखूँगा।"

"यहाँ तुम्हें धुआँ लगेगा।"

"यहाँ धुआँ कहाँ है ? धुयें के बहाने से यदि हटाना ही चाहती हो तो मैं उठा जाता हूं।" कहकर कान्तीनाथ उठने लगे।

धन्नो ने कुछ सोच कर कहा—"अच्छा रुकिये, मैं आपके लिये कुछ बैठने का इन्तजाम कर दूं।"

धन्नो ने एक लिहाफ और दो तकिये लाकर इस ढंग से रख दिये कि कान्तीनाथ को चारपाई का अभाव अनुभव ही न होने पाया। उन्होंने मुस्कराकर कहा—"यहाँ तो मुझे वहाँ से भी अधिक आराम अनुभव हो रहा है।"

"तब फिर क्या है रोज यहीं लेटा करिये न।"

"तुम तो आज ही भगा रहीं थीं, रोज भला कहाँ लेटने को मिल सकता है ?"

"कहीं भी लेटने से मुझे क्या आपत्ति, लेकिन मैं तो वैद्य जी के आदेशानुसार ही कह रही थी।"

"तुम वैद्य जी के आदेशों की चिन्ता न किया करो। मैं जानता हूं कि मुझे क्या करना चाहिये, कैसे उठना-बैठना चाहिये और क्या खाना चाहिये।"

"और यह भी जानते हैं कि कौन सी दबा खानी चाहिये।" कहकर धन्नो खिलखिला कर हँस पड़ी।

"हाँ, यह भी जानता हूं।" कान्तीनाथ ने सगर्व कहा।

"अच्छा तो आप वैद्य जी बनना चाहते हैं।" धन्नों ने व्यंग्य में कहा।

"वैद्य जी तो नहीं, लेकिन डाक्टर जरूर हूं।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?" धन्नों ने आश्चर्यान्वित होकर प्रश्न किया।

"ठीक ही कह रहा हूं। मैं डाक्टर हूं। विलायत से डाक्टरी पढ़कर

लौट रहा था कि मेरा जहाज खराब हो गया और तुम्हारे खेतों के पास गिर पड़ा।"

"ओह ! तो आप डाक्टर हैं !" मारे खुशी के धन्नो उछल पड़ी और आश्वस्त होकर पूँछा—"आपने अभी तक क्यों नहीं बताया कि आप डाक्टर हैं ?"

"किसे ?"

"मुझे और बापू को।"

"बापू को तो बता चुका हूँ।"

"और मुझे क्यों नहीं बताया ?"

"मैंने सोचा कि शायद बापू स्वयं बता देंगे और फिर मौका भी तो नहीं मिला अकेले बात करने का।"

"आप और बापू दोनों ही एक ढंग के हैं। अभी देखना खेत पर जाकर बापू से कितना लड़ती हूँ।"

"किसलिये ?"

"उन्होंने हमें क्यों नहीं बताया कि आप डाक्टर हैं ? दुनियाँ की तमाम बातें तो हमें बताते हैं। यही बात क्यों छिपाई मुझसे ?"

"बताने की जरूरत ही न समझी होगी।"

"वाह ! बापू मेरी खुशी का बड़ा ध्यान रखते हैं। ऐसी कोई भी बात मुझसे नहीं छिपाते जिसे जान कर मुझे प्रसन्नता होती है।"

"लेकिन उन्हें क्या माळूम कि तुम्हें यह जान कर कि मैं डाक्टर हूँ प्रसन्नता होगी ?"

"बापू बड़े चतुर हैं। वह सब समझते हैं।"

"क्या सब समझते हैं ?"

"यही कि मैं आपका प्रत्येक कार्य बड़े मन से करती हूँ।"

चूल्हे की ओर संकेत करके कांतीनाथ ने कहा—"अरे ! रोटी भी तो देखती जाओ। जल कर खाक हो गई।"

धन्नो ने फौरन रोटी चूल्हे से निकाली और दूसरी रख दी। हाँथ की

कच्ची रोटी तवे पर डालते हुये बोली—"आपको काफी भूख लग रही होगी। आज काफी देर हो गई है। मैं परस दूँ तब तक यहीं बैठ कर खा लीजिए न।"

"वाह! ऐसी कौन सी देर हो गई है? मुझे अभी भूँख-ऊँख कुछ नहीं लगी है। हाँ, तुम्हें जरूर लग रही होगी।"

"मैं तो सारी रोटी बना कर ही खाऊँगी।"

"तभी मैं भी खाऊँगा।"

"मैं चाहती थी कि मैं सेंकती जाती और आप गरम-गरम खाते जाते।"

"जो तुम्हारे साथ खाने में आनन्द आयेगा वह गरम-गरम रोटियों में कहाँ?"

"तो क्या आज साथ खाइयेगा?"

"क्यों? क्या तुम्हें बुरा लगेगा?"

"आप भी कैसी बातें करते हैं डाक्टर साहब। यह भी कोई बुरी लगने की बात है?"

"तो फिर आज खाना साथ ही खायेंगे न?"

धन्नो ने स्वीकारात्मक मुस्कान बिखेर दी।

कुछ समय उपरान्त खाना तैयार हो गया और दोनों लोग साथ-साथ खाने बैठें।

धीरे-धीरे कान्तीनाथ को खाते हुये देखकर धन्नो ने पूँछा—"क्या खाना अच्छा नहीं लग रहा है?"

"क्यों?"

"आप धीरे-धीरे खा रहे हैं इसलिये।"

"और तुम तो बिल्कुल ही नहीं खा रही हो।"

"खा क्यों नहीं रही हूँ।" शीघ्रता से रोटी का टुकड़ा तोड़ा और मुँह में रख लिया।

कान्तीनाथ ने एक घूँट पानी पीते हुये कहा—"जो धीरे-धीरे खाने में आनन्द है वह जल्दी में कहाँ?"

"यह क्यों नहीं कहते कि जितने धीरे खाइयेगा उतनी ही देर साथ बैठने को मिल जायेगा।" कह कर धन्नो मुस्करा दी।

कान्तीनाथ का चेहरा रक्ताभ हो उठा और मुस्कान बिखर गई। काफी देर तक दोनों बैठे खाते रहे और इधर-उधर की बातें करते रहे। भोजनोपरान्त कान्तीनाथ अपनी चारपाई पर आकर लेट रहे। धन्नो ने चौका साफ किया, बरतन नाबदान पर लाकर रखे और बापू के लिए एक कपड़े में खाना बाँधा। जिस कमरे में कान्तीनाथ लेटे थे उसी से होकर धन्नो जाने लगी तो कान्तीनाथ ने पूँछा—"कहाँ चली?"

"खेत पर बापू को रोटी देने।"

"कितनी देर में लौटोगी ?"

"शाम तक।"

"शाम तक क्यों ?"

"दोपहर तो यहीं हो चुकी है। अभी काफी दूर चलना है और शाम के लिये कुछ इन्तजाम भी तो करना है।"

"किसका ?"

"खाने का।"

"क्या मतलब ?"

"मैं इधर कई दिनों से खेत पर नहीं जा सकी हूँ। जो कुछ घर में अनाज था वह सब आज समाप्त हो गया। कुछ देर रुक कर सेर-दो सेर शीला बिन लाऊँगी।"

"यह शीला क्या होता है ?" कान्तीनाथ के स्वर में जिज्ञासा थी।

"खेत काटते समय जो अनाज के दाने खेत में गिर जाते हैं उन्हें गरीब लोग बिन लाते हैं और उसी से अपना पेट पालते हैं।"

"तो क्या बापू के पास इतने खेत नहीं हैं कि तुम्हें शीला न बिनना पड़े ?"

"केवल दो बीघा ही खेत तो रह गये हैं। उसमें इतना अनाज नहीं पैदा होता कि साल भर काम चल सके। बापू बड़े लोगों के खेतों पर

मजदूरी करते हैं। मैं भी कभी-कभी जाकर उन्हीं के खेतों से शीला बिन लाती हूँ।" धन्नो उमंग में भर कर कहने लगी–"उसी की रोटियाँ आप रोजाना खाते हैं। क्या अच्छी नहीं लगतीं ?"

"अच्छी क्यों नहीं लगतीं। बहुत अच्छी लगती हैं। शीला की रोटियाँ धन्नों (कुछ रुक कर) शीला बनायें और अच्छी न लगें–ऐसा भी कहीं हो सकता है ?"

"यह शीला बनाये क्या है ?"

"बनाने वाला ?"

"बनाने वाली तो मैं हूँ ?"

"तो फिर शीला अपने को ही समझ लो।"

"लेकिन मेरा नाम तो धन्नो है ?"

"तुम्हीं ने तो कहा था कि नाम बताने लायक नहीं है।"

"तो क्या आपने मेरा नाम बदल दिया ?"

"हाँ, मुझे तो शीला की रोटी खानी पड़ती है। मैं खेत के शीला को नहीं जानता। मैं तो अपनी शीला की रोटियाँ खाता हूँ।"

कान्तीनाथ के मुँह से 'अपनी शीला' सुन कर धन्नों को रोमाञ्च हो आया। शरीर पुलक से भर गया। प्रसन्नता व्यक्त करते हुए संकोच सहित उसने कहा–"बाबू जी ! आज न जाने आप कैसी बातें कर रहे हैं।"

"क्या मुझ से कोई गलती हो गई ?"

"गलती और फिर आप से ?"

"क्यों नहीं, मैं भी आदमी हूँ। गलती हर आदमी करता है। मुझसे भी गलती हो सकती है।"

"आप आदमी नहीं देवता हैं।"

"ओह ! तब तो तुम मुझे यहाँ से खदेड़ कर किसी मन्दिर में बैठा दोगी।"

"आपका मन्दिर बाहर थोड़े ही है।"

"तो फिर कहाँ है ?"

"जहाँ आप रहते हैं ।"
"मैं तो इस मकान में रहता हूँ ।"
"और भी कहीं रहते हैं ?"
"कहाँ ?"
"हृदय में ।"
"किसके हृदय में ?" अनजान बनकर पूँछा।
"अपनी के ।" कह कर शीला हँस दी और भागती हुई बोली—"बापू को रोटी दे आऊँ ।"
"जरा जल्दी लौटना ।" कान्तीनाथ ने उतने ही तेज स्वर में कहा ।
"अच्छा ।" शीला का क्षीण स्वर कान्तीनाथ के कान में पड़ा ।
कान्तीनाथ दोपहर को सो न सके और लेटे-लेटे शीला के विषय में ही विचार करते रहे ।

५

उस दिन शीला हवा से बातें कर रही थी । उसके पैर जमीन पर न पड़ते थे । उसका उमंगित तन-मन उड़ कर बापू के पास पहुँच जाना चाहता था । मार्ग में उसी ओर शीला की सहेली चम्पा जा रही थी । शीला ने उसकी कोई परवाह न की और तेजी के साथ आगे निकलना ही चाहती थी कि चम्पा ने लपक कर उसे पकड़ लिया और पूँछा—
"कहाँ इतनी तेजी से भागी चली जा रही हो ?"
"बापू को खेत पर रोटी पहुँचाने ।" चम्पा के बराबर शीला ने चलते हुये उत्तर दिया ।
"सो तो तू रोज ही जाती है, लेकिन आज भागती हुई क्यों जा रही है ?'

"काफी देर हो गई है।" बापू भूखे होंगे और फिर...।" कह कर शीला रुक गई।

"और फिर क्या ?"

"बाबू जी की देख-भाल की जिम्मेदारी भी तो बापू मेरे ऊपर छोड़ गये हैं।"

"वही जहाज वाला बाबू न ?"

हाँ, हाँ, वही।"

"अभी तक तुम्हारे ही यहाँ पड़े हैं ?"

"अभी ठीक से उठ-बैठ भी तो नहीं सकते। उनका हर काम मुझे करना पड़ता है।"

"तब तो तुझे बहुत मेहनत पड़ती होगी ?"

"इसमें मेहनत की कौन सी बात ? दवा देना, पानी पिलाना, खाना खिलाना—इन कामों में क्या मेहनत ? अगर ऐसे काम मुझे दिन-रात भी करने पड़ें तो भी मैं न थकूँ।"

"हाँ, हाँ, तू क्यों थकने की ? तुझे तो आनन्द आता होगा उस बाबू का काम करने में।"

"तुझे कैसे मालूम ?"

"तेरी बातों से। तू ऐसे ढंग से बात ही कर रही है कि मैं क्या कोई भी तेरे दिल की बात जान सकता है।"

"तूने ठीक ही जाना है चम्पा। न जाने क्यों मुझे उनकी सेवा करने में आनन्द आता है।"

"बड़ी भोली बनती है। यह क्यों नहीं कहती कि उन्हें देवता मान बैठी है ?"

"वास्तव में वह देवता ही हैं। वह बहुत सीधे हैं। उनकी बातें बड़ी अच्छी लगती हैं।"

"जिस दिन बापू यह सब जानेंगे उस दिन तुझे मालूम होगा।"

"बापू ही तो सेवा करने को कहते हैं।"

"सेवा करने को कहते हैं, लेकिन यह थोड़े ही कहते होंगे कि तू उन्हें देवता मान कर पूजा करने लगे।"

"मगर वह हैं ही इतने अच्छे कि जो भी मेरी जगह होता उन्हें देवता मानता।"

"ले तेरा तो खेत आ गया। वह सामने तेरे बापू बैठे हैं।" चम्पा कह कर अपने खेत की ओर मुड़ गई।

खेत के पास ही पेड़ के नीचे बैठे हीरा सुस्ता रहे थे। वहीं दोनों बैल खड़े थे। शीला ने पास जाकर रोटी रखते हुये कहा—"आज बापू देर हो गई आने में।"

"मैंने तो मना किया था आने को, लेकिन तू भला कब मानने वाली है।"

"मेरे रहते बापू तुम भूखे रहो—ऐसा कैसे हो सकता है?" रोटी खोलते हुये शीला ने कहा।

"कितना ध्यान रखती है तू मेरा? सोचता हूँ जब तू चली जायेगी तब क्या होगा?"

"कहाँ बापू?"

"अपने घर।"

क्या मैं अपने घर में नहीं?"

"लड़कियाँ जहाँ पैदा होती हैं—वह घर उनका अपना नहीं होता। उन्हें तो कुछ दिन बाद वह घर छोड़ कर दूसरे घर जाना होता है।" रोटी का टुकड़ा तोड़ कर मुँह में रखते हुए हीरा ने कहा।

"लेकिन बापू मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी।"

"ऐसा भी कहीं होता है। हर लड़की की तरह तुझे भी जाना होगा।"

"तो फिर आपकी देख-भाल कौन करेगा?"

"तेरी माँ के बाद मेरा जीवन तो भगवान के सहारे है। किसी न किसी तरह शेष जीवन कट ही जाएगा।"

"अपने जीते जी बापू मैं आपको किसी के सहारे नहीं छोड़ सकती।"

"बेटी के लिए बापू को अपने सुख का बलिदान करना पड़ता है,

लेकिन बाप के लिये बेटी अपने सुख का बलिदान करे—ऐसा कहीं होता है ?"

"बापू ! उचित बात यदि आज तक नहीं हुई है तो क्या अब भी न हो ?"

"हो बेटी अवश्य हो, लेकिन उचित को अनुचित बना कर परम्परा का निर्माण तो नहीं किया जा सकता ।"

"जिसने पाल-पोस कर मुझे इतना बड़ा किया—क्या उसकी सेवा करना मेरा धर्म नहीं है ?"

"है, लेकिन उसके प्रति नहीं । इस धर्म का पालन तुम अपनी सन्तान के लिये करना ।"

"बापू ! आप तो मेरी बात कभी नहीं मानते ।"

"मानता क्यों नहीं । जो मानने योग्य होती है उसे मान लेता हूँ । क्या तू चाहती है कि तेरी अनुचित बात मान कर तुझे उचित-अनुचित का ज्ञान न कराऊँ ?"

"ऐसा मैं कब चाहती हूँ ?" सिर नीचा किए हुए शीला ने मन्द स्वर में उत्तर दिया ।

"अच्छा ले, यह एक रोटी बच गई है—तू खा ले ।"

"बापू मैं खाकर आई हूँ ।"

"सो तो तू रोज ही खाकर आती है, लेकिन इतनी दूर चल कर आई है, भूख लग आई होगी ।"

"बापू ! मुझे बिल्कुल भूख नहीं है । अगर पेट में जरा भी साँस होती तो खा लेती ।"

हीरा ने रोटी के दो टुकड़े किये और एक-एक टुकड़ा दोनों बैलों को खिलाते हुये कहा—"अब तू सीधे घर जा ।"

"इतनी जल्दी बापू ?"

"बाबू जी वहाँ अकेले पड़े होंगे । अगर उन्हें पानी-वानी की आवश्यकता होगी तो कौन देगा ?"

"बापू । वह अपना सब काम अपने हाथों कर लेते हैं । अब उन्हें किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं ।"
"ऐसा क्यों सोचती हो बेटी । दो-चार दिन के और मेहमान हैं वह । एक न एक दिन तो चले ही जायेंगे । हम क्यों उनकी सेवा करने से चूकें । सेवा से बढ़कर संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं है ।"
"आपका कहना तो वह मान लेते हैं, लेकिन मेरी बात नहीं मानते ।"
"ऐसी क्या बात हो गई ?"
"मैं आपके बाद दवा खिलाने गई तो उन्होंने मेरे हाथ से दवा नहीं खाई ।"
"तेरे हाथ से खाने में उन्हें संकोच होता होगा । बड़े ही शिष्ट हैं वह ।"
"डाक्टर जो हैं ।"
"तुझे कैसे माळूम कि वह डाक्टर हैं ?"
"उन्होंने आज मुझे बताया । क्या आप को नहीं माळूम ?"
"माळूम है ।"
"तो फिर आपने मुझे बताया क्यों नहीं ?"
"मैंने सोचा शायद तुम्हें माळूम होगा ।"
"मुझे तो जो आप बताते हैं वही माळूम होता है ।"
"बेटी ! वह कोई मामूली डाक्टर नहीं । वह विलायत से पढ़ कर लौटे हैं ।"
"तब तो उनसे कहूंगी कि वह यहीं अपना दवाखाना खोल दें ।"
"ऐसा वह नहीं करेंगे ।"
"क्यों बापू ?"
"शहर के लोगों को ग्रामीण जीवन अच्छा नहीं लगता ।"
"लेकिन वह तो कहते हैं कि उनका यहाँ बहुत मन लगता है ।"
"तो फिर क्या है, पूँछ कर देखना ।"
"पूँछना क्या है, क्या वह हम लोगों की इतनी सी भी बात नहीं मानेंगे ?"

"हो स ता है कि मान जाय, लेकिन क्यों उनका जीवन नष्ट करना चाहती हो ?"

"उसमें जीवन नष्ट होने की क्या बात ? जैसे शहर में मरीजों को देखेंगे वैसे यहाँ।"

"यहां दो-चार मरीज ही मिलेंगे।"

"और शहर में ?"

"वहाँ हजारों मरीज होंगे।"

"तब तो बापू ये डाक्टर खूब रुपया कमाते होंगे ?

हाँ, बेटी ! कोई भी डाक्टर गरीब नहीं होता।"

"बापू ! तुम डाक्टर क्यों नहीं बने ?"

"भाग्य में तो हल जोतना बदा था—डाक्टर कैसे बनता।"

"काश ! आप भी डाक्टर होते और ढेर सा रुपया कमाते।"

"और मेरी बेटी ठाठ से रहती।" कह कर हीरा हँस दिये।

"नहीं बापू ? इस अवस्था में आप इतना परिश्रम करते हैं—मुझसे नहीं देखा जाता।"

"बेटी ! सब अपने-अपने कर्मों का फल है।"

"अभी तो आप कह रहे थे कि भाग्य में जो बदा होता है वही होता है और अब कहते हैं कि कर्मों का फल है ?"

"भाग्य और कर्म में अन्तर ही क्या है ? कर्म से ही तो भाग्य का निर्माण होता है।"

"कैसे ?"

"लोगों का ऐसा विचार है कि उस जन्म के कर्मों का फल इसी जन्म में मिलता है, इसलिये उस जन्म के कर्म ही इस जन्म का भाग्य हुआ। उसी के अनुसार मनुष्य को आचरण करना होता है।"

"तब तो बापू हमें इस जन्म में हाथ पर हाथ धरे बैठा रहना चाहिये।"

"क्यों ?"

"होगा तो वही जो भाग्य में बदा होगा।"

"लेकिन भाग्य जब बैठने देगा तब न। उसी के संकेत पर तो मनुष्य आचरण करता है।"

"तो क्या मनुष्य स्वयं कुछ नहीं करता ?"

"मनुष्य तो किसी भी कार्य का कर्ता मात्र है। उसके कार्य की प्रेरणा का श्रोत तो भाग्य ही है।"

"तब फिर बाबू जी क्यों कहते हैं कि हम लोगों ने उनकी जान बचाई ?"

"शिष्टाचार भी तो कुछ होता है।"

"आपने तो एक दिन कहा था कि शिष्टचार कृत्रिम होता है, कृत्रिमता असत्य होती है और असत्य से मनुष्य को घृणा करनी चाहिये।"

"हाँ, बेटी कहा था और सही कहा था. परन्तु मनुष्य आत्म-प्रशंसाप्रिय होता है। वह किसी भी किये गये कार्य के लिये अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है। इसी प्रशंसा प्राप्ति की आशा से मनुष्य अनेक कठिन से कठिन कार्य, जिनसे उसे कुछ भी व्यक्तिगत लाभ नहीं होने का, कर डालता है।"

"तो बाबू जी हम लोगों को खुश करने के लिये ऐसा कहते हैं ?"

"क्या तुम सुनकर खुश नहीं होतीं ?"

"उनका यह कहना मुझे नहीं अच्छा लगता।"

शीला की बात सुनकर हीरा सोच में पड़ गये। वह सोचने लगे कि प्रशसा प्राप्ति की अनिच्छा तो वहीं सम्भव है जहाँ आत्मीयता होती है।" हीरा को विचार मग्न देखकर शीला ने कहा—"क्या सोच रहे हो बापू ?"

"कुछ नहीं बेटी ! यों ही सोचने लगा कि तू बिल्कुल अपनी माँ की प्रतिरूप है। वह भी तेरी ही भाँति कभी भी मेरे मुँह से अपनी प्रशंसा नहीं सुनती थी। काश ! वह यदि आज जीवित होती तो अपनी बिटिया के विचार सुनकर फूली न समाती।" कुछ रुक कर—"अच्छा अब सीधे घर जा ! डाक्टर साहब अकेले पड़े होंगे।"

"मगर बापू मुझे तो अभी शीला बिनना है।"

"क्यों ?"

"शाम को खाने के लिये कुछ भी तो नहीं है ।"

हीरा ने कुछ सोचकर कहा— "अच्छा शाम की चिन्ता तू मत कर। मैं शाम को आकर प्रबन्ध कर लूँगा। इस समय तू सीधे घर जा।"

"अच्छा बापू।" कह कर शीला ने जूठे बरतन कपड़े में बाँधे और चलने को ज्योंही उद्यत हुई त्योंही हीरा ने कहा—"और देख धन्नो।"

"बापू अब मुझे यह नाम अच्छा नहीं लगता। आप और कोई नाम रख दीजिये मेरा।"

"क्यों, क्या डाक्टर साहब ने बुरा बताया है ?"

"नहीं, वह तो इसे अच्छा ही बताते थे, लेकिन उन्होंने मेरा नाम शीला रख दिया है।" सिर झुकाये ही शीला ने कहा।

"तो इसमें हर्ज क्या है ? मैं भी तुझे इसी नाम से पुकारा करूँगा।"

"अच्छा तो जा रही हूं बापू।" कहकर उसने पग बढ़ाये।

हीरा ने शीघ्रता से कहा—"जाते हुये वैद्य जी से कह देना कि बाबू जी को शाम को आकर देख लें।"

"अच्छा !" कहकर शीला दूने उत्साह से घर के लिये उड़ चली।

६

कान्तीनाथ के स्वास्थ्य में दिन पर दिन सुधार होता गया। वह अब भली भाँति उठने-बैठने लगे। घर में इधर से उधर जाना, बाहर निकल कर बैठना और गाँव के अन्य लोगों से वार्तालाप करना उनकी दिनचर्या हो गई थी। हीरा भी अपने कार्य में दत्त-चित्त होकर जुट गये थे। एक दिन कान्तीनाथ हीरा के साथ उसके खेत पर भी गये।

वहाँ के प्रत्येक कार्य-व्यापार का निरीक्षण किया उन्होंने। उन्हें एक नयी दुनियाँ का भान हुआ। ज्यों-ज्यों वह किसी वस्तु के लिये अपनी जिज्ञासा प्रकट करते त्यों-त्यों हीरा उनकी जिज्ञासा शान्त करते और भरसक ग्रामीण जीवन से परिचय कराते। वह नित्य नवीन वस्तुयें देखते और प्रसन्न होते। उन्हें उस ग्रामीण जीवन में अद्भुत आनन्द आ रहा था। दिन पर दिन व्यतीत हो रहे थे।

हीरा की अनुपस्थिति में वे दोनों खूब खुल कर बातें करने लगे। कान्तीनाथ हर प्रकार की बातें करते और शीला उन्हें बड़े मनोयोग से सुनती। देश विदेश की विचित्र बातें, जिन पर कोई ग्रामीण बाला सहसा विश्वास नहीं कर सकती, जानकर प्रसन्न होती और उससे भी अधिक जानने की जिज्ञासा व्यक्त करती। साधारण से साधारण बात जब वह कान्तीनाथ के मुँह से सुनती तो उसकी प्रसन्नता की सीमा न रहती। शीला कान्तीनाथ का हर प्रकार से ध्यान रखती थी। उनका प्रत्येक कार्य अपने हाथ से करती और उनकी रुचिकर प्रत्येक वस्तु की जैसे भी हो सकता वैसे व्यवस्था करती थी। कान्तीनाथ को भी इस जीवन में आनन्द का अनुभव हो रहा था, परन्तु माता-पिता से मिलने की आकांक्षा में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। अनेक बार उन्होंने अपनी यह अभिलाषा शीला के समक्ष व्यक्त की तो उत्तर में शीला के आँसू ही प्राप्त हुये। जब वह जाने को कहते तो वह रोने लगती। शीला को रोता छोड़ कर जाना कान्तीनाथ के बस की बात न थी। कान्ती-नाथ हर प्रकार से उसे समझाते कि वह कुछ दिन में पुनः वापस आयेंगे, परन्तु शीला विश्वास न करती, क्योंकि वह जानती थी कि नगर की रंगीन दुनियाँ में जाकर फिर कौन लौटता है। इधर कान्तीनाथ अपने घर जाने के लिये छटपटा रहे थे उधर शीला उनके गाँव छोड़ कर जाने की बात सुन कर व्याकुल हो उठती थी। संध्या समय तीनों लोग बैठ कर साथ ही भोजन करते। एक दिन हीरा ने दोनों पर उड़ती हुई दृष्टि डाल कर कहा—"आज कल क्या बात है,—देखता हूँ तुम

"मगर बापू मुझे तो अभी शीला बिनना है।"

"क्यों ?"

"शाम को खाने के लिये कुछ भी तो नहीं है।"

हीरा ने कुछ सोचकर कहा— "अच्छा शाम की चिन्ता तू मत कर। मैं शाम की आकर प्रबन्ध कर लूँगा। इस समय तू सीधे घर जा।"

"अच्छा बापू।" कह कर शीला ने जूठे बरतन कपड़े में बाँधे और चलने को ज्योंही उद्यत हुई त्योंही हीरा ने कहा—"और देख धन्नो।"

"बापू अब मुझे यह नाम अच्छा नहीं लगता। आप और कोई नाम रख दीजिये मेरा।"

"क्यों, क्या डाक्टर साहब ने बुरा बताया है ?"

"नहीं, वह तो इसे अच्छा ही बताते थे, लेकिन उन्होंने मेरा नाम शीला रख दिया है।" सिर झुकाये ही शीला ने कहा।

"तो इसमें हर्ज क्या है ? मैं भी तुझे इसी नाम से पुकारा करूँगा।"

"अच्छा तो जा रही हूं बापू।" कहकर उसने पग बढ़ाये।

हीरा ने शीघ्रता से कहा—"जाते हुये वैद्य जी से कह देना कि बाबू जी को शाम को आकर देख लें।"

"अच्छा !" कहकर शीला दूने उत्साह से घर के लिये उड़ चली।

६

कान्तीनाथ के स्वास्थ्य में दिन पर दिन सुधार होता गया। वह अब भली भाँति उठने-बैठने लगे। घर में इधर से उधर जाना, बाहर निकल कर बैठना और गाँव के अन्य लोगों से वार्तालाप करना उनकी दिनचर्या हो गई थी। हीरा भी अपने कार्य में दत्त-चित्त होकर जुट गये थे। एक दिन कान्तीनाथ हीरा के साथ उसके खेत पर भी गये।

वहाँ के प्रत्येक कार्य-व्यापार का निरीक्षण किया उन्होंने। उन्हें एक नयी दुनियाँ का भान हुआ। ज्यों-ज्यों वह किसी वस्तु के लिये अपनी जिज्ञासा प्रकट करते त्यों-त्यों हीरा उनकी जिज्ञासा शान्त करते और भरसक ग्रामीण जीवन से परिचय कराते। वह नित्य नवीन वस्तुयें देखते और प्रसन्न होते। उन्हें उस ग्रामीण जीवन में अद्भुत आनन्द आ रहा था। दिन पर दिन व्यतीत हो रहे थे।

हीरा की अनुपस्थिति में वे दोनों खूब खुल कर बातें करने लगे। कान्तीनाथ हर प्रकार की बातें करते और शीला उन्हें बड़े मनोयोग से सुनती। देश विदेश की विचित्र बातें, जिन पर कोई ग्रामीण बाला सहसा विश्वास नहीं कर सकती, जानकर प्रसन्न होती और उससे भी अधिक जानने की जिज्ञासा व्यक्त करती। साधारण से साधारण बात जब वह कान्तीनाथ के मुँह से सुनती तो उसकी प्रसन्नता की सीमा न रहती। शीला कान्तीनाथ का हर प्रकार से ध्यान रखती थी। उनका प्रत्येक कार्य अपने हाथ से करती और उनकी रुचिकर प्रत्येक वस्तु की जैसे भी हो सकता वैसे व्यवस्था करती थी। कान्तीनाथ को भी इस जीवन में आनन्द का अनुभव हो रहा था, परन्तु माता-पिता से मिलने की आकांक्षा में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। अनेक बार उन्होंने अपनी यह अभिलाषा शीला के समक्ष व्यक्त की तो उत्तर में शीला के आँसू ही प्राप्त हुये। जब वह जाने को कहते तो वह रोने लगती। शीला को रोता छोड़ कर जाना कान्तीनाथ के बस की बात न थी। कान्ती-नाथ हर प्रकार से उसे समझाते कि वह कुछ दिन में पुनः वापस आयेंगे, परन्तु शीला विश्वास न करती, क्योंकि वह जानती थी कि नगर की रंगीन दुनियाँ में जाकर फिर कौन लौटता है। इधर कान्तीनाथ अपने घर जाने के लिये छटपटा रहे थे उधर शीला उनके गाँव छोड़ कर जाने की बात सुन कर व्याकुल हो उठती थी। संध्या समय तीनों लोग बैठ कर साथ ही भोजन करते। एक दिन हीरा ने दोनों पर उड़ती हुई दृष्टि डाल कर कहा—"आज कल क्या बात है,—देखता हूँ

दोनों ही उदास रहते हो।''

''नहीं बापू ! ऐसी तो कोई खास बात नहीं है।'' कान्तीनाथ ने खाते हुये उत्तर दिया।

''फिर भी कुछ तो है ही ?''

''यों ही बापू इधर कुछ दिनों से माता–पिता की बहुत याद आ रही है।''

''वह तो स्वाभाविक ही है। बहुत दिन तो हो गये उनसे बिछुड़े हुये।''

''बापू पूरे तीन वर्ष एक महीना हो गया है उन्हें न देखे हुए। उन्हें समाचार पत्रों में मेरे जहाज के नष्ट होने की बात सुन कर महा-दुख हुआ होगा।''

''तो क्या उन्हें तुम्हारे यहाँ होने की सूचना नहीं है ?''

''नहीं।''

''तुम्हें एक पत्र डाल कर सूचित कर देना चाहिये था।''

''पत्र पाते ही वे लोग फौरन दौड़े आवेंगे। मैं नहीं चाहता कि उन्हें यहाँ तक आने का इस अवस्था में कष्ट दूँ।''

''वह तो ठीक है, परन्तु ज़िस पुत्र के जीवन से पूर्णतया निराश हो चुके हैं उसे जीवित देख कर उन्हें जितनी प्रसन्नता होगी उसके समक्ष यहाँ तक आने के कष्ट का कोई भी महत्व न होगा।''

''लेकिन बापू मैं खुद ही जाने की सोच रहा हूँ।''

''अभी-इतनी जल्दी।''

''अब तो बापू मैं खूब तन्दुरुस्त हो गया हूँ। आपके साथ खेतों पर जाता हूँ, इधर-उधर घूमता फिरता हूँ और अब मैं अपने को मरीज भी तो नहीं समझता।''

''हाँ, बेटे ! तुम तो स्वयँ ही डाक्टर हो। किसी के समझाने–बुझाने की आवश्यकता नहीं।''

''नहीं बापू,—ऐसी बात नहीं है। आपके दीर्वजीवन के अनुभव के समक्ष मेरी पढ़ाई–लिखाई सब व्यर्थ है।''

"यह तो बेटा तुम्हारी लायकी है कि ऐसा समझते हो, वरना तुम्हारे अनुभव का क्षेत्र हमारे से हजारों गुना बड़ा है। तुम देश-विदेश खूब घूमे हो। अनेक तरह के व्यक्तियों के सम्पर्क में आए हो। उनके रहन-सहन, चाल-ढाल तथा आचार-व्यवहार से बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया है तुमने। मेरा जीवन क्या है ? यह गाँव छोड़ कर अच्छी तरह कहीं रह भी तो नहीं पाया हूँ।"

एक माह में ही कान्तीनाथ और हीरा के सम्बन्ध इतने घनिष्ट हो गए थे कि व्यावहारिक शिष्टाचार प्रायः समाप्त हो चला था। कान्तीनाथ उन्हें 'बापू' कह कर सम्बोधित करते और वह उन्हें बाबू जी से 'तुम' शब्द से सम्बोधित करने लगे थे।

"बापू ! कभी-कभी सोचता हूँ कि अगर मेरा जहाज न खराब होता तो इस ग्रामीण जीवन के अनुभव से बंचित रह जाता।"

"कैसा लगा तुम्हें यह ग्रामीण जीवन ?"

"भारतीय जीवन दर्शन के अनुकूल तो यही जीवन है। यहाँ पारस्परिक प्रेम है, सहानुभूति है, भाई-चारे का सम्बन्ध है, जिनका अभाव पूर्णतया नागरी जीवन में पाया जाता है।"

"ईर्षा-द्वेष और घृणा आदि भी तो हैं यहाँ के जीवन में।"

"ये कहाँ नहीं हैं ? जहाँ प्रेम होगा वही घृणा होगी, जहाँ सहयोग तथा त्याग की भावना होगी वहीं ईर्षा–द्वेष होगा, फिर भी ग्रामीण जीवन में शान्ति है, जिसकी खोज में बड़े-बड़े नगरों के रहने वाले दिन रात एक किये दे रहे हैं।"

"यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुम्हें यह ग्रामीण जीवन पसन्द तो आया।"

"क्यों नहीं बापू,–यहाँ किस चीज की कमी है। आप लोगों की यह निस्वार्थ सेवा-भावना और आत्मीयता क्या और कहीं प्राप्त हो सकती थी ? कई देश हो आया, अनेक परिवारों के साथ सम्बन्ध भी रहा, परन्तु कहीं भी इस निःश्छल प्रेम के दर्शन न हो सके।"

"हम गरीबों के पास इसके अतिरिक्त रखा ही क्या है ?"

"इससे बढ़ कर है ही क्या बापू ? जिसके पास प्रेम, सहानुभूति और सेवा भावना है वह सँसार में सबसे बड़ा है ।"

"सत्य तो यही है, परन्तु पैसे ने मानव को इतना अँधा बना दिया है कि वह उनकी उपेक्षा करने लगा है ।"

"इनकी उपेक्षा करके बापू मन की शान्ति नहीं मिल सकती ।"

"इसी के सहारे बेटा इस गाँव में पड़ा हूँ । थोड़ी बहुत मन को शान्ति मिल जाती है वरना यहाँ रखा ही क्या है मेरा ? जब मेहनत-मजदूरी ही करनी है तो कहीं भी रह कर कर सकता हूँ ।"

"बापू ! आपका जीवन धन्य है । मुझे अपने आदर्श के साक्षात दर्शन आप में हो गये ।"

"क्या आदर्श है तुम्हारा बेटा ?"

"मानव-सेवा ।"

"मैं कई दिनों से यह बात तुमसे कहने वाला था ।"

"बापू ! आपके सम्पर्क में आने वाला स्वतः इस भावना की गाँठ बाँध लेता है, उससे कहने की आवश्यकता नहीं ।"

"तुम बेटा डाक्टर हो । यदि तुम्हारे हृदय में यह भावना प्रवेश कर गई है तो मैं समझता हूँ कि पीड़ित मानव की जितनी सेवा तुम्हारे द्वारा हो सकेगी उतनी अन्य के द्वारा नहीं ।" कह कर हीरा उठे और बाहर आकर हाँथ मुँह धोने लगे । साथ ही कान्तीनाथ और शीला भी उठ आये ।

बाहर आकर हीरा ने चारपाई पकड़ते हुए कहा—"तो फिर कब तक जाने की सोच रहे हो ?"

"मन तो कहता है कि कल ही चला जाऊँ और फिर जब आप आज्ञा दें ।"

"मन के विरुद्ध किसी को रोकना अच्छा नहीं होता । अगर तुम्हारा मन कल ही इस गाँव को छोड़ना चाहता है तो खुशी से जाओ,

लेकिन शीला से पूँछ लिया है ?"

"वह तो बापू कहती है कि यही दवाखाना खोल कर रहो ।"

"वह अभी नासमझ है । उसे उचित-अनुचित का ज्ञान कहाँ ?"

"नहीं बापू ! वह बड़ी समझदार लड़की है । उसे आपने इतना चतुर बना दिया है कि वह किसी शिक्षिता नागरी से कम नहीं ।"

"कुछ भी तो नहीं कर सका बेटा उसके लिये । बहुत चाहता था कि उसे कुछ ऊँची शिक्षा दिलाऊँ, लेकिन परिस्थितियों के चपेट में ऐसा आ फँसा कि कुछ भी न कर सका ।"

"तो बापू अब सही । आप उसे मेरे साथ शहर भेज दीजिए । वहीं घर में रहेगी और कालेज जाया करेगी ।"

"अरे बेटा ! अब मेरे लिये यह सम्भव नहीं । अब तो चाहता हूँ कि इसके उपयुक्त कोई लड़का मिल जाय और इससे मुक्ति पाऊँ ।"

"अभी इतनी जल्दी क्या है बापू ।"

"सिर पर बोझा लिए अधिक दिन नहीं जी सकूंगा । इसे हल्का करना चाहता हूँ । पता नहीं कब क्या हो जाय ? पका आम हूँ । जिस दिन टपक पड़ूँगा उसी दिन यह बेसहारा हो जायेगी । ऐसी परिस्थिति आने के पूर्व ही इसकी व्यवस्था करना चाहता हूँ ।"

"अभी तो बापू उसके खेलने-खाने के दिन हैं । गृहस्थी के जंजाल में डाल कर आप उसकी स्वतन्त्रता छीनना चाहते हैं ।"

"वह तो एक न एक दिन होना ही है । जीवन के उत्तरदायित्वों से दूर भागना स्वतन्त्रता नहीं है । जिस दिन उसे एक सुगृहणी के रूप में देख लूँगा उस दिन मुझे पूर्ण शान्ति मिल जायगी ।" पैरों के नीचे पड़ी चादर को खोलकर ओढ़ते हुये हीरा ने कहा—"बेटा ! अब सो जाओ । काफी रात हो गई है । अधिक रात तक जागना तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये हितकर नहीं है ।"

कान्तीनाथ चुपचाप अपने बिस्तर पर लेट गये ।

शीला दरवाज़े के पीछे खड़ी-खड़ी सब बातें सुन रही थी । दोनों के

मौन हो जाने के बाद भी वह काफी देर तक खड़ी रही। हीरा खुर्राटे भरने लगे। वह भी अपने बिस्तर पर जा लेटी। काफी देर तक इधर-उधर करवटें बदलती रही, लेकिन सो न सकी।

यही दशा कान्तीनाथ की थी।

शीला धीरे से उठी और बाहर वाले कमरे की ओर चल दी। दरवाजा धीरे से खोला और अन्दर प्रवेश किया। कान्तीनाथ ने समझ लिया कि शीला के अतिरिक्त कोई हो नहीं सकता। हीरा के खुर्राटे स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। शीला कान्तीनाथ के पास पहुंची और हाँथ से टटोल कर पैर पकड़े। कान्तीनाथ ने जान-बूझ कर कहा—"कौन ?"

कान्तीनाथ का स्वर तीव्र था। हीरा के खुर्राटे सहसा बन्द हो गये।

"मैं हूँ।" शीला ने बहुत ही मन्द स्वर में कहा।

"क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, यों ही देखने आई थी कि आप चादर ओढ़े हैं या नहीं। कहीं ठंढक न लग जाय।"

"जब तुम इतना ध्यान रखती हो तो ठंढक कैसे लग सकती है ?"

चादर ठीक से ओढ़ाने के पश्चात् शीला कक्ष के बाहर हो गई, परन्तु बाहर होते ही पैर वहीं रुक गये। कान्तीनाथ कान लगा कर उसके पैरों की आहट सुन रहे थे। बाहर शरद की विमल चांदनी छिटकी हुई थी। शीला की परछांहीं से स्वयं प्रतीत हो रहा था कि वह वहीं खडी है। कान्तीनाथ धीरे से उठे और बाहर आकर इधर-उधर देखा। शीला को विस्तर पर देखा, पर वह भी खाली था। निराश होकर ज्योंही वह अपने कमरे में प्रवेश करने लगे त्योंही दरवाजे के पीछे से शीला ने कान्तीनाथ की चादर पकड़ ली।

कान्तीनाथ ठिठक कर, वहीं खड़े हो गये। शीला ने सामने आकर कहा—

"किसे खोज रहे हो ?"

"तुम्हें।"

"क्यों ?"

"बातें करने के लिये।"

"कौन सी बातें ?"

"जो अभी बापू से हुई हैं।"

"तो चलो ऊपर चलकर बातें करें।"

शीला के साथ कान्तीनाथ ऊपर चले गये। छत पर एक छोटी सी मड़इया थी, जिसमें एक चारपाई पड़ी थी। उसी पर कान्तीनाथ बैठ गये और शीला नीचे पैरों के पास बैठ गई। कान्तीनाथ ने शीला के सिर पर हाँथ फेरते हुये कहा—"शीला।"

"जी।"

"सोच रहा हूँ कल घर चला जाऊँ।"

"मुझे छोड़ कर ?"

"यही तो नहीं कर पा रहा हूँ।"

"तो फिर ?"

"तुम भी मेरें साथ चलो।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"क्यों नहीं हो सकता ? आओ दोनों लोग मिल कर बापू से साफ-साफ बता दें और फिर वह भी तो चाहते हैं कि उच्च शिक्षा प्राप्त करो।"

"लेकिन और भी तो कुछ चाहते हैं वह।"

"वह क्या ?"

"मुझ से मुक्त होना।"

"तो क्या तुमने हम लोगों की बातें सुन ली हैं ?"

"हाँ, कुछ-कुछ सुन ली हैं।"

"तब तो फिर तुम्हीं बताओ अब क्या होना चाहिये ?"

"आपकी जो इच्छा हो सो करिये, मैं क्या बताऊँ।"

"कोई भी कदम उठाने के पूर्व तुम्हारी सलाह भी तो आवश्यक है।"

"मैं भला आपको क्या सलाह दे सकती हूँ ?"

"क्यों नहीं ? जिस समस्या का दोनों के जीवन से सम्बन्ध हो, उसके

समाधान का भी उपाय दोनों के सम्मिलित प्रयास का परिणाम ही होना चाहिये।"

"मुझे आपकी बौद्धिक शक्ति पर विश्वास है। आप जो भी करेंगे वह हमारे लिये हितकर ही होगा। आप समर्थ हैं। आपके लिये कुछ भी असम्भव नहीं।"

"वह तो सब ठीक है, परन्तु जिसने हमारे प्राणों की रक्षा की है उसी के घर डाका डालना अनुचित है।"

"डाका कैसा ? मेरे यहाँ क्या रखा है जो आप डाका डाल रहे हैं ?"

"हर अमीर-गरीब के पास उसकी इज्जत होती है, जिसका महत्व धन-सम्पत्ति से कहीं बढ़कर है। लड़की माँ-बाप की इज्जत है। जब बापू को यह पता लगेगा कि हमारा उनकी बेटी के साथ यह सम्बन्ध है तो क्या वह अपनी इज्जत पर डाका पड़ना नहीं समझेंगे ?"

"बापू ! बहुत समझदार हैं। वह बिना सोचे-समझे कोई कदम नहीं उठाते। आप से वह बहुत खुश हैं। वह आपकी सदैव प्रशंसा किया करते हैं।"

"लेकिन मुझे तो ऐसा लग रहा है कि इस रहस्य के खुलने के पश्चात् वह मुझे शत्रु की दृष्टि से देखेंगे।"

"हो सकता है, लेकिन मुझे विश्वास नहीं होता।"

"तुम अपने बापू के स्वभाव को अच्छी तरह समझती हो, लेकिन कोई भी साधारण पिता ऐसी स्थिति में मुझे अपराधी ही ठहरायेगा।"

"हाँ, अपराधी ही ठहराता, परन्तु मैं नहीं।" कहते हुये हीरा जीने के घने अंधकार से चांदनी में आ गये।

दोनों हीरा को देखकर सन्न रह गये। पृथ्वी पैरों के नीचे से खिसक गई। दोनों के काटो तो खून नहीं। शर्म के कारण दोनों के सिर नीचे झुकते जा रहे थे। हीरा ने आगे बढ़कर कान्तीनाथ के कंधे पर हाँथ रखते हुये कहा—"बेटा कान्ती ! मैं शीला का पिता हूँ।"

"बापू ! मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ।"

"इसमें शर्म की क्या बात ?"

"मैंने आपके साथ विश्वासघात किया है।"

"विश्वासघात तो तब कहा जाता जब मैं तुम दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध से अनभिज्ञ होता।"

"तो क्या आपको पता था कि हम दोनों ......।"

"हाँ, मुझे उसी दिन इसका कुछ-कुछ आभास मिल गया था जिस दिन तुमने धन्नों से इसे शीला बना दिया था, लेकिन मैं यह नहीं समझता था कि शीला तुम्हारे बगैर रह नहीं सकती।"

"मगर बापू ! आप तो जानते ही हैं कि मेरा जाना कितना आवश्यक है।"

"वह तो जानता हूँ, परन्तु शीला के लिये क्या कहते हो ?"

"अगर आप आज्ञा दें......।"

"हाँ, हाँ, कहो, रुक क्यों गये ?"

"शीला भी साथ जाने को तैयार है।"

"और तुम साथ ले जाने को तैयार नहीं ?"

"यह बापू आप क्या कह रहे हैं। मेरा तो यह अहोभाग्य होगा यदि शीला जैसा जीवन साथी मुझे प्राप्त हो जाय।"

"तब फिर क्या मैं शीला को तुम्हारे साथ न भेज कर इसका जीवन नष्ट करूँगा ! मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मेरा है ही कौन अब इस संसार में ?"

शीला आकर अपने बापू से चिपट गई। हीरा बेटी के सिर पर हाँथ फेरने लगे। कान्तीनाथ का भय शनैः शनैः दूर हो रहा था। हीरा ने पुनः कान्तीनाथ को सम्बोधित करते हुये कहा—"बेटा ! शीला की यही एक मात्र मेरे पास निशानी है। इसकी माँ का नाम भी शीला था। आज मैं तुम्हें अपनी एक मात्र सन्तान तुम्हें सौंप रहा हूं।" कान्तीनाथ के हाँथ में हीरा ने शीला का हाथ पकड़ा दिया और कहा—"इसकी रक्षा करना अब तुम्हारा धर्म है, और बेटी ! पति की सेवा करना तुम्हारा।" कहते ही हीरा के नेत्र अश्रु पूरित हो उठे। अँगौछे

से अश्रु कण पोंछते हुये उन्होंने कहा—"आओ ! मेरे साथ नीचे आओ ।" कह कर हीरा जीने की ओर बढ़े । शीला और कान्तीनाथ भी साथ ही उतरने लगे ।

आँगन के कोने में रखी हुई कुदाल हाँथ में लेकर हीरा भीतर की कोठरी की ओर बढ़ने लगे । बगल में आले से चिराग को उठाते हुये हीरा ने कहा—"आओ तुम लोग वहाँ क्यों खड़े हो गये ?"

कान्तीनाथ और शीला भी उसी ओर बढ़े । हीरा आगे थे और वे दोनों पीछे । कोठरी के भीतर प्रविष्ठ होने के पश्चात् हीरा ने दीपक शीला को देते हुये कहा—"ले बेटी ! जरा इसे थाम ले ।"

शीला ने दीपक पकड़ लिया ।

"बेटा ! तुम इस ओर खड़े हो जाओ ।" एक कोने की ओर संकेत करते हुये हीरा ने कान्तीनाथ से कहा ।

कोठरी के बीचों-बीच हीरा ने कुदाल चलानी प्रारम्भ की । मिट्टी खुदने लगी । गड्ढा होने लगा । दो चार कुदाल हीरा मारते और फिर उसकी मिट्टी निकालते । धीरे-धीरे बाहर मिट्टी का ढेर लगता गया । कुछ देर के पश्चात् हीरा ने शीला से कहा—"जरा दीपक इधर दिखाओ ।"

शीला ने पास जाकर गढ़े को प्रकाशित करने का प्रयास किया । हीरा ने गढ़े से एक छोटा सा लोहे का डिब्बा निकाला । उसे खोलकर कान्ती-नाथ को दिखाते हुये कहा—"लो बेटा ! शीला के साथ इसे भी स्वीकार करो । इसके अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है देने को । काश ! मेरे वे दिन होते तो आज मैं न जाने क्या-क्या तुम्हें देता ।"

डिब्बे में रखे जेवरों पर दृष्टि डालते हुये कान्तीनाथ ने कहा—"बापू ! ये तो बड़े बहुमूल्य प्रतीत हो रहे हैं ।"

"हाँ बेटा । वास्तव में ये बहुमूल्य हैं । इसके पैदा होने के दो माह पश्चात् मुझे खेत के एक कोने में ये गड़े हुए मिले थे ।"

"तब से आप इन्हें वैसे ही रखे हुये हैं ?" कान्तीनाथ ने आश्चर्य प्रकट किया ।

"शीला की अभिलाषा थी कि इन्हें बेटी के व्याह में दिये जांय। उसी दिन मैंने इन्हें यहाँ गाड़ दिया था। आज अवसर आया है इनके निकालने का।"

"लेकिन बापू ! घर में इस सम्पत्ति के होते हुये भी आप इतना कष्ट कर जीवन क्यों बिताते रहे ?"

"बेटा ! बेटी की वस्तु को पिता भला कैसे हाथ लगा सकता है ? आज मैं यह धन और शीला को तुम्हें सौंप कर निश्चिन्त हो गया। लेकिन एक बात सदैव ध्यान रखना कि कोई भी पुरुष गृहलक्ष्मी को दुखी कर के कभी सुखी नहीं रह सकता। शीला को कभी दुख न देना बेटा— इसकी मैं तुमसे भिक्षा माँगता हूं।" हीरा का स्वर विनय से परिपूर्ण था।

"आप विश्वास रखिये......।"

"वह तो मैं जानता हूं, फिर भी तुम भी मनुष्य हो। मनुष्य का स्वभाव परिवर्तनशील होता है। पता नहीं कब उसके मस्तिष्क में शैतान प्रवेश कर जाय।"

"बापू ! रिक्त मस्तिष्क में शैतान प्रवेश करता है।"

"हाँ बेटा ! तुम तो समझदार हो, लेकिन एक बात और कहना चाहता हूं कि यदि जीवन में उन्नति करना चाहते हो तो गरीब को अपनाना। गरीब अकृतज्ञ कभी नहीं होता। किसी के द्वारा किये गये उपकार का बदला वह अपने प्राण देकर भी चुकाने को सदैव तैयार रहता है। संसार में जो भी महान बन सका है उसने गरीबों को ही गले लगाया है।"

"बापू ! मुझे बचपन से ही गरीबों के प्रति सहानुभूति है।"

"गरीबों के प्रति सहानुभूति तो बेटा सभी रखते हैं परन्तु उसे कार्य रूप में परिणत विरले ही कर पाते हैं और जो भी ऐसा कर सका है उसका नाम क्या कोई इस संसार से मिटा सकता है ? उनकी सहानुभूति अमर है।"

"बापू ! मैं आपके निर्देशित मार्ग का अनुसरण अवश्य करूँगा।"
"और बेटी ! तुम भी अपना सेवा धर्म न भूलना। सेवा से पत्थर भी पिघल जाता है। इसका फल बड़ा मीठा होता है।" शीला पर दृष्टि डालते हुये हीरा ने कहा—"अच्छा, अब जाओ तुम लोग। काफी रात बीत गई है।" कह कर हीरा ने जेवरों का डिब्बा कान्तीनाथ के हाथ में थमा दिया और कोठरी के बाहर हो गये।

७

कान्तीनाथ ने विलायत छोड़ने के कुछ दिन पूर्व ही तार द्वारा माता-पिता को सूचित कर दिया था। तार द्वारा पुत्र के स्वदेश लौटने का समाचार पाकर विमल बाबू और उनकी स्त्री अति प्रसन्न हुये थे। अपने समस्त नाते-रिश्तेदारों, परिचितों को उसकी सूचना दे दी थी। दूर-दूर से हितैषी गण आ-आकर विमल बाबू के यहां ठहरने लगे। विमल बाबू ने बँगले की सफाई करवाई। उसे खूब सजाया तथा उन समस्त प्रदर्शनों की व्यवस्था की जिनके द्वारा वह अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर सकते थे। एक-एक दिन पहाड़ सा मालूम देने लगा। अन्ततोगत्वा वह दिन आ ही गया जिस दिन कान्तीनाथ को हवाई अड्डे पर उतरना था। निश्चित समय से काफी पूर्व ही विमल बाबू अपनी स्त्री तथा अन्य हितैषियों सहित हवाई अड्डे पर पुत्र के स्वागतार्थ पहुँच गये। हवाई अड्डे पर वायुयान के पहुंचने का समय व्यतीत हो जाने पर भी जब वायुयान का कोई चिह्न न दिखाई दिया तो विमल बाबू ने एक अधिकारी से पूँछ-ताँछ की, लेकिन कुछ भी ज्ञात न हो सका। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हो रहा था त्यों त्यों चिंता बढ़ती जा रही थी। दो

घण्टा बीत जाने के पश्चात समाचार प्राप्त हुआ कि विलायत से आने वाला वायुयान मशीन खराब हो जाने के कारण पहाड़ी से टकरा कर चकनाचूर हो गया है और उसमें बैठे सभी यात्री समाप्त हो गये हैं। समाचार सुनते ही स्वागतार्थ आये हुये लोग व्याकुल हो उठे। उनके दुःख का वारापार न रहा। वातावरण करुण हो उठा। विमल बाबू अपने सुहृद मण्डल सहित निराश जुआँड़ी की भाँति वापस लौट आये। कान्तीनाथ की मृत्यु का समाचार विमल बाबू के लिए महान परि- वर्तनकारी सिद्ध हुआ। उन्होंने उसी दिन से लोगों के साथ उठना— बैठना, बातचीत करना आदि सब बन्द कर दिया। वह एकान्त में बैठे न जाने क्या सोचा करते। उन्हें कुछ भी न अच्छा लगता। दिन—रात चिन्ता में डूबे हुए देख कर लोगों को उनके पागल होने का भ्रम होने लगा। उनकी पत्नी विमला की स्थिति और भी दयनीय थी। खाना पीना तक उन्होंने छोड़ दिया था। कुछ नाते-रिश्तेदार ऐसे थे जो इन सँतप्त प्राणियों की सेवा कर रहे थे।

समय प्रत्येक वस्तु की कमी को पूरा कर देता है। विमला का ध्यान शनैः शनैः अपने छोटे पुत्र मुन्ना में केन्द्रित होने लगा। विमल बाबू ने भी प्रातः गंगा स्नान करना प्रारम्भ कर दिया और अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ में ही व्यतीत करने लगे।

एक दिन प्रातः काल बाहर लान पर कुर्सी डाले विमल बाबू समाचार पत्र देख रहे थे। कान्तीनाथ ने फाटक के अन्दर पैर रखते ही 'पिता जी' कहकर जोर से पुकारा और तेजी के साथ आगे लपके। विमल बाबू ने चश्मे के अन्दर से ही झाँक कर देखा परन्तु विश्वास न हुआ; इसलिये चश्मा उतार कर देखा। और जोर से चीख पड़े—"कान्ती बेटा।"

पिता-पुत्र दोनों आलिंगन बद्ध हो गये।

विमल बाबू की चीख विमला ने अन्दर से ही सुन ली। वह तत्क्षण बाहर के लिये तेजी से दौड़ पड़ीं। और कान्ती को पकड़ कर अपनी

को सम्हालने के उद्देश्य से कहा—"जरा शान्ति से काम लो। यह तो जानो कि यह कौन है, कहाँ से आई है ? कान्ती इतना मूर्ख तो है नहीं जो ऐसी-वैसी लड़की को बहू बना लेगा।"

"तो तुम चाहती हो कि मैं समाज में मुँह न दिखा सकूँ। जब लोग पूँछेंगे कि कान्ती किसे बहू बनाकर अपने साथ लाया है तो मैं क्या उत्तर दूँगा उन लोगों को? उन लोगों के यह जानने पर कि मेरी बहू एक गँवार देहातिन है, क्या मैं मुँह दिखाने काबिल रहूंगा ? क्या मैं उन लोगों के ताने सुन सकूँगा ? कौन नहीं थूकेगा मेरे मुँह पर ?"

"लेकिन कान्ती भी उसे कैसे छोड़ सकता है ?"

"मैं तुम्हारी वकालत नहीं सुनना चाहता।" विमल बाबू पुनः बरस पड़े—"अगर वह उसे नहीं छोड़ सकता तो उसके लिये भी मेरे यहाँ कोई जगह नहीं।"

"समाज के भय से आप पुत्र को भी त्यागने को तैयार हैं ?"

"मैं पुत्र के मोहवश समाज विरोधी नहीं बन सकता।"

"पिता जी ! आप समाज विरोधी न बनिये।" कह कर कान्ती लौट पड़े। पग धीरे-धीरे उठा रहे थे। विमला ने दौड़ कर कान्ती को पकड़ लिया और मुँह की ओर देखकर कहा—"कहाँ जा रहे हो बेटा ?"

"जाने दो दर-दर ठोकर खाने के लिये।" विमल बाबू ने अपने स्थान से ही कहा।

विमला ने कहा—बोलो बेटा ?

"पिता जी ने तो आपकी बात का उत्तर दे दिया।"

"लेकिन कहाँ जाओगे ऐसी हालत में ?"

"जहाँ भाग्य ले जायेगा।"

"बेटा ! इसे जहाँ से लाये हो वहीं छोड़ आओ।"

"नहीं माँ ! जब समाज के लिये पिता जी हम दोनों को छोड़ सकते हैं तो इसके लिये मैं समाज को छोड़ सकता हूँ।" कह कर कान्ती आगे

बढ़ने लगे।

विमला दौड़ कर पति के पास गई और अनुनय भरे स्वर में बोली—"मत जाने दो कान्ती को।"

"चार दिन बाद सब अकल ठिकाने लग जायेगी।"

पति की बात सुनते ही विमला 'कान्ती बेटा' कह कर ज्योंही चलने को हुई त्योंही विमल बाबू ने पत्नी को पकड़ लिया।

कान्ती ने शीला की बाँह पकड़ी और शनैः शनैः फाटक के बाहर होगये। माँ की पुकार कान में पड़ रही थी। कान्तीनाथ शीला सहित आगे बढ़ रहे थे। घर दूर होता जा रहा था।

८

कान्तीनाथ रास्ते भर विभिन्न प्रकार की कल्पनाओं में डूबे रहे। वे समस्त रंगीन कल्पनायें पिता के समक्ष धूल धूसरित हो गईं। ऐसी बात नहीं थी कि वह अपने पिता के रूढ़िवादी स्वभाव से परिचित न हों फिर भी यह सोच कर कि वह अपने पुत्र की प्राण रक्षिका को अवश्य स्वीकार कर लेंगे। इसलिये वह शीला को साथ ही लेते आये थे। शीला को साथ लिये कान्तीनाथ लक्ष्यहीन पथ का अनुसरण कर रहे थे। कुछ दूर चलने के पश्चात् एक पार्क दिखाई दिया। उसमें पड़ी बेंच पर जाकर दोनों लोग बैठ गये। रास्ते भर शीला कुछ न बोली थीं, परन्तु बैठते ही फौरन बोल पड़ीं--"मुझे मेरे घर भेज आइये न।"

"यह तुम क्या कह रही हो?"

"मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण आपको माता-पिता से अलग होना पड़े।"

"तो क्या मैं अपने कर्तव्य से विमुख हो जाऊँ?"

"मैं कहाँ कह रही हूँ, लेकिन माता-पिता की आशाओं पर भी तो

तुषारापात करना उचित नहीं।"

"उनकी आशाओं पर तुषारापात तो उसी दिन हो गया था जिस दिन समाचार पत्रों में उन्होंने पढ़ा होगा कि अमुक वायुयान नष्ट हो गया जिसके समस्त यात्री मर गये। यदि भाग्यवश तुम्हारी सेवा के परिणाम-स्वरूप जीवित बच गया तो क्या तुम्हारे प्रति मेरा कोई भी कर्तव्य नहीं? और क्या उन्हें नहीं पूँछना चाहिये कि मैं कैसे बचा, एक महीने कहाँ रहा और तुम कौन हो आदि, लेकिन इन सब बातों का पूँछना तो दूर रहा—ऊपर से लगे आज्ञा देने कि मैं तुम्हें फौरन उनकी आँखों से दूर कर दूँ।"

"तो फिर अब क्या करियेगा?"

"उसी के विचार-विमर्श के लिये तो यहाँ बैठ गया हूँ। अब तुम्हीं बताओ कि क्या होना चाहिये?"

"मैं भला इतने बड़े नगर में क्या बता सकती हूँ? यदि मेरा गाँव होता तो मैं सब व्यवस्था स्वयं कर लेती।"

"अच्छी से अच्छी व्यवस्था तो यहाँ भी हो सकती है, लेकिन सबसे बड़ी समस्या रुपयों की है। एक भी पैसा मेरे पास नहीं है। उसके बगैर नगर में कुछ भी सम्भव नहीं।"

"उसकी चिन्ता आप क्यों करते हैं जब तक ये जेवर पास में हैं। इन्हें ले जाकर बेच दीजिये।"

"यह मैं कैसे कर सकता हूँ?"

"क्यों?"

"जिन्हें बापू ने इतने दिन सम्हाल कर रखा, अधिक से अधिक कष्ट उठा कर भी इनमें हाँथ तक नहीं लगाया, उन्हें मैं अभी से बेचना प्रारम्भ कर दूँ?"

"इनका सबसे बड़ा सदुपयोग तो यही है। संकट के समय भी यदि ये हमारे काम नहीं आते तो इनका कोई मूल्य नहीं।"

"कान्तीनाथ ने कुछ क्षणों तक सोचने के उपरान्त कहा"—जैसी तुम्हारी

इच्छा।"

"यह आप क्या सोच रहे हैं ? मैं नहीं चाहती कि आप मेरी इच्छानुसार चले, परन्तु इसके अतिरिक्त उपाय ही क्या है ?"

"यदि चलूंगा भी तो क्या मुझे बुरे रास्ते पर ले जाओगी ?"

"कोई भी स्त्री ऐसा कभी भी कैसे कर सकती है ?"

"क्यों नहीं ? अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं।"

"तो उन्हें कुछ भी कहा जा सकता हैं, लेकिन सुग्रहणी नहीं कहा जा सकता।"

"मैं तो अपनी सुग्रहणी के आदेशानुसार ही आचरण करना चाहता हूं।"

"तो फिर चलिये न जहाँ जेवर बिकते हों।" शीला ने मुस्कान बिखेरते हुये कहा।

कान्तीनाथ ने शीला का एक जेवर बेंच दिया। उससे काफी रुपये प्राप्त हो गये। उसके पश्चात नगर के उस भाग की ओर चल दिए जो श्रमिकों की बस्ती कहलाती थी। वहाँ बड़ी आसानी से एक अच्छा सा मकान किराये पर मिल गया। उसे ही अपना घर समझ कर दोनों ने भीतर प्रवेश किया। मकान बड़ा गन्दा था। काफी दिनों से बन्द पड़ा हुआ था, इसलिये कूड़ा काफी एकत्र हो गया था। एक भी क्षण अन्दर रुकने की इच्छा नहीं हुई। बाहर चबूतरे पर बैठ कर कान्तीनाथ ने कहा—"मैं जरा बाजार होता आऊँ तब तक तुम यहीं रुको।"

"अगर बाजार ही जा रहे हो तो कुछ सामान ही लेते आइयेगा।"

"क्या-क्या सामान लाना है ?"

"शीला ने अनेक गृहस्थी सम्बन्धी सामान गिना दिये।"

कान्तीनाथ चले गये।

शीला एक बार पुनः घर का निरीक्षण करने के लिये अन्दर जाना ही चाहती थीं कि बगल से एक स्त्री ने आकर पूँछा—"बहिन जी ! कहाँ की रहैं वाली हौ ?"

"गाँव की।"

"कउन जात की हौ ?"

शीला असमंजस में पड़ गई कि क्या उत्तर दें ? वह अभी तक नहीं जान पायी थी कि कान्तीनाथ की जाति क्या है। बिना पूँछे वह कैसे क्या कह दे और अपनी जाति बता नहीं सकती थी, क्योंकि अब कान्तीनाथ की ही जाति उसकी अपनी हो गई थी, इसलिये शीला ने कहा—

"बहिन ! यह सब क्यों पूँछ रही हो ?"

"अब तुम हमारी पड़ोसिन होइ गई हवौ—यही के नीतिन पूँछि लीन।"

"पहले यहाँ आकर बैठ जाइये, फिर सब बताऊँगी।"

वह पड़ोसिन स्त्री शीला के पास आकर बैठ गई। उसके कुछ भी पूँछने के पूर्व शीला ने प्रश्न किया—"कहाँ रहती हो ?"

"यहै हमार बगल वाला मकान हवौ।" उस स्त्री ने बगल के मकान की ओर हाँथ से संकेत करते हुये कहा।

"इस मकान में कितने दिनों से रह रही हो ?"

"छा साल होइगे।"

"तब तो काफी दिन हो गये। इसके पहिले कहाँ रहती थीं ?"

"गाँव माँ ?"

"यहाँ कैसे चली आई ?"

"उनकै नौकरी हियैं मिल माँ लागि गै। सो उहि हमहूँ का कुछ दिन बादि लिवा लाये।"

"कितने रुपये मिल जाते होंगे मिल में ?"

"कबहूं साठ कबहूं सत्तर।"

"बस ?"

"हाँ बहिन ! इससे ज्यादा कबहूँ नाहीं मिलत।"

"इतने में गुजर बसर हो जाती है ?"

"काहे नाहीं, यह तो औरत के हाँथे कै बात है। वह चाहै तो यहू तें कम रुपयों माँ काम चलाय ले। अगर कहूँ खर्चीली औरत भै तो फिर वहिके खातिर पाँचौ सौ कम हवैं।"

"कितने लोग हैं घर में ?"

"हम दोऊ जने हैं। दुइ लरिकवा और याक बिट्यावा है।"

"लड़की तो सयानी होगी।"

"हाँ, काम माँ हाँथ बटावति हवै।"

"तब तो तुम्हें जीजी आराम है।"

"तुमका का तकलीफ हवै ? इतना बड़ा मकान मिलि गवाहै रहैं खातिर।" बाबू जी सीधे साधे माळूम् देत हवैं और का चहिये ?"

"मकान तो मिल गया है, लेकिन इतना गन्दा है कि बिना साफ किये एक क्षण भी इसमें रुका नहीं जाता।"

"बहुत दिनन तै बन्द पड़ा हवै। सफाई तो करावै ही का पड़िहै। कुत्तौ जहाँ बैठत है हुआँ पूँछ हिलाय लेत है। एक कमरा अभै बइठै भर का साफ करि लेव, फिर धीरे-धीरे साफ़ करति रहेव।"

"यहाँ कहीं झाड़ू मिलेगी ?"

"मिलि है का-नाहीं, मगर तब तक के खातिन हम आपनि झाड़ू मँगाये देइति हवैं। "कह कर उस पड़ोसिन ने रग्घू को पुकारा। रग्घू दौड़ा आया। उसने रग्घू से कहा—"जरा झाड़ू तो उठाइ लाव जल्दी से।" रग्घू चला गया, लेकिन झाड़ू लेकर वह नहीं लौटा। उसके बदले राधा झाड़ू लेकर आ पहुंची। राधा को देख कर उस पड़ोसिन ने कहा—"जरा, यह आगे वाला कमरा तो झाड़ि डार।"

"अरे, मैं झाड़े लेती हूँ। इस बेचारी को क्यों कष्ट दे रही हो ?"

"यहि मां कष्ट-वष्ट कै का बात ? का अपन घर का नाहीं साफ करति हवै ?"

राधा ने थोड़ी ही देर में कमरा साफ कर दिया और घर से बाल्टी लाकर फर्स भी धो डाली। दो-एक बार उसकी सहायतार्थं शीला ने उठना चाहा, लेकिन उस पड़ोसिन ने न उठने दिया। शीला से उसकी बातें होती रहीं, लेकिन वह कुछ भी आगे पूँछ न सकी। कान्तीनाथ को सामने से आता हुआ देखकर पड़ोसिन ने कहा—"लेव तुम्हार बाबू

जी तो आय गये । अब हम जाइति हवै । अगर कउनिइ चीज कै जरूरति होय तो मँगाय लिहेव सकोच न करेव ।" कह कर वह स्त्री चल दी ।

कान्तीनाथ के हाथों से सामान शीला ने ले लिया और भीतर चली गई । कान्तीनाथ भी पीछे हो लिये । कमरे की सफाई देख कर आश्चर्य प्रगट करते हुये पूँछा—"इतनी देर में पूरा कमरा साफ कर डाला ?"

"कुछ मैंने थोड़े ही किया है ।"

"तो फिर किसने किया है ?"

"आपके जाने के पश्चात एक पड़ोसिन आ गई थीं । उन्होंने अपनी लड़की से साफ करवा दिया है ।"

"तो कहो पड़ोसी अच्छे मिले ।" बैठते हुये कान्तीनाथ ने कहा ।

"हाँ बेचारी बड़ी भली मालूम देती हैं ।"

कान्तीनाथ एक-एक करके झोले से सामान निकाल कर फर्श पर रखने लगे । शीला ने सर्व प्रथम तो अपना सामान देखा, लेकिन ज्यों ही अन्य वस्तुयें देखी त्यों ही पूँछा—"इन शीशियों में लाल-पीला क्या है ?"

"ये दवाइयाँ हैं ।"

"और इसमें क्या है ?"

"खोल कर देख लो ।"

शीला ने डिब्बे को इधर-उधर से खोलने का प्रयास किया, लेकिन खोल न सकीं । अपनी असमर्थता व्यक्त करती हुई बोलीं—"मुझसे नहीं खुलता यह ।"

"यह देखो ऐसे खुलता है ।" कहते हुये कान्तीनाथ ने डिब्बा खोल दिया ।

शीला ने साश्चर्य पूँछा—"यह सब छूरी चाकू क्यों लाये हो ? मैंने कब मँगाया था इन्हें ?"

"इन्हें मैं अपने लिये लाया हूँ ।"

"आपके किस काम की हैं ये चीजें ? ये तो हम औरतों के काम की हैं ।"

"इन्हीं से तो आपरेशन होता है।"

"यह आपरेशन क्या है?"

"चीर-फाड़।"

"ओह! मैं तो भूल ही गई थी कि आप डाक्टर हैं।" शीला खिल-खिलाकर हँस पड़ीं।

"क्यों?"

"मैं और लोगों के लिये डाक्टर हूँ, तुम्हारे लिये थोड़े ही हूं।"

"क्यों, अगर मैं बीमार पड़ूंगी तो क्या आप मेरी दवा नहीं करेंगे?"

"करूँगा क्यों नहीं, लेकिन तुम बीमार ही नहीं पड़ोगी।"

"क्यों नहीं, ऐसा कौन है जो कभी बीमार नहीं पड़ता। अगर डाक्टर बीमार हो सकते हैं तो उनकी पत्नी भी बीमार हो सकती है।" शीला कह कर मुस्करा दीं।

कान्तीनाथ भी अपनी हँसी न रोक सके।

शीला ने एक-एक वस्तु का भलीं-भाँति निरीक्षण किया। कान्तीनाथ नें भोजन खोल कर सामने रखते हुये कहा—"लो पहले भोजन कर लो।"

भोजन की ओर देखने के पश्चात शीला ने पति की ओर देखते हुये पूँछा—"क्या आप खाकर आये हैं?"

"नहीं तो।"

",तो फिर मुझसे खाने के लिये क्यों कहते है? आप पहिले खाइये न।"

"और तुम?"

"मैं आपके बाद खा लूँगी।"

",ऐसा गाँव में तो कभी नहीं किया। वहाँ तो जब कभी खाया साथ ही खाया।"

"तब की बात दूसरी थी।"

,'और अब क्या हो गया है?"

"अब हम लोगों के सम्बन्ध दूसरे हैं। पत्नी को पति के पश्चात ही भोजन करना चाहिये।"

"तुम्हारे ये आदर्श मेरे सामने नहीं चलने के। तुम्हें मेरे साथ ही खाना पड़ेगा।" कहकर एक मिठाई का टुकड़ा कान्तीनाथ ने पत्नी के मुँह में ठूँस दिया। शीला इन्कार न कर सकीं। उनका हृदय अतीव आनन्द से ओत-प्रोत हो गया।

भोजन के पश्चात् दोनों ने आराम किया। धीरे-धीरे संध्या होने लगी। कान्तीनाथ शीला को साथ लेकर बाजार घूमने निकल पड़े। बाजार में शीला की जिस वस्तु पर दृष्टि पड़ती, वही उपयोगी प्रतीत होती। शीला के संकेत पर कान्तीनाथ हर वस्तु खरीदते जाते। रात तक दोनों लोग वापस लौटे। शीला ने प्रत्येक वस्तु का पुनः निरीक्षण किया और व्यवस्थित ढंग से अलमारियों में रख दिया। कान्तीनाथ के आग्रह पर शीला ने होटल में खाना स्वीकार कर लिया था। वह अपने को एक नई दुनियाँ में पा रहीं थीं। प्रसन्नता से रोम-रोम पुलकित था। हर वस्तु नई थी उनके लिये। हर चीज में आकर्षण था। जिधर वह आकर्षित होती कान्तीनाथ उधर ही झुक जाते। खरीदी हुई वस्तुओं को करीने से रखने के पश्चात् शीला ने पति से कहा—"आप सोचते होंगे कि यह भी कैसी औरत है, ढेर सारी चीजें खरिदवा लाई।"

"मैं ऐसा क्यों सोचने लगा। जो वस्तु गृहस्थी के लिये आवश्यक है वह तो खरीदी ही जायगी।"

"मैं नहीं चाहती कि किसी वस्तु के लिये किसी के सामने हाथ फैलाना पड़े।"

"यह आदत तो मुझे भी नहीं पसन्द है।"

"दोपहर को पड़ोसिन कह रही थी कि जिस चीज की आवश्यकता हो मांगने में संकोच न करना।"

"तो क्या उन्हें हम लोगों के विषय में सब माळूम हो गया है?"

"वह तो सब जानना चाहती थीं, लेकिन मेंने उन्हें कुछ बताया ही

नहीं।"

"तब तो वह बुरा मान गई होंगी ?"

"नहीं, मैंने उन्हें बातों में ऐसा उलझाया कि उन्हें कुछ पूछने का अवसर ही न मिला।"

"क्यों न हो, चतुर बाप की बेटी जो ठहरीं।"

"और चतुर डाक्टर की पत्नी नहीं ?" शीला के मुँह से यह वाक्य निकला ही था कि पड़ोस से जोर-जोर रोने-पीटने की आवाज आने लगी।

कान्तीनाथ ने प्रश्न किया—"यह रोने की आवाज कहाँ से आ रही है।"

"पड़ोस से ही आती हुई माळूम देती है। पड़ोसिन का एक लड़का बीमार है। हो सकता है कि उसे ही.......।"

"मुझे क्यों नहीं बताया अभी तक ?" चलो जरा चल कर देखें तो।"

शीला कान्तीनाथ को पड़ोस में ले गई। वहाँ काफी भीड़ लगी हुई थी। चौधरी का लड़का बीमार था। एक व्यक्ति कह रहा था—"बेचारे का आखिरी वक्त है। बड़ी तकलीफ पा रहा है।"

"साँस बड़ी मुश्किल से ले पा रहा है।" उसी के साथ खड़े अन्य व्यक्ति ने कहा।

शीला आगे-आगे थीं और कान्तीनाथ पीछे-पीछे, इसलिये रोगी तक पहुँचने में कोई बाधा नहीं पहुँची। शीला को देख कर लोग स्वतः मार्ग कर देते थे। रुग्ण बालक की माँ ने शीला को देखकर कहा—"आओ बिटिया ! भगुआ हमें छोड़े जा रहा है।" धोती से आँसू पोंछ डाले उस स्त्री ने।

"क्या बीमार है ?" कान्तीनाथ ने प्रश्न किया।

"का बताई बाबू जी। सबै डाक्टर जवाब दइ दिहिन हैं। कउनौ न ठीक करि पायेसि हमरे बेटवा का।"

"फिर भी बताओ तो इसे बीमारी क्या है ?"

"यहि के पेट माँ बहुत दिनन से दरद होवा करत हवै। हम कउनौ

ध्यान नहीं दिहिन । वह दरद बढ़त गवा । कई डाक्दरन का दिखावा । दुइ-दुइ चार-चार दिना सबै दवाई दिहिन, मगर कोहू की दवा से फाइदा नहीं भवा । काल्हि तेरे यहिकै हालत बहुत खराब हवै । कउनौ डाक्टर हाथ नहीं लगावत हवै । एकु कहत रहै कि यहिका पेट चीरा जाई ।"

"तो क्यों नहीं चिरवाया ?"

"वह पाँच सौ रुपया माँगत रहै । हमरे पास यहि बखत पाँच पइसौ नाहीं हवैं । जौन कुछ रहै तउन डाक्दरन का खवाय दिहिन । अब हम कहाँ मे लाई पाँच सौ रुपया ओहिके देवैका ?"

उस स्त्री की बात सुनने के पश्चात कान्तीनाथ ने लड़के का पेट भली भाँति देखा । सीधे खड़े होकर स्त्री से पूछा—"तुम्हारा आदमी कहाँ है ?"

"कहिये बाबू जी ?" बगल में ही खड़े एक व्यक्ति ने कहा ।

"तुम इस लड़के के पिता हो ?"

"हाँ बाबू जी ।"

"इसका आपरेशन करवाना चाहते हो ?"

"मगर पैसा नहीं है हमारे पास जो आपरेशन करवाय सकी ।"

"अगर पैसा न खर्चा हो तो करवाओगे इसका आपरेशन ?"

"भगुआ की महतारी जानै ! हम का कही ?".

भगुआ की माँ ने कहा—"बाबू जी ! यहिका आखिरी वखत हवै । शरीरौ कै दुरदशा हुई जइहै ।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा ।" कहकर कान्तीनाथ चलने के लिये मुड़े । पास ही खड़े एक व्यक्ति ने प्रश्न किया—"क्या आप डाक्टर हैं ?"

"हाँ ।" शीला ने उत्तर दिया ।

उस व्यक्ति ने भगुआ के पिता चौधरी से कहा—"चौधरी क्यों नहीं करवाते भगुआ का आपरेशन जब डाक्टर साहब करने को कहते हैं ?"

"हम का जानी नेता जी ।"

"तुम नहीं जानोगे तो कौन जानेगा ? तुम्हारा लड़का है। तुम उसके बाप हो। मर तो वह रहा ही है। शायद बच जाय।"

"डाक्टर साहब ! कर दीजिये आपरेशन इसका।" चौधरी बोल उठे।

"जल्दी से पानी गरम कराओ। मैं अभी आता हूं।" कहकर कान्तीनाथ अपने मकान लौट आये। शीला भी साथ ही आ गई थीं। शीला ने कमरे में घुसते ही कहा—"क्यों व्यर्थ में अपयश मोल लेना चाहते हो। आखिरी सांस तो वह ले रहा है। वह भला कहीं बचने का ?"

"और अगर अच्छा हो गया तो ?"

शीला कुछ भी उत्तर न दे सकीं।

कान्तीनाथ ने अपना सब आवश्यक सामान लिया। वहाँ पहुंच कर एक कागज पर कुछ दवाइयाँ लिखीं और दस रुपये का एक नोट उस पर्चे के साथ नेता जी को पकड़ाते हुये कहा—"जरा ये दवाइयाँ फौरन मँगा लीजिये।"

नेता जी स्वयं ही दौड़े गये दवा लेने के लिये। दवा आते ही एक इन्जेक्शन कान्तीनाथ ने बच्चे को लगाया। गरम पानी में सब औजार धोने के बाद उन्होंने कहा—"कृपया एक व्यक्ति को छोड़कर सभी लोग बाहर हो जाँय।"

चौधरी और नेता जी के अतिरिक्त सभी लोग एक-एक करके बाहर हो गये। उन्हें देख कर कान्तीनाथ ने कहा—"आप लोग घबड़ाइयेगा तो नहीं ?"

"नहीं डाक्टर साहब। मैं स्वयं अपना आपरेशन करवा चुका हूं।"

पहले तो शीला कुछ देर वहीं खड़ी रहीं, लेकिन जैसे ही पेट चीरने के लिये कान्तीनाथ ने बड़ी चाकू निकाली वैसे ही शीला भी चौधराइन के साथ बाहर होगईं।

बाहर लोग विभिन्न प्रकार की आलोचनायें कर रहे थे। एक महाशय कह रहे थे—"बड़े-बड़े बहे जाँय गड़रिया थाह मागैं। इतने बड़े-बड़े डाक्टरों ने जवाब दे दिया। अब ये चले हैं भगुआ का आपरेशन करने।"

दूसरे सज्जन ने कहा—"कोई क्या जाने डाक्टर हैं भी या नहीं। केवल मुँह से कह देने भर से कोई डाक्टर थोड़े ही हो जाता है।"

"उन्होंने अपने मुँह से कब कहा था। वह तो उसकी स्त्री ने हामी भरी थी।" एक अन्य दर्शक ने कहा।

"यह तो सब ठीक है, लेकिन क्या माळूम–कहो यही डाक्टर साहब भगुआ के लिये भगवान सिद्ध हों।" एक दाढ़ी वाले ने कहा।

"अब तो भगुआ की दुरदशा होनी है सो होगी।" प्रथम महाशय ने अपना अभिमत प्रकट कर दिया।

शीला के बाहर आते ही आलोचना का बाजार जरा कुछ ठण्ढा पड़ गया। अनेक स्त्रियां खड़ीं थीं सभी शीला के मुँह की ओर देखने लगीं। एक स्त्री ने पूँछा—"अन्दर साहब कौन हंवैं तुम्हारे ?"

"मनई हवैं औ कौन हवैं।" भगुआ की माँ ने उत्तर दे दिया।

"कउने अस्पताल महियाँ हवै ई ?"

"किसी अस्पताल में नहीं।"

"तो फिर का कउनौ अपन दवाखाना हवै ?"

"नहीं, अभी कहीं नहीं है। अभी तो ये विलायत से डाक्टरी पढ़कर लौटे हैं।

"तो का ई विलायत पढ़ैं गये रहै ?"

"हाँ।"

"तब तो भगुआ जरूर ठीक होइ जइहै।"

"जब विलाइयौ का डाक्टर ओहि का न ठीक करि पैइहै तौ कौन ठीक करि है ?" एक अन्य स्त्री बीच में ही बोल उठी।

शीला बड़ी बेचैन थी। प्रत्येक व्यक्ति बहुत ही व्यग्र था जानने के लिये कि अन्दर क्या हो रहा है, परन्तु न तो भीतर कोई जा रहा था और न बाहर कोई आ रहा था। लगभग दो घण्टे पश्चात डाक्टर कान्तीनाथ बाहर निकले। पीछे-पीछे नेता जी थे। किसी को कुछ भी पूछने का साहस न हुआ। नेता जीं ने केवल इतना कह दिया कि आपरेशन सफल

हो गया है और डाक्टर साहब के साथ-साथ घर तक चले आये। शीला भी साथ होली थी।

नेता जी की बात सुनते ही सब लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे थे। कुछ ही देर के बाद नेता जी वापस आगये। लोगों ने उनसे अनेक प्रश्न किये।

नेता जी ने सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर दिया—"सुबह तक यदि भगुआ को कुछ नहीं हुआ तो फिर वह अमर है।"

अपने निर्णय अपने-अपने मन में लिये हुये शब लोग धीरे-धीरे खिसकने लगे।

९

कान्तीनाथ शेष रात सो न सके। उनके जीवन का यह प्रथम स्वतन्त्र आपरेशन था और फिर कोई साधारण भी न था। इसके लिये तो सभी डाक्टर जवाब दे चुके थे। यह बात दूसरी थी कि कुछ लोगों ने तो आपरेशन की भयंकरता से भयभीत होकर हाथ नहीं लगाया था और कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने भगुआ के प्राणों से अधिक पैसे को महत्व दिया था। धनी रोगी का असाध्य से असाध्य रोग भी डाक्टरों के लिये साध्य बन जाता है और अपना चिकित्सा कौशल दिखाने में नहीं चूकते जबकि गरीब रोगी का साधारण रोग भी यह कह कर टाल देते हैं कि यहाँ नहीं ठीक हो सकता, इसे अस्पताल ले जाओ। यही स्थिति भगुआ की थी। यद्यपि उसका रोग भयानक था और उसको इस स्थिति में लाने के उत्तरदायी डाक्टर थे, जिन्होंने साधारण दवा देकर टालना चाहा था तथापि वह ऐसा न था जिसके कारण उसे प्राणों से हाथ धोना पड़े। हाँ, यदि उस रात्रि उसकी कोई व्यवस्था न हो पाती

तो अवश्य ही इस संसार से चल दिया होता।
कान्तीनाथ अपने प्रथम प्रयास के परिणाम की चिन्ता में थे। यदि प्रारम्भ अच्छा होता है तो आधी सफलता प्राप्त हो जाती है। वह इस बात को भली भाँति समझते थे कि यदि मैं सफल हो गया तो यहीं से उनकी चिकित्सा चल डगरेगी और यदि इसमें सफलता न मिली और केस बिगड़ गया तो फिर उनके कौशल पर पानी फिर जायगा। धीरे-धीरे रात्रि की कालिमा छँटने लगी। भुवन भास्कर की प्रथम किरण के साथ ही चौधरी दौड़ा-दौड़ा आया और जोर-जोर से 'डाक्टर साहब, डाक्टर साहब' कह कर पुकारने लगा। कान्तीनाथ तो प्रतीक्षा कर ही रहे थे, तत्क्षण बाहर निकल पड़े। चौधरी ने डाक्टर साहब को देख कर कहा—"डाक्टर साहब! भगुआ ने आँखें खोल दीं।"
चौधरी के मुँह से यह सुनते ही कि भगुआ ने आँखें खोल दीं कान्तीनाथ वैसे ही नंगे पैर चल पड़े।

चौधरी के द्वार पर काफी भीड़ जमा थी। उस श्रमिक क्षेत्र में रात्रि भर में ही कान्तीनाथ सबकी चर्चा के विषय बन चुके थे। चौधरी के लड़के के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी कुछ लोग कान्तीनाथ के इसलिये विरोधी बन गये थे कि जिस आपरेशन को बड़े-बड़े डाक्टर न कर सके उसे करके भगुआ के शरीर की छीछालेदर क्यों कर दी। अतएव ऐसे लोग स्वयं और अपने साथ दस-पाँच लोगों को लेकर प्रातः होने के पूर्व ही चौधरी के द्वार पर एकत्रित होने लगे थे। अच्छी खासी भीड़ बन गई थी। कान्तीनाथ ने जाकर भगुआ को देखा। उसकी दवा सम्बन्धी व्यवस्था की और आवश्यक निर्देश देकर बाहर आ गये। भगुआ की माँ यह समझ कर बाहर आ गई थी कि जब डाक्टर साहब लड़के को देखते हैं तो सबको भगा देते हैं। कान्तीनाथ के बाहर निकलते ही उसने पूँछा—"डाक्दर साहब! कइस है भगुआ अब?"
"अब वह अमर है।"
कान्तीनाथ का उत्तर देना था कि सब लोगों के नेत्र प्रसन्नता से चमक

मुद्रा देखकर सरलता से समझा जा सकता था। शीला ने बाहर दृष्टि दौड़ाई तो क्या देखती है कि लगभग पचास स्त्री-पुरुष अपने-अपने बच्चों को लिये हुये खड़े हैं, धनियाँ के बच्चे को दवा देने के उपरान्त कान्तीनाथ ने एक-एक को देखना प्रारम्भ किया। तीन-चार को एक साथ देखने के उपरान्त उन्होंने दस-दस के पाँच नोट के साथ एक कागज पर कुछ दवाइयाँ लिख कर एक व्यक्ति को देते हुये कहा—
"जरा ये दवायें तो किसी दवाई की दुकान से लेते आओ।"
उपस्थित दवायें जिन बच्चों के अनुकूल पड़ती थीं, बना-बना कर देने लगे। शीला यह सब खड़ी-खड़ी देख रहीं थीं और मन ही मन प्रसन्न हो रहीं थीं। कान्तीनाथ को सभी बच्चों के निपटाने में दोपहर हो गई। यद्यपि प्रातःकाल से उन्हें दम मारने तक की फुरसत नहीं मिली थी फिर भी वह उसी लगन तथा स्फूर्ति के साथ प्रत्येक बच्चे को देखते रहे। शीला पति को व्यस्त देखकर अन्दर चली गईं और भोजन की व्यवस्था करने लगीं। बीच-बीच में वह कई बाहर आईं और देख कर चली गईं। जब कान्तीनाथ को फुरसत मिली तो उन्होंने बैठ कर साँस ली और पैर फैलाये। शीला ने पैर दबाते हुये कहा—"अभी आप स्वयं तो ठीक हैं नहीं और सुबह से इतना कठिन परिश्रम कर रहे हैं।"
"न करता तो क्या करता ? किसे वापस कर देता ?"
"कुछको शाम के लिये बुला लेते।"
"जिसे न देखता वही नाराज हो जाता।"
"हो जाता नाराज तो हो जाता। हराम की दवा लेंगे और उस पर भी नाराज होंगे। कब तक बाँटियेगा इसी तरह मुफ्त दवा ?"
"इन बेचारे गरीबों के पास पैसे कहाँ ?"
"वह तो ठीक है लेकिन आप ही कहाँ के इतने बड़े रईस हैं कि दवा मँगा-मँगा कर यों ही देते रहियेगा ?"
"जब तक पास में पैसा है तब तक दूँगा जब नहीं रहेगा तब देखा जायगा।"

"अच्छा, चलिये भोजन ठंढा हो जायगा।"

"भूख भी जोर की लगी है।" कहकर कान्तीनाथ ज्यों ही उठने लगे , चौधरी हाथ जोड़ कर सामने खड़ा हो गया आकर। कान्तीनाथ ने चौधरी को सामने खड़ा देख कर पूँछा—"कहो चौधरी कैसे आये? भगुआ तो ठीक है?"

"ठीक तो है डाक्टर साहब, मगर आपने सुबह कहा था कि दोपहर को फिर दिखा देना।"

"ओह! मैं तो भूल ही गया।" कह कर कान्तीनाथ बाहर आ गये।

"सुबह से ही इतने मरीज आपको घेरे रहे कि दम मारने तक की फुरसत तो आपको मिली नहीं—याद कैसे रहता?"

"यह तो हमारा काम ही है चौधरी।"

"डाक्टर साहब! एक बात मैं कहना चाहता हूं, यदि आप बुरा न मानें तो।"

"कहो, कहो, तुम्हारी बात का बुरा मैं क्यों मानने लगा? बड़े हो, बुजुर्ग हो जो कुछ भी कहोगे मेरे हित की ही बात कहोगे।"

"डरता हूं कहीं छोटे मुँह बड़ी बात न हो जाय।"

"डरने की क्या बात? जैसे इस बस्ती के चौधरी वैसे मेरे भी।"

"आपका दास हूं डाक्टर साहब!"

"अच्छा अब, अपनी बात कहो।"

"डाक्टर साहब! मैं सुबह से देख रहा हूं कि आपने पचासों मरीजों को देखा और बिना दाम लिये दवा दी।"

"हाँ।"

"ऐसा आप कब तक करते रहियेगा?"

"जब तक पास में पैंसा है।"

"और जब पैंसा नहीं रहेगा तब?"

कान्तीनाथ कुछ न बोल सके।

"चौधरी ने डा० साहब को मौन देखकर कहा—"आप कह सकते हैं

कि जब पास पैसा ही नहीं रहेगा तो दवा कहाँ से दूँगा ?"
"हाँ !"
"छकिन यह तो बहुत बुरा होगा। आज जहाँ आपकी प्रशंसा करते लोग नहीं थकते हैं, वहाँ उसी दिन गालियाँ देने लगेंगे। कहेंगे डाक्टर की चलने लगी तो लालची हो गया।"
कान्तीनाथ को यह जान कर आश्चर्य हो रहा था कि चौधरी कितनी सहानुभूति रखता है। जब शीला ने यही बात कही थी तब भी उन्होंने इस पर ध्यान दिया था, परन्तु चौधरी ने तो यथार्थ चित्र सामने उपस्थित कर दिया। उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया और भगुआ को देखने लगे। देखने के उपरान्त कहा—"ठीक तो है। जैसे मैंने बताया है वैसे ही दवा देते रहना—सब ठीक हो जायगा।" कह कर कान्तीनाथ बाहर आ गये। चौधराइन ने फिर प्रश्न किया—"कइस हवैं भगुआ डाक्टर साहब ?"
"ठीक है। जल्दी ही अच्छा हो जायगा।"
"जुग-जुग जियौ। लम्बी उमर होय तुम्हार। तुम बचाय लीन्हेव भगुआ का। भगवान होइ गयेव ओहिके खातिन।"
कान्तीनाथ अधिक वहाँ न रुके। चौधराइन के आत्मा की आवाज सुन कर वह सोचने लगे और क्या चाहिये इन गरीबों से ? ये गरीब दुआ के अतिरिक्त और दे ही क्या सकते हैं ? इनके पास है ही क्या ? परन्तु जैसे ही शीला और चाधरी की बात मस्तिष्क में आई वैसे ही वास्तविकता मूर्त रूप होकर नेत्रों के समक्ष आ खड़ी हुई। शीला भोजन के लिये पति की प्रतीक्षा कर रही थी। उन्हें आता हुआ देख कर फौरन भोजन परोसा और लाकर सामने रख दिया। कान्तीनाथ भोजन करने लगे। उन्होंने शीला से खाने के लिये एक भी बार न पूँछा। यह बात शीला को बुरी लगी, परन्तु उस विषय में कुछ भी न कह कर वह बोलीं—"आपकी यह लापरवाही मुझे अच्छी नहीं लगती।"
"कौन सी लापरवाही ?" हाथ का कौर जहाँ का तहाँ रुक गया।

"अपने स्वास्थ्य के प्रति।"
"उसके लिये तो तुम हो।" मुस्करा कर वह पुनः खाने लगे।
"तो फिर मेरे कहने के अनुसार आपको चलना पड़ेगा।"
"इसमें कहने की क्या आवश्यकता ?"
"यह मैं कुछ नहीं जानती। आप जो कुछ भी करेंगे अपने स्वास्थ्य और सामर्थ्य को ध्यान में रख कर करेंगे।"
'सामर्थ्य से तुम्हारा तात्पर्य रुपयों-पैसों से होगा ?"
"जी नहीं, उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। मेरे पास जो कुछ है वह सब आपका ही तो है। आप आज ही सब खर्च कर सकते हैं—मुझे कोई आपत्ति न होगी, लेकिन मैं यह कभी बरदास्त नहीं कर सकती कि आप अभी से इतना कठिन परिश्रम करें।"
"कौन सा कठिन परिश्रम कर डाला है मैंने ?"
"यह जो कल रात से आप जुटे हैं—कोई कम है ?"
"डाक्टर को तो इससे भी अधिक काम करना पड़ता है।"
"आप भी करिये, परन्तु स्वास्थ्य का ध्यान रख कर।"
"तो क्या तुम मुझे अभी बीमार ही समझती हो ?"
"नहीं तो क्या आप पहले की तरह अपने को स्वस्थ अनुभव करते हैं ?"
कान्तीनाथ कुछ न बोल सके।
"कहिये, चुप क्यों हो गये ?"
एक घूंट पानी पीते हुये कान्तीनाथ ने कहा—"उतनी शक्ति तो अभी अपने में अनुभव नहीं करता।"
"तो फिर आप ही बताइये कि इतना कठिन परिश्रम आपके लिये अनुचित है या नहीं ?"
"लेकिन मैं करता क्या ? इतने मरीज़ एक साथ आ गये, अगर उन्हें न देखता तो भी तो ठीक नहीं था।"
"तो फिर जैसी आपकी इच्छा। अपने को मरीज बना कर मरीजों को

खूब देखिये ।"

कान्तीनाथ ने अनुभव किया कि पत्नी नाराज हो गईं। उन्हें मनाते हुये उन्होंने कहा—"अच्छा भाई। इस बार क्षमा कर दो। अब कल से ऐसी गल्ती नहीं होगी।"

कृत्रिम क्रोध प्रकट करते हुये शीला ने कहा—"गल्ती तो वह होती है जो अज्ञानतावश हो जाती है। जान-बूझ कर किया जाने वाला अनुचित कार्य गल्ती थोड़े ही कहलाता है।"

"तो फिर क्या कहते हैं उसे ?"

"अपराध।"

"तो अपराध ही सही।"

"लेकिन अपराधी को तो दण्ड भुगतना पड़ता है।"

"मुझे तुम्हारा दिया हुआ हर दण्ड स्वीकार होगा।

"तो फिर मैं आज भोजन नहीं करूँगी।" शीला का इतना कहना था कि कान्तीनाथ ने अपनी भूल अनुभव की। तत्क्षण वह बोल उठे—"पता नहीं आज मुझे क्या हो गया है ?"

"क्या हो गया ?" शीला के स्वर में घबड़ाहट थी।

"अकेले ही खाने लगा मैं ?"

"तो क्या हुआ ?" शीला की मुस्कान खिल उठी।

"उसी मेरी भूल का तो यह प्रायश्चित करने जा रही हो।"

"कैसा प्रायश्चित ?"

"भोजन न करने का।"

शीला ने भली भाँति अनुभव कर लिया कि उन्हें साथ न खिलाने से पति को कितनी वेदना हुई है। अब और अधिक पति को व्यथित करना उचित न होगा—ऐसा सोच कर वह उठ खड़ी हुई और बोली—"आप घबड़ाइये नहीं, मैं प्रायश्चित नहीं करूँगी। जा रही हूँ भोजन करने।"

"वहाँ नहीं, यहीं ले आओ। मेरे सामने खाओ बैठ कर।"

शीला भोजन ले आईं और खाने लगीं। वह खा रहीं थीं और कान्तीनाथ उन्हें खाते हुये देख रहे थे। शीला भी दृष्टि उठा कर जब उनकी ओर देखती तो दृष्टि मिलती और वह मुस्करा देतीं। कान्तीनाथ वहीं लगे बिस्तर पर लेट गये और थोड़ी ही देर में नींद ने उन्हें अपने अधिकार में कर लिया।

१०

दिन पर दिन कान्तीनाथ के चिकित्सा कौशल, उदारता एवं सौजन्यता की प्रसिद्धि फैलतीं गई। श्रमिकों की वह बस्ती तो उनकी अनन्य भक्त हो गई। डा० साहब के द्वार पर कुछ न कुछ लोग सदैव सेवा के लिये हाथ जोड़े खड़े रहने लगे। खड़े क्यों न रहते। किसी के द्वारा किये गये उपकार के बदले को न तो उनमें भावना होती है और न सामर्थ्य। ऐसा तो समर्थ व्यक्ति ही सोचता है कि यदि अमुक व्यक्ति ने मेरे साथ कोई उपकार किया है तो कभी न कभी मैं भी उसके उपकार के बदले कुछ न कुछ किसी रूप में कर दूँगा, परन्तु दीन प्राणी ऐसा नहीं सोचते। वे जीवन भर उसके कृतज्ञ रहते हैं। कितनी ही उसकी सेवा करने के उपरान्त भी वे अपने को उस उपकार के ऋण से मुक्त नहीं समझते। और ठीक भी यही है कि कोई भी किसी के उपकार से मुक्त नहीं हो सकता। यह तो तभी सम्भव है जब उपकृत उपकार करने वाले की स्थिति में हो और वह उसकी स्थिति में, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं, अतएव उपकार के प्रति बदले की भावना नितान्त अनुचित है। हाँ, ऐसा भले ही हो सकता है कि उपकार करने वाला अपने में घमण्ड का अनुभव न करने लगे, इसलिये उसे भी

दूसरों का उपकृत होना चाहिये ।

डा० कान्तीनाथ की ख्याति बाल-चिकित्सा विशेषज्ञ के रूप में खूब फैल गई । नगर के कोने-कोने से रुग्ण बालक चिकित्सा के लिये आने लगे । प्रातः होते ही भीड़ लग जाती और दोपहर तक समाप्त होने का नाम ही न लेती । शीला बैठे प्रतीक्षा किया करतीं । एक ओर तो उन्हें अतीव प्रसन्नता होती यह देख कर कि पति की दिन पर दिन खूब उन्नति हो रही है, चारों ओर प्रशंसा के शब्द सुनने को मिल रहे हैं और ढेर के ढेर रुपये जमा हो रहे हैं, परन्तु उनके स्वास्थ्य और कष्ट पर ध्यान जाते ही समस्त खुशी प्रातःकालीन तारों की भाँति विलीन हो जाती । बड़ी मुश्किल से दोपहर को कुछ समय के लिये कान्तीनाथ विश्राम कर पाते और कभी कभी वह भी नहीं, क्योंकि धनी वर्ग डा० को अपने घर बुलाने में ही गौरव अनुभव करता है, और चिकित्सक नाहीं नहीं कर पाता । रात्रि के समय दस-दस और कभी-कभी तो बारह बजे तक वह घर वापस आ पाते । शीला को बैठे प्रतीक्षा करते हुये पाते तो मन में सोचते कि अब कल से जल्दी आ जाया करूँगा, परन्तु यह व्यवसाय ही ऐसा है कि कब किसका बुलावा आ जाय—कुछ जाना नहीं जा सकता । सुबह से काफी रात गये तक जन-सेवा में वह इतना व्यस्त रहते कि शीला का ध्यान भी न आता, परन्तु रात्रि को ज्योंही घर आते और शीला का उदास चेहरा देखते तो पत्नी के प्रति कर्तव्य भावना जाग्रत हो उठती । शीला व्यथित होने के कारण पति का उस उल्लास से स्वागत न कर पाती जितना पहले करती थीं । कान्तीनाथ किसी न किसी प्रकार पत्नी की असन्तोष भावना को शान्त करते और वह भी यह अनुभव कर मान जातीं कि प्रातःकाल तक के लिये तो वह उनके पास हैं हीं । प्रत्येक प्रातः जल्दी लौटियेगा कह कर शीला पति को विदा करतीं और वह शीघ्र वापस आने का आश्वासन देकर भी कभी न आ पाते । डा० कान्त की प्रैक्टिस के साथ ही साथ शीला की उदासीनता बढ़

रही थी। एक दिन रात्रि को शीघ्र लौटने पर जब शीला के चेहरे पर उल्लास की छटा न दिखाई दी तो डा० कान्त पास जाकर बोले-
"शीला! क्या बात है?"
शीला कुछ न बोली।
"बताओ न, बात क्या है?"
"कुछ नहीं।"
"तो फिर उदास क्यों नजर आ रही हो?"
"कौन उदास है?" कृत्रिम मुस्कराहट के साथ शीला ने कहा।
"कृत्रिम मुस्कराहट से कहीं उदासीनता छिपाई जा सकती है?"
"तो क्या मैं आज आपको उदासीन दिखाई दे रही हूँ?"
"अवश्य।"
"और रोज कैसी दिखाई देती हूँ?"
"उदास तो तुम कुछ न कुछ रोज ही रहती हो, परन्तु आज कुछ विशेष उदास दिखाई दे रही हो।"
"विशेष उदासी देखने की फुरसत आज आपको कैसे मिल गई?"
शीला के वाक्य में निहित व्यंग्य कान्तीनाथ से छुपा न रह सका। अपनी असमर्थता प्रकट करते हुये वह बोले-"तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करती?"
"क्या?"
"मेरी मजबूरी।"
"किस बात की?"
"मरीजों से छुट्टी न पा सकने की।"
"या अधिक से अधिक रुपया बटोरने की?"
"कैसे बातें कर रही हो?"
"क्यों, क्या बातों में कुछ विशेषता दिखाई दे रही है?"
"शीला! आज तुम्हें क्या होगया है?" कह कर डा० कान्त ने पत्नी को पकड़ कर अपनी ओर घसीटा। शीला ने कोई विरोध न किया।

पत्नी को अंक में समेटते हुये डा० कान्त ने कहा—"आज तुम बहुत नाराज माळूम देती हो।"
शीला ने एक क्षण के लिये पनि की आँखों में झाँका और सीने में मुँह छिपाते हुये बोलीं—"आपके बगैर मैं नहीं रह सकती।" कह कर वह सुबुकने लगीं।
"क्या मैं जानता नहीं ?" पत्नी के सिर पर हाँथ फेरते हुये डा० कान्त ने कहा।
"तो फिर क्या मिलता है आपको मुझे तड़फाने में ?"
"तड़फन।"
"नहीं।"
"तो ?"
"रुपया।" कह कर शीला मुस्करा दी।
"तो फिर लो।" कान्तीनाथ ने जेब से नोटों का बण्डल निकाल कर देते हुये कहा।
"मैं नहीं लेने की ये रुपये। इन्हीं ने तो आपको मुझ से अलग कर रखा है।" रुपयों की ओर देखते हुये कहा।
"तो लो मैं भी नहीं छुऊँगा इन्हें।" कह कर डा० कान्त ने नोटों का बण्डल एक ओर फेंक दिया। नोट फर्स पर बिखर गये।
शीला ने उन बिखरे हुये नोटों पर एक दृष्टि डाली और फिर पति की ओर देखा। कान्त किन्हीं विचारों में खोये हुये थे। जिसे वह अपने दुःख का कारण समझे बैठी थीं उसी के प्रति पति का यह विरक्त भाव देख कर वह अपने को न रोक सकीं और पति के गले में दोनों बाहें डाल कर झूल उठीं। कान्त भी अपने को न रोक सके और ताबड़-तोड़ कई प्यार के चिन्ह पत्नी के कपोलों पर अंकित कर दिये। शीला की मस्ती का वारा-पार न था। यदि शीला को वह थाम न लेते तो वह गिर पड़तीं। पत्नी को लाकर पळंग पर लिटा दिया और पास ही बैठ कर बोले—"कहाँ चली गई थी तुम्हारी यह खुशी ?"

न लगी। स्वभावानुकूल अपने को परिवर्तित करने की कला में वह अपना सानी नहीं रखते थे।

डा० कान्त रात्रि में सिटी मजिस्ट्रेट के लड़के को देखने जा चुके थे। रोगी की स्थिति असाधारण खराब होने के कारण रात को वह न आ सके और प्रातः उन्हें इतना अवकाश ही न मिला कि वह शीला से मिल कर अस्पताल जाते, अतएव सीधे वह वहीं चले गये। फोन द्वारा उन्होंने केवल सूचित कर दिया कि वह दोपहर तक लौट सकेंगे। शीला रात से वैसी ही लेटी थीं। प्रातः आठ बज गये, लेकिन उन्होंने उठने का नाम न लिया।

सिनहा भी शीला से मिलने का वही समय चुनते जिस समय डा० साहब के बँगले पर होने की सम्भावना न होती। सिनहा ने आकर बिजली की घंटी का बटन दबाया। अन्दर से नौकरानी ने झाँका तो सिनहा ने पूँछा—"डाक्टर साहब हैं अन्दर ?"

"जी नहीं।"

"और भाभी साहिबा ?"

"वह हैं।"

"उनसे कह दो जाकर कि मैं मिलना चाहता हूं।"

नौकरानी अन्दर गई और थोड़ी ही देर में बाहर आकर बोली—"वह कह रही हैं कि फिर कभी आइये। इस समय उनकी तबियत ठीक नहीं है।"

"क्या कहा ? भाभी साहिबा बीमार हैं ?" सिनहा का स्वर इतना ऊँचा था कि अन्दर तक सुनाई दे रहा था। सम्भवतः उनका आशय भी यही था कि शीला भी उनकी बात सुन लें। एक क्षण रुक कर सिनहा ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—"आश्चर्य की बात है कि भाभी साहिबा की तबियत ठीक नहीं है और भाई साहब घर पर नहीं हैं। अभी मैं फोन करके उन्हें बुलाता हूं।" कह कर मि० सिनहा फोन के पास जा पहुंचे और चोंगा उठा कर नम्बर मिलाना ही चाहते थे कि

शीला ने बाहर ड्राइंग रूम में आकर कहा—"रहने दीजिये, फोन करने का कष्ट न कीजिये। जब उन्हें आना होगा वह स्वयं ही आ जायेंगे।"
शीला को सामने देख कर मि० सिनहा ने चोंगा रख दिया और सहानुभूति प्रगट करत हुये बोले—"ओह! आप तो बाहर निकल आईं। आपकी तबियत ठीक नहीं है। आपको तो लेटना चाहिये।"
"कल से तो लेटी हूं। कहाँ तक लेटूँ?" कह कर शीला कोच पर बैठ गईं।
"मुझे आश्चर्य हो रहा है कि आपकी तबियत ठीक नहीं है और भाई साहब बाहर हैं।"
'बाहर के मरीजों से उन्हें फुरसत ही कहाँ कि वह दो मिनट मेरे पास भी बैठ सकें।"
मि० सिनहा ने शीला के अभ्यान्तर में छिपी असन्तोष की भावना का कुछ-कुछ आभास पा लिया। अवसर से लाभ उठाते हुये उन्होंने कहा—"यह तो सरासर अन्याय है उनका कि बाहर के मरीजों को तो देखते फिरें और घर के मरीज की कोई फिकर ही नहीं।"
"किसकी-किसकी फिक्र करें?"
"किसी की करें या न करें, परन्तु आपका तो उन पर अधिकार है। आपकी सुख-सुविधा का तो ध्यान उन्हें रखना ही चाहिये।"
"आप अधिकार और सुख-सुविधा की बात करते हैं, उन्होंने कल रात से मरने-जीने तक की खबर तो ली नहीं है।"
"तो क्या भाई साहब कल रात से नहीं लौटे हैं?"
"रात को दस बजे सिटी मजिस्ट्रेट का फोन आया था कि उनका लड़का सख्त बीमार है। उसी समय वहाँ चले गये, तब से आज सुबह दोपहर तक आने का फोन किया था।"
"भाभी जी! क्या बताऊँ, भाई साहब भी कमाल के डाक्टर हैं। न जाने उनके हाथ में कौन सा जादू है कि जिस मरीज को छू लेते हैं वही अच्छा हो जाता है।"

न लगी। स्वभावानुकूल अपने को परिवर्तित करने की कला में वह अपना सानी नहीं रखते थे।

डा० कान्त रात्रि में सिटी मजिस्ट्रेट के लड़के को देखने जा चुके थे। रोगी की स्थिति असाधारण खराब होने के कारण रात को वह न आ सके और प्रातः उन्हें इतना अवकाश ही न मिला कि वह शीला से मिल कर अस्पताल जाते, अतएव सीधे वह वहीं चले गये। फोन द्वारा उन्होंने केवल सूचित कर दिया कि वह दोपहर तक लौट सकेंगे। शीला रात से वैसी ही लेटी थीं। प्रातः आठ बज गये, लेकिन उन्होंने उठने का नाम न लिया।

सिनहा भी शीला से मिलने का वही समय चुनते जिस समय डा० साहब के बँगले पर होने की सम्भावना न होती। सिनहा ने आकर बिजली की घंटी का बटन दबाया। अन्दर से नौकरानी ने झाँका तो सिनहा ने पूँछा—"डाक्टर साहब हैं अन्दर ?"

"जी नहीं।"

"और भाभी साहिबा ?"

"वह हैं।"

"उनसे कह दो जाकर कि मैं मिलना चाहता हूं।"

नौकरानी अन्दर गई और थोड़ी ही देर में बाहर आकर बोली—"वह कह रहीं हैं कि फिर कभी आइये। इस समय उनकी तबियत ठीक नहीं है।"

"क्या कहा ? भाभी साहिबा बीमार हैं ?" सिनहा का स्वर इतना ऊँचा था कि अन्दर तक सुनाई दे रहा था। सम्भवतः उनका आशय भी यही था कि शीला भी उनकी बात सुन लें। एक क्षण रुककर सिनहा ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—"आश्चर्य की बात है कि भाभी साहिबा की तबियत ठीक नहीं है और भाई साहब घर पर नहीं हैं। अभी मैं फोन करके उन्हें बुलाता हूं।" कह कर मि० सिनहा फोन के पास जा पहुंचे और चोंगा उठा कर नम्बर मिलाना ही चाहते थे कि

शीला ने बाहर ड्राइंग रूम में आकर कहा—"रहने दीजिये, फोन करने का कष्ट न कीजिये। जब उन्हें आना होगा वह स्वयं ही आ जायेंगे।"
शीला को सामने देख कर मि० सिनहा ने चोंगा रख दिया और सहानुभूति प्रगट करत हुये बोले—"ओह! आप तो बाहर निकल आईं। आपकी तबियत ठीक नहीं है। आपको तो लेटना चाहिये।"
"कल से तो लेटी हूं। कहाँ तक लेटूँ?" कह कर शीला कोच पर बैठ गईं।
"मुझे आश्चर्य हो रहा है कि आपकी तबियत ठीक नहीं है और भाई साहब बाहर हैं।"
'बाहर के मरीजों से उन्हें फुरसत ही कहाँ कि वह दो मिनट मेरे पास भी बैठ सकें।"
मि० सिनहा ने शीला के अभ्यान्तर में छिपी असन्तोष की भावना का कुछ-कुछ आभास पा लिया। अवसर से लाभ उठाते हुये उन्होंने कहा—"यह तो सरासर अन्याय है उनका कि बाहर के मरीजों को तो देखते फिरें और घर के मरीज की कोई फिकर ही नहीं।"
"किसकी–किसकी फिक्र करें?"
"किसी की करें या न करें, परन्तु आपका तो उन पर अधिकार है। आपकी सुख-सुविधा का तो ध्यान उन्हें रखना ही चाहिये।"
"आप अधिकार और सुख-सुविधा की बात करते हैं, उन्होंने कल रात से मरने-जीने तक की खबर तो ली नहीं है।"
"तो क्या भाई साहब कल रात से नहीं लौटे हैं?"
"रात को दस बजे सिटी मजिस्ट्रेट का फोन आया था कि उनका लड़का सख्त बीमार है। उसी समय वहाँ चले गये, तब से आज सुबह दोपहर तक आने का फोन किया था।"
"भाभी जी! क्या बताऊँ, भाई साहब भी कमाल के डाक्टर हैं। न जाने उनके हाथ में कौन सा जादू है कि जिस मरीज को छू लेते हैं वही अच्छा हो जाता है।"

"उनके इसी जादू ने तो मेरा जीवन तबाह करके रख दिया है।"

"वाह भाभी ! आप जैसा सुखी इस शहर में कौन होगा। आपके पास कार, बँगला, धन-दौलत और भाई साहब जैसा मनचाहा जीवन साथी सब कुछ तो है। कमी किस बात की है आपको ?"

"मन की खुशी के अभाव में यह सब व्यर्थ है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

"आप आज्ञा कीजिये। वह कौन सी चीज है जिससे आपका मन खुश हो सकता है ?"

"वह चीज जितनी ही मेरे पास है उतनी ही दूर भी है।"

"भाई साहब के अलावा भला कौन सी चीज हो सकती है।" मि० सिनहा ने दबी जबान से कहा।

"आपका अन्दाजा ठीक ही है। आपके भाई साहब ही मेरे लिये सब कुछ हैं। उनका अभाव मेरे लिये असह्य है और वह ऐसे हैं कि दिन-रात मरीजों के ही चक्कर में फँसे रहते हैं।"

"वास्तव में आप ठीक ही कह रही हैं। जैसे मर्ज मरीज को नहीं छोड़ना चाहता वैसे ही मरीज भाई साहब को नहीं छोड़ना चाहता।"

"और भाई साहब पैसे को।"

मि० सिनहा शीला की बात सुन कर अपनी हँसी न रोक सके। शीला खुल कर तो न हँस सकीं, परन्तु कुछ समय पूर्व की उदासीनता अवश्य विलीन हो गई।

"वाह भाभी जी ! आपकी हाजिर जवाबी का जवाब नहीं। ऐसी बात कह देती हैं कि दूसरे को चुप ही हो जाना पड़ता है। कायदा तो यह कहता है कि यदि मरीज भाई साहब को नहीं छोड़ते हैं तो भाई साहब आपको न छोड़े, लेकिन वह तो रुपये को आपकी जगह दे चुके हैं।"

"यही बात मैं भी अनुभव कर रही हूं। अब आप ही बताइये भला कि मैं कैसे खुश रह सकती हूं ? क्या मेरा मन नहीं करता कि कहीं

जाऊँ, घूमूँ–फिरूँ, और लोगों से मिलूँ-जुलूँ ? आखिर कब तक इस जेल में पड़ी रहूं।"

"वाकई में भाभी जी ! जेल की उपमा तो आपने बड़ी ही उचित दी है। आपके और एक कैदी के जीवन में क्या अन्तर ? जेल में कैदी जेलर के नियन्त्रण में रहता है और यहाँ आप भाई साहब के। पता नहीं यह सब अत्याचार आप अपने ऊपर क्यों होने देती हैं ?"

"न होने दूँ तो क्या करूँ ? स्त्री जो ठहरी। हमारे समाज के जितने बन्धन हैं वे सब नारी जाति के लिये ही तो हैं। क्या आपने नर कृत हिन्दू शास्त्रों को उठा कर नहीं देखा है कि सामाजिक जितने बन्धन हैं वे सब नारी ही को लेकर हैं।"

"वह तो हैं भाभी जी, परन्तु अब वे पुराने पड़ चुके हैं। उनका आज के जीवन में कोई महत्व नहीं। उन बन्धनों को मानने वाले हैं हीं कितने लोग ?"

"आप शहर के निवासी हैं न, इसीलिए ऐसी बात कह रहे हैं। आज भी करोड़ों भारतीय जनता उन्हीं के अनुसार आचरण करती है।"

"लेकिन यह जान बूझकर कि ये बन्धन आपकी स्वतन्त्रता का हनन करते हैं फिर भी आप जैसी विचारों की स्त्री इन्हें क्यों स्वीकार किये चली जा रही हैं ?"

"क्या करें, सामाजिक ढाँचा ही कुछ ऐसा बना चला आ रहा है कि उसके विरुद्ध आवाज उठाना समाज विद्रोही बनना है। ऐसे व्यक्ति को लोग असामाजिक, असाँस्कृतिक और यहाँ तक कि अभारतीय तक कह डालते हैं।"

"परन्तु साहसी लोग इन सब बातों की परवाह नहीं करते। वे अपनी धुन के पक्के होते हैं। जीवन का जो लक्ष्य निर्धारित कर लेते हैं उसकी प्राप्ति के मार्ग में आने वाली समस्त विघ्न बाधाओं को कुचलते हुये अग्रसर होते रहते हैं। मुझे तो आप में वह शक्ति दिखाई देती है जो चाहें तो समस्त प्राचीन मान्यताओं को जड़ से उखाड़ कर फेंक दें।

आप अपनी शक्ति को नहीं जानती। आपके एक संकेत पर न जाने क्या से क्या हो सकता है।"

"मन तो मेरा भी करता है कि सभी बन्धनों को एक दिन में ही समाप्त करके रख दूँ, लेकिन मजबूर हूं। छटपटा कर रह जाती हूं। कोई मार्ग ही नहीं सूझता।"

"आपने इस विषय में कभी कोई चर्चा ही नहीं की। आप अपनी इच्छा व्यक्त कीजिये, फिर देखिये उसकी पूर्ति के क्या-क्या साधन मैं खोज निकालता हूं।"

"एक तो कोई ऐसा अवसर ही नहीं आया कि हम लोग कुछ देर एकान्त में बैठकर विचार विमर्श कर सकते और दूसरे ऐसा कोई प्रसंग भी नहीं आया।"

"और आज भी न आता यदि मैं ही...........।"

"अब और अधिक शर्मिन्दा न कीजिये। मुझे वैसा उत्तर नहीं भिजवाना चाहिये था, लेकिन मैं मजबूर थी। मेरी मानसिक अवस्था उस समय कुछ ठीक नहीं थी।"

"परन्तु ऐसे कैसे काम चलेगा ? आपको अपना मानसिक सन्तुलन तो बनाये रखना ही चाहिये।"

"मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा है कि ऐसा हो कैसे गया।"

"इसमें आश्चर्य की कौन सी बात ? जब किसी व्यक्ति की अभिलाषायें असाधारण रूप से कुचली जाती हैं तो उसकी मानसिक स्थिति का असन्तुलित होना स्वाभाविक ही है। मेरी समझ में तो इसकी अपेक्षा कि आप उदासीन रहें या भाई साहब को परेशान करें अच्छा हो ऐसा कोई रास्ता अपना लीजिये जिससे आपका मनोरंजन हो जाय और आपको अपने उद्देश्य में भी सफलता मिल सके।"

"मुझे तो कोई ऐसा रास्ता नजर नहीं आता।"

"कहिये तो मैं बताऊँ।"

"बताइये, नेकी और फिर पूँछ-पूँछ।"

"आप क्लब की सदस्य बन जाइये।"

"क्या होता है उस क्लब में?"

"वही जो आप करना चाहती हैं।"

"तो क्या ऐसा भी कोई क्लब है?"

"क्यों नहीं, आप ही का तो है।"

"क्या मतलब?"

"अगर आप उसकी सदस्य बन जायें तो उसमें जान आ जाय। उसे आप जैसी विचारक महिला की आवश्यकता है।"

"मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। मैं खुशी से सदस्य बनने को तैयार हूं। दिन रात अकेले पड़े-पड़े ऊबा करती हूं। इसी के सहारे कुछ मन बहलाव हो जाया करेगा।"

"आप 'कुछ' की बात करती हैं। जरा सदस्य बन कर तो देखिये फिर यहाँ आने का आपका जी नहीं चाहेगा।"

"कितने लोग हैं उसमें?"

"अभी तो थोड़े ही लोग हैं। फिर भी उसे प्रारम्भ करने के लिये काफी हैं।"

"तो क्या क्लब अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है?"

"वैसे तो वह एक तरह से चल ही रहा है, परन्तु मैं चाहता हूं कि उसका प्रारम्भ आपके ही हाथों से हो और आप उसकी प्रथम संचालिका बनें।"

"आप भी कमाल करते हैं सिनहा बाबू। मुझे क्या तमीज क्लब के संचालन की?"

"यह आप क्या कह रही हैं? मुझे फिर कहना पड़ रहा है कि आप अभी अपनी शक्ति से परिचित नहीं। एक क्या आप ऐसे सैकड़ों क्लबों का संचालन कर सकती हैं।"

"यह तो मैं नहीं जानती कि मैं क्या कर सकती हूं और क्या नहीं, परन्तु इतना अवश्य जानती हूं कि आपका सहयोग और सम्मति मेरे

हर काम के लिये आवश्यक होंगे।"

"यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप मुझे इस योग्य समझती हैं। मुझ से जो भी सेवा हो सकेगी मैं सदैव प्रस्तुत रहूंगा।"

"तो फिर कब क्लब प्रारम्भ कर रहे हैं?"

"जब आपकी इच्छा हो।"

"मेरी समझ में तो शुभ कार्य शीघ्र ही कर डालना चाहिये।"

"मेरा भी यही सिद्धान्त है कि शुभ कार्य में देर करना विघ्न-बाधाओं को आमन्त्रित करना है।"

"तो फिर आज या कल से ही क्यों न प्रारम्भ कर दिया जाय?"

"परन्तु मेरी इच्छा है कि उसे प्रारम्भ करने के पूर्व जो भी सदस्य इस समय हैं, उनकी एक बैठक हो जाय ताकि उसकी एक निश्चित रूपरेखा निर्धारित कर ली जाय।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"मेरी इच्छा क्या यदि मैं कुछ अनुचित कह रहा हूं तो आप फौरन मेरी बात काट दीजिये।"

"आपके सम्बन्ध में 'अनुचित' शब्द शोभा नहीं देता। आप जैसे लोग भी यदि अनुचित सोचने, बोलने या करने लगेंगे तो फिर हम लोगों का क्या हाल होगा?"

"आप तो इस तरह कह रही हैं जैसे वास्तव में मैं आपके कथनानुसार हूं हीं।"

"नहीं तो क्या मैं असत्य कह रही हूं?"

"असत्य भला आप क्यों कहेंगी?"

"चलिये, आपने स्वीकार तो कर लिया।"

"आपसे जीत कौन सकता है?"

"आप! और इस ख़ुशी में चाय पीजिये।" कह कर शीला ने नौकरानी को आवाज दी। वह तत्क्षण आ उपस्थित हुई। शीला ने चाय की तैयारी के लिये उससे कहा। उसने फौरन जवाब दिया—"तैयार है।"

"आइये, चलकर चाय पियें।" शीला ने उठते हुये कहा।

"इसकी क्या आवश्यकता है ?"

"है क्यों नहीं। मुझे पहले ही पूँछना चाहिये था। काफी देर तो हो गई है।"

शीला के साथ अन्य कक्ष में बैठ कर सिनहा चाय पीने लगे। ज्यों-ज्यों शीला मुखरित हो रही थीं त्यों-त्यों सिनहा संकोच प्रदर्शित कर रहे थे। शीला ने टोकते हुये कहा—"कुछ खाइये भी या सिर्फ चाय ही पीते रहिएगा ?"

"खा तो रहा हूं।" कहते हुते मि० सिनहा ने नमकीन का एक टुकड़ा मुँह में डाल लिया और पुनः चाय की चुस्की लेने लगे।

मि० सिनहा को खामोश देख कर शीला ने कहा—"किन विचारों में खोते हुये हैं ?"

"कुछ नहीं, यों ही सोच रहा था कि बैठक के लिये कौन सा स्थान चुनूँ।"

"अगर और लोगों को आने में आपत्ति न हो तो मेरे हीं यहाँ बुला लीजिये सबको।"

"इसमें आपत्ति की कौन सी बात है। आखिरकार जाना तो कहीं न कहीं पड़ेगा ही।"

"तो फिर बैठक मेरे ही यहाँ निश्चित रही ?"

"जब आप तैयार हैं तो फिर अनिश्चित क्या ?"

"परन्तु होगी कब ?"

"इसकी तो सूचना देनी पड़ेगी सबको। एक-दो दिन तो इसी में लग जायेंगे। मेरी समझ में परसों इतवार की शाम को ठीक रहेगा।"

"कितने बजे ?"

"वही चार बजे के बाद।"

"अब तो किसी परिवर्तन की गुञ्जाइश नहीं है ?"

"यदि कोई दैवी आपत्ति न आगई तो।"

"तो फिर मुझे आप स्वागत के लिये परसों ठीक चार बजे तैयार पाइयेगा।"

"आप कोई तैयारी-वैयारी न करियेगा और फिर वैसे तो मैं कुछ समय पूर्व आ ही जाऊँगा।"

"यह तो और भी अच्छा रहेगा। जो कुछ कमी होगी उसे आप बता दीजियेगा।"

"माळूम देता है कि बिना जोरदार स्वागत किये आप मानेंगी नहीं।"

"जरा चाय-वाय पिला देना कोई स्वागत है।"

"क्यों नहीं, आपके हाथ से यदि हम जैसों को चाय ही मिल जाय तो वही काफी है।"

"आप तो कभी-कभी ऐसी बातें करने लगते हैं जैसे हम एक दूसरे को जानते ही नहीं"

"एक दूसरे को जानने के लिये तो एक मुलाकात काफी होती है और फिर हम लोग तो कई बार क्या अनेक बार मिल चुके हैं।"

"इसीलिये तो कहती हूं कि आपका अपरिचितों जैसा व्यवहार कभी-कभी अखरने लगता है।"

"ऐसे व्यवहार के लिये क्षमा प्रार्थी हूं।"

चेहरे पर गम्भीरता लाते हुये सिनहा ने आगे कहना प्रारम्भ किया—

"भाभी जी बात यह है कि अधिक आत्मीयता के प्रदर्शन को लोग सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं।"

"क्यों, इसमें सन्देह की कौन सी बात है?"

"संसार बड़ा स्वार्थी हो गया है। उसे प्रत्येक कार्य में स्वार्थ की ही बू आने लगती है। आत्मीय सम्बन्धों में भी स्वार्थ की गंध लोगों को प्रतीत होती है।"

"आप भी कैसी बातें करते हैं सिनहा बाबू। आप जैसा उपकारी व्यक्ति तो मेरी दृष्टि में आज तक आया ही नहीं।"

"होम करते हाथ जलते हैं भाभी जी। पता नहीं किस समय किसकी

दृष्टि में मैं क्या हो जाऊँ !"

"किसी की भी दृष्टि में आप कुछ भी हो जाँय, लेकिन मुझे आप पर विश्वास है कि आप जैसा परसेवी व्यक्ति कभी भी अपने आदर्शों से नहीं कर सकता।"

"यदि आपकी कृपा दृष्टि बनी रही तो।"

"आप भी कमाल करते हैं सिनहा बाबू। आपकी कृपा दृष्टि की आवश्यकता तो मुझे है। आप तो स्वयं समर्थ हैं।"

"समर्थ से समर्थ व्यक्ति भी आज के युग में अन्य सहयोगियों की अनुपस्थिति में असमर्थ ही है।"

"आप ठीक कहते हैं। सभी दृष्टियों से समर्थ होकर भी मैं आपके सहयोग के बिना अपने को असमर्थ पाती हूं।"

"मेरे या भाई साहब के ?" कह कर सिनहा शरारत भरी दृष्टि से शीला की ओर देखने लगे।

"भाई साहब का सहयोग तो जैसा मिल रहा है वैसा आप देख ही रहे हैं। यदि उनका पूर्ण साहचर्य प्राप्त होता तो फिर जीवन में अभाव ही किस बात का था ?"

"उसी अभाव के लिये तो क्लब है।"

"और उसी क्लब के लिये आपका सहयोग बांछनीय है।"

"मुझसे जो सेवा हो सकेगी—मैं तैयार हूं।"

"आज के युग में सत्ताधारी लोग अपने को सेवक कहकर ही दूसरों पर शासन करते हैं। आप भी कहीं वैसे ही तो 'सेवक' नहीं हैं ?" कहकर शीला मुस्करा दीं। सिनहा भी अपनी मुस्कान न रोक सके।

दीर्घ निःस्वाँस छोड़ कर घड़ी की ओर देखते हुये सिनहा ने कहा—"अच्छा, अब आज्ञा दीजिये।"

"अभी ऐसी क्या जल्दी है ? चले जाइयेगा। जब आया करिये तब थोड़ी देर तो बैठा करिये।"

"काफी देर हो गई हैं। फिर आऊँगा।"

"तो फिर कब तक दर्शन की आशा करूँ ?"
"हो सका तो शाम को, नहीं तो कल सुबह अवश्य आऊँगा।" सिनहा ने कुछ सोचकर कहा।
"आइयेगा अवश्य।" शीला ने उठते हुये कहा।
"हाँ, हाँ, आऊँगा अवश्य आऊँगा! आऊँगा नहीं तो काम कैसे चलेगा?" कह कर सिनहा चल दिये।

१२

डा० कान्तीनाथ दोपहर के समय लौटे तो शीला को लेटे पाया। प्रति दिन जब कभी वह बाहर से आते थे, शीला मुस्कराते हुए आगे बढ़ कर उनका स्वागत करती थीं, परन्तु आज वह चुपचाप लेटी रहीं। कान्तीनाथ ने अपने को दोषी न समझ कर भी शीला की नाराजगी का कारण अपने को ही समझ लिया, परन्तु स्वाभाविक मुस्कराट के साथ शीला के पास वहीं पलंग पर बैठ गए और पूँछा—"शीला! कैसी तवियत है?"
"ओह! आप?" शीला चौंक कर उठ बैठी।
"कान्तीनाथ शीला की ओर देखते ही रह गए। आश्चर्य प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—"क्या बात है शीला? इस तरह चौंक क्यों पड़ीं?"
"आपके अप्रत्याशित आगमन के कारण।"
"आज का आना अप्रत्याशित क्यों? क्या मैं प्रति दिन इसी समय नहीं आता?"
"क्यों नहीं, रात्रि के समय भी तो प्रति दिन आते हैं।"
यद्यपि बात साधारण ढंग से कही गई थी तथापि उसमें तीव्र व्यंग्य

निहित था। कान्तीनाथ ने तत्क्षण समझ लिया कि कल रात बाहर रहने के कारण ही यह सब है, अतएव सफाई देते हुए कहा–"वह तो एक आकस्मिक घटना थी। यदि रात को मैं न रुकता तो बच्चे का बच सकना सम्भव नहीं था।"

"आप सफाई किसे दे रहे हैं?"

"जिसकी आज्ञा के बिना मैं रात भर बाहर रहा।"

"मैं कौन होती हूँ आज्ञा देने वाली?"

"आज्ञा देने वाली न सही तो कम से कम न आने का कारण तो पूछने वाली हो ही सकती हो।"

"मैं कोई कुछ भी नहीं होना चाहती।"

"यह तुम क्या कह रही हो?"

"आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है?"

"क्यों नहीं, आश्चर्य की बात जो ठहरी।"

"इसमें आश्चर्य की कौन सी बात?"

"सब कुछ होकर भी कुछ न होने की बात आश्चर्य जनक नहीं तो और क्या है?"

"कौन–मैं?" कृत्रिम मुस्कान शीला के चेहरे पर आकर लुप्त हो गई।

"इसमें भी सन्देह है?"

"अपने हृदय से पूँछो।"

"तुम्हें हो क्या गया है आज?" पत्नी को पकड़ कर अपनी ओर घुमाते हुये कान्तीनाथ ने पूँछा।

शीला ने पति के बन्धन से अपने को मुक्त करते हुये कहा–"हमेशा बाड़े में बन्द रहने वाले जानवर को क्या हो सकता है?"

शीला के वाक्यों में उत्तरोत्तर व्यंग्य की मात्रा वृद्धि पाती जा रही थी।

"ऐसा अपने को क्यों समझ रही हो?"

"क्यों, क्या समझूँ? क्या अन्तर रह गया है उसमें और मेरे में?"

"तुम इस घर की मालकिन हो और मेरे हृदय ....।"

"बस-बस । अब आगे कुछ न कहियेगा ।"

"अच्छा, अब बहुत हो गया । अधिक क्रोध करना अच्छा नहीं होता ।" कह कर कान्तीनाथ ने पुनः पत्नी को अपने अंक में भर लिया और मुँह पास ले जाते हुये कहा—"बहुत नाराज हो गई हो मुझसे ?"

"छोड़िये ।" कह कर शीला अपने को छुड़ाने का प्रयास करने लगीं परन्तु सफलता न मिल सकी, अतएव वह निश्चल होगईं ।

"अपराधी के लिये दण्ड की भी तो व्यवस्था होती है ।"

शीला कुछ न बोलीं । कान्तीनाथ भी चुप हो गये । छत की ओर कुछ क्षणों तक देखने के उपरान्त बन्धन ढीले करते हुये कान्तीनाथ ने कहा—"अगर तुम्हें मेरा आना पसन्द नहीं है तो मैं जा रहा हूँ ।" कह कर कान्तीनाथ चल दिये । अभी कठिनाई से दो ही कदम चल पाये होंगे कि शीला ने पीछे से पकड़ कर कहा—"मुझे माफ कर दो ।"

पत्नी को उठा कर सीने से लगाते हुये कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम्हें मैं कष्ट देता हूँ । तुम्हारे साथ नहीं रह पाता, लेकिन मैं मजबूर हूँ ।"

शीला फिर भी कुछ न बोलीं । उनके सजल नेत्रों से बूँद टपकने लगे ।

"क्या तुम्हें दुःखी देखकर मुझे दुःख नहीं होता ? क्या मेरा दिल नहीं चाहता कि तुम्हारे साथ उठूँ, बैठूँ, बातचीत करूँ, घूमूँ-फिरूँ ?"

"तो फिर क्यों दिन पर दिन गैरों जैसा व्यवहार करते जा रहे हैं ?"

"मैं तुम्हारे प्रति किये जाने वाले अन्याय को अनुभव करता हूँ, लेकिन मेरा व्यवसाय ही ऐसा है कि जितना ही मन लगा कर निष्ठा पूर्वक काम करो वह उतना ही विस्तार पाता जाता है । इसके कार्य क्षेत्र की कोई सीमा नहीं । कोई भी डाक्टर जितना चाहे उतना विशाल कार्य-क्षेत्र बना सकता है बशर्ते वह रोगी के स्थान पर अपने को समझ ले । साधारणतया डाक्टर्स रोगी का यह समझ कर इलाज करते हैं कि वह रोगी का इलाज कर रहे हैं, इसीलिये उन्हें अपने व्यवसाय में सफलता नहीं मिलती । रोगी को सबसे अधिक चिकित्सक की सहानुभूति की

आवश्यकता होती है। उसके अभाव में सारी चिकित्सा व्यर्थ। जो रोगी को सहानुभूति नहीं प्रदान कर सकता वह उसकी चिकित्सा ही नहीं कर सकता। सहानुभूति रोगी के लिये औषधि है जो बड़ी ही प्रभावशालिनी सिद्ध होती है। लोग सोचते हैं कि मैं रोगियों को कोई विशेष दवाइयाँ देता हूँ। ऐसी बात नहीं है। मैं रोगी को जो कुछ भी देता हूँ वह सहानुभूति में घोल कर देता हूँ। वही औषधि रोगी के लिये अमृत सिद्ध होती है। वह उठ बैठता है। मुझ में दूना उत्साह जाग्रत हो जाता है। यही उत्साह मेरी व्यस्तता का कारण है।"

"आप अगर यह सोचते हैं कि मुझे आपकी व्यस्तता या प्रसिद्धि से कोई ईर्षा है सो ऐसी बात नहीं, परन्तु मुझे अपना जीवन जीवनहीन सा प्रतीत होने लगा है। आप एक क्षण के लिये बहार की भाँति आकर चले जाते हैं, मैं प्यासी की प्यासी रह जाती हूँ। अब आप ही बताइये मैं कैसे अपने हृदय को सांत्वना दूँ? आपकी व्यस्तता के कारण तो आपका समय कट जाता है और मैं बिना रोग के रोगी बनी दिन-रात पड़ी रहती हूँ।"

"मैं कई दिनों से इस समस्या पर विचार कर रहा हूँ, परन्तु कोई रास्ता ही नहीं समझ में आ रहा है। यह मुझ से हो नहीं सकता कि रोगी मौत के मुँह में जा रहा हो और मैं उसे छोड़ कर चला आऊँ।"

"तो फिर मुझे मौत के मुँह में पड़ा हुआ समझ कर ही कुछ समय के लिये मेरे पास बैठ लिया करिये।"

शीला की बात सुनकर कान्तीनाथ का हृदय करुणार्द्र हो उठा। पत्नी की ओर उन्होंने देखा तो शीला ग्रामीण भोली बालिका के रूप में दिखाई पड़ीं। शीला के चेहरे पर क्रोध का अंश तक भी शेष नहीं रह गया था। उन्हें अपनी आत्मा की आवाज सुनाई पड़ने लगी—"शीला तुम्हारी पत्नी है। 'जीवन साथी' सम्बोधित करके उसे तुम ले आये हो। उसके प्रति भी तुम्हारा कुछ कर्तव्य है। उसकी उपेक्षा रोगियों के

१३

संध्या रात्रि में परिणत होने जा ही रही थी कि मि० सिनहा आ धमके। शीला न चाह कर भी स्वागत से अपने को न रोक सकीं। शीला के अस्त-व्यस्त कपड़े, खुले-खुले बाल और वैराग्य पूर्ण मुद्रा देख कर मि० सिनहा को कारण समझते देर न लगी। फिर भी उन्होंने अनजान बनते हुये पूँछा—"अरे! यह मैं क्या देख रहा हूँ? आप तो साल-छः महीने की बीमार नजर आ रही हैं। क्या हो गया है आपको?"

"कुछ भी तो नहीं। भली चंगी तो हूँ।" अस्वाभाविक मुस्कराहट के साथ शीला ने उत्तर दिया; परन्तु स्वर में उदासीनता की मात्रा कम न थी। मि० सिनहा उड़ती चिड़िया का शिकार करने वालों में से थे। उनका निशाना अचूक होता था। वह प्रश्न कुछ इस ढंग से करते थे कि सामने बैठा हुआ व्यक्ति कुछ भी उनसे न छिपा पाता था। शीला की मुखाकृति पर उभरी हुई वेदना की रेखाओं को पढ़ते हुये मि० सिनहा ने प्रश्न किया—"आखिरकार कब तक इसी तरह घुटती रहियेगा?"

प्रहार अचूक था। शीला इस प्रश्न से मर्माहत हो उठीं। करुणा नेत्रों से बाहर आने के लिये मार्ग खोजने लगी। दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये शीला ने उत्तर दिया—"जब तक भाग्य में बदा होगा।"

"भाग्य के भरोसे कब तक बैठी रहियेगा?"

"अंतिम साँस तक।"

"मुझ से आपकी यह हालत नहीं देखी जाती।"

"मैं नहीं चाहती कि आप मेरे कारण दुखी हों।"

"लेकिन मैं आपको भी तो दुखी नहीं देख सकता।"

"भाग्य का लिखा कोई मिटा नहीं सकता। यदि भाग्य में दुख ही दुख है तो लाख प्रयास करने पर भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता।"

यद्यपि शीला के स्वभाव से सिनहा काफी परिचय प्राप्त कर चुके थे

तथापि शीला का यह स्वरूप उनके लिये आज नवीन था। वह शीला को इतनी भाग्यवादिनी न समझते थे। भाग्य पर अटूट विश्वास करने वाले के लिये तर्क कोई महत्व नहीं रखते। उसके लिये तो हठ ही एक ऐसा अचूक अस्त्र है जिसका प्रभाव हुये बिना नहीं रहता। सिनहा ने कुछ सोच कर कहा—"अच्छा! आप जरा कपड़े बदल कर तैयार तो हो जाइये।"

"क्यों?"

तैयार तो होइये पहिले।"

"आखिर क्यों? किस लिये?"

"आपको कहीं चलना है।"

"कहाँ? कुछ बताइयेगा भी?"

"यों ही जरा घूमने।"

"मैं कहीं भी घूमने-ऊँमने नहीं जाऊँगी।"

"भाभी जी! देवर की एक छोटी सी बात भी न मानियेगा?"

"देखिये सिनहा बाबू! आप मुझे मजबूर न करिये।"

"भाभी जी! मैं हमेशा आपकी बात मानता हूँ। आज तो आपको मेरी बात माननी ही पड़ेगी।"

"हठ अच्छा नहीं होता है।"

"तो फिर आप ही न जाने का हठ क्यों कर रही हैं?"

"मैं एकान्त चाहती हूँ। इस समय आप मुझे माफ कर दीजिये।"

"और कोई समय होता तो मैं आपकी बात स्वीकार कर लेता, लेकिन ऐसी हालत में व्यक्ति एकान्त पाकर और दुखी होता है। आप चाहती हैं कि क्या मैं एकान्त में रोने के लिये आपको छोड़ दूँ? मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता।"

शीला एक क्षण के लिये मौन हो गई।

"अब आप कुछ सोचिये-विचारिये नहीं—फौरन तैयार हो जाइये।"

"सिनहा बाबू......।"

"सिनहा-बिनहा बाबू कुछ नहीं। आपके तैयार होने के पहिले मैं आपकी एक भी बात नहीं सुन सकता।"

शीला आगे कुछ भी न बोल सकीं। चुपचाप भीतर चली गईं और कुछ ही देर में ही वस्त्र परिवर्तन के साथ लौट आईं। उन्हें देखते ही सिनहा उछल पड़े—"वाह भाभी! आप कितनी जँचती हैं इस ड्रेस में!"

शीला ने अपनी ड्रेस पर नीचे से ऊपर तक दृष्टि डाली और सामने लगे हुये सीसे में देखा तो वास्तव में वह सुन्दर दीख पड़ीं। एक स्वाभाविक प्रसन्नता से मन भर गया उनका। प्रसन्नता की आभा चेहरे पर झलके बिना न रह सकी। चेहरे पर मुस्कान देख कर मि० सिनहा ने कहा—"देखिये भाभी जी! आधी उदासीनता तो आपकी दूर हो गई।" कह कर वह बाहर की ओर चल पड़े। शीला भी पीछे हो लीं। दोनों बाहर खड़ी कार में बैठे और कार चल दी।

शीला सिनहा के बगल में अगली ही सीट पर बैठी हुई थीं। अंधकार के साथ-साथ नीवरता भी बढ़ रही थी। उन्मुक्त वायु के मिलते ही शीला के मन को कुछ राहत मिली। कार तेजी के साथ अग्रसर हो रही थी। कभी-कभी सिनहा शीला की ओर देखते और पुनः समक्ष फैले हुये विशाल प्रशस्त मार्ग को देखने लगते। काफी रास्ता तय करने के पश्चात् शीला ने प्रश्न किया—"आप कहाँ चल रहे हैं?"

"चल तो कहीं खास नहीं रहा हूँ, परन्तु सोंचता हूँ कि जब इतनी दूर आ गया हूँ तो फिर क्लब के सदस्यों से आपका परिचय ही करा दूँ।"

"यहाँ कहाँ होंगे वे लोग?"

"यहीं थोड़ी दूर पर एक क्लब है। वहीं होंगे सब लोग इस समय।"

"लेकिन आप तो सुबह कह रहे थे कि मेरे बँगले पर ही बैठक होगी?"

"वह तो होगी ही। यदि उसके पहिले ही परिचय हो जाय तो क्या कोई हानि है?"

"हानि तो कुछ भी नहीं, लेकिन सोच रही हूँ कि यदि कहीं देर हो गई और वह आ गये तो ……।'

"तो क्या होगा ? आप तो भाई साहब से इतना डरती हैं कि बस...।"

"हर स्त्री को अपने पति से डरना चाहिये।"

"मैं कब कहता हूँ कि लड़ना चाहिये। डरना चाहिये–और खूब डरना चाहिये, लेकिन एक को नहीं दोनों को ! भयभीत प्राणी परतन्त्र होता है और परतन्त्रता से बढ़ कर संसार में दूसरा कष्ट नहीं। आपके तो स्वतन्त्र विचार होने चाहियें। आप एक ओर तो महिला समाज का कल्याण करने की बात सोचती हैं और दूसरी ओर भाई साहब से इतना डर रहीं हैं कि थोड़ी देर के लिये खुली हवा में साँस भी नहीं ले सकतीं।"

"ऐसी बात नहीं है सिनहा बाबू। वह तो कई बार स्वयं कह चुके हैं कि जब कभी मन ऊबा करे कहीं घूम आया करो।"

"तब फिर आप देर हो जाने के लिये क्यों चिंतित हैं ?"

"बात यह है कि किसी भले घर की स्त्री को अधिक रात्रि तक बाहर रहना उचित नहीं है।"

"परन्तु इसमें अनुचित ही क्या है ?"

"अनुचित है समाज की दृष्टि में। हम सामाजिक प्राणी हैं। हमें समाज में रहना है। हम उसकी उपेक्षा करके जीवित नहीं रह सकते।"

"अरे ! यह आप क्या कह रही हैं ? समाज में प्रचलित बुराइयों के विरुद्ध तो आप आन्दोलन छेड़ने जा रही हैं और समाज के विरोध से डरती हैं ?"

"मेरा उद्देश्य समाज का विरोध करना नहीं, बल्कि हर सामाजिक प्राणी को प्रचलित कुप्रथाओं से परिचित कराना है ताकि वह स्वयं उनका त्याग कर सके। इस प्रकार कुप्रथायें स्वतः नष्ट हुये बिना न रहेंगी।"

"वह देखिये, सामने क्लब दिखाई दे रहा है।" सामने थोड़ी दूर पर

विद्युत प्रकाश से आलोकित एक शानदार इमारत की ओर संकेत करते हुये सिनहा ने कहा ।

"देखिये, अधिक देर न रुकिंगा ।"

"आप जब कहेंगी उठकर चल दूँगा ।"

कार क्लब के द्वार पर आ रुकी । शीला ने मि० सिनहा के साथ अन्दर प्रवेश किया । क्लब की सजावट देख कर शीला दंग रह गईं । उनके जीवन का यह प्रथम अवसर था जबकि आधुनिकतम ढंग से ऐसा सुसज्जित स्थान देखा था । विद्युत का चकाचौंध उत्पन्न करने वाला प्रकाश, उपस्थित सज्जनों की भड़कीली पोशाकें, सुमधुर संगीत की स्वर लहरी तथा वातावरण में परिव्याप्त सुगंधित आदि का शीला पर ऐसा सामूहिक प्रभाव पड़ा कि वह थोड़ी देर के लिये आत्मविस्मृत हो गईं । उनकी दृष्टि चारो ओर तेज़ी के साथ घूम रही थी । शीला की रूप सज्जा भी कुछ कम चित्ताकर्षक न थी । वह भी उपस्थित नर-नारियों की दृष्टि का केन्द्र बनीं थीं । सिनहा को देखते ही दो-तीन रंग-बिरंगी तितलियाँ अधरों पर हास्य बिखेरती, बलखाती लहरों की भाँति उनकी ओर बढ़ीं । सिनहा उन्हें देखकर कुछ रुके । वे पास आईं, परन्तु तब तक शीला के पास आ जाने के कारण वे सिनहा की केवल एक मधुर मुस्कान ही पा सकीं । कुछ की मिलन-उत्कण्ठा पर तुषारापात करते और कुछ का अभिवादन स्वीकार करते हुये सिनहा जाकर एक मेज पर बैठ गये । शीला के आश्चर्य की इति श्री अभी नहीं हुई थी । आश्चर्य अज्ञानता का दूसरा नाम है । मनुष्य उन्हीं वस्तुओं को देख कर आश्चर्यान्वित हो उठता है जिनसे उसका परिचय नहीं होता । शीला के लिये यह स्थान नितान्त नवीन होने के कारण आश्चर्य का केन्द्र बना हुआ था । शनैः शनैः वहाँ की प्रत्येक वस्तु परिचित सी प्रतीत होने लगी । परन्तु आकर्षण में अब भी कोई कमी न आ पाई थी । बिना आर्डर दिये हुये ही सिनहा की प्रिय वस्तुयें मेज पर आ गईं । शीला को सम्बोधित करते हुये सिनहा ने कहा—"लीजिये ।"

"यह सब आपने क्यों मँगवाया है ?"

"मैंने मंगवाया कहाँ ? ये सब तो अपने आप ही आ गईं । इस क्लब का यह नियम है कि जोग इसके स्थायी सदस्य हैं उन्हें अपनी-अपनी प्रिय वस्तुयें लिखानी पड़ती हैं जो बिना माँगे ही भेज दी जाती हैं ।"

पास की ही आवाज़ सिनहा के कान में पड़ी—"हल्लो मि० सिनहा ! हाऊ आर यू ?"

"क्वाइट वेल मि० मेहता ?"

"आप कौन हैं ?" शीला की ओर संकेत करते हुये मेहता ने प्रश्न किया ।

"आइये आप लोगों का परिचय करा दूँ ।" सिनहा ने कहा ।

"जरूर-जरूर ।"

"तो पहले आप से ही प्रारम्भ किया जाय । "मेहता की ओर संकेत करके सिनहा ने कहा—"आप हैं मि० मेहता । इस क्लब के सबसे पुराने सदस्य । या यों कहा जाय कि आपके ही हाथों इसकी नींव रखी गई थी तो कोई अतिशयोक्ति न होगी ।"

आप जिस क्लब के सदस्य बन जाएँ वहीं चमक उठे । आपकी पूरी जिन्दगी क्लबों में ही गुजरी है ।" शीला की ओर संकेत करते हुये मि० सिनहा ने कहा—"और आप हैं डा० कान्ती की धर्मपत्नी मिसेज शीला ।"

"ओह ! आप डाक्टर कान्त की पत्नी हैं ! मुझे आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई ।" कह कर मेहता ने हाथ बढ़ाया ।

शीला ने हाथ न मिला कर दोनों हाथ जोड़ दिये । मि० मेहता ने भी वैसा ही किया । नवागन्तुकों द्वारा किये जाने वाले ऐसे अनेक आचरणों के मेहता इतने अभ्यस्त हो चुके थे कि उन्हें किसी प्रकार का संकोच न होता । वह शिष्टाचार में इतने दक्ष हो चुके थे कि उन्हें अनुचित कुछ दिखाई ही न देता था । उन्होंने मुस्कान बिखेरते हुए पूछा—"अब तो रोजाना आइयेगा न ?"

शीला ने कुछ भी उत्तर न देकर सिनहा की ओर देख भर दिया। सिनहा शीला की कठिनाई समझ गए और बोले—"क्यों नहीं, जब आप जैसे लोग स्वागत करने के लिए तैयार हैं तो कौन ऐसा पत्थर दिल होगा जो आने से इंकार करेगा।"

"मेरी क्या हस्ती जो आप लोगों का स्वागत करूँ।" कहते ही जेब से ह्विसकी की एक बोतल निकाल कर मेज पर रख दी। एक-एक करके तीन गिलास भरे। एक गिलास उठा कर शीला की ओर बढ़ाते हुये कहा—"लीजिये, शौक फरमाइये।"

शीला चौंक पड़ीं।

मि० सिनहा ने कहा—"वह इसकी अभ्यस्त नहीं।"

"थोड़ी सी ही सही।"

"लेकिन इन्होंने तो कभी इसे हाथ तक नहीं लगाया।"

"तो आज सही।"

"भाभी जी थोड़ी सी चखकर देखिये।" मि० सिनहा ने कहा।

"आप पहले चखकर यह तो सिद्ध करिये कि यह कोई खराब चीज नहीं है।" कह कर दूसरा गिलास मेहता ने सिनहा की ओर बढ़ा दिया।

"आज मुझे माफ करिये।" सिनहा ने कहा।

"अजी वाह! आप भी मिसेज शीला बनना चाहते हैं?"

संकोच के साथ गिलास पकड़ते हुये सिनहा ने कहा—"आप नहीं मानते हैं तो एक घूँट पिये लेता हूं।"

मि० सिनहा ने एक घूँट गले से उतार दी।

मेहता ने कहा—"लीजिये, अब तो सिनहा साहब ने चख कर इसके औचित्य को सिद्ध कर दिया।"

शीला बड़े पशोपेश में पड़ीं थीं कि क्या करें। वह यह भली-भाँति समझ गई थीं कि यह शराब है और इसका सेवन अनुचित है, परन्तु आग्रह टालने की समस्या भी दूसरी ओर थी। उनका मन हो रहा

था कि उठ कर वहाँ से चल दें, परन्तु उठकर सहसा चल देना भी अशिष्टता होगी, अतएव न चाह कर भी साथ देने को मजबूर हो गईं।

"ले लीजिये न भाभी जी, वरना मेहता साहब का दिल टूट जायेगा।" दूसरा घूँट पीते हुये मि० सिनहा ने कहा।

शीला इन्कार न कर सकीं और काँपते हाथों से गिलास थाम लिया। मेहता ने गिलास उठाया और एक ही साँस में आधा खाली करते हुये कहा—"अरे! आप तो अभी लिये ही बैठी हैं ?

शीला ने मन में सोचकर कि एक घूँट पीने में क्या है—गिलास मुँह से लगा लिया और जैसे ही थोड़ी सी गले से नीचे उतारी वैसे ही एक लकीर सी बन गई। साथ ही एक ओर बिगुल बज उठा। जिसने सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। मेहता ने कहा—"आइये, आप लोग भी डान्स में शामिल होइये।"

"आज नहीं, फिर कभी।"

"जैसी आप लोगों की मर्जी।" कह कर मेहता उठ कर चले गये और एक महिला के साथ नृत्य में सम्मिलित हो गये।

"इस हाल में सब लोग क्यों जा रहे हैं ?" उपस्थित स्त्री-पुरुषों को जोड़ों में हाल की ओर बढ़ते हुये देखकर शीला ने प्रश्न किया।

"डान्स के लिये।"

"इतने लोग एक साथ नृत्य करेंगे ?"

"हाँ, अभी देखियेगा।" सिनहा का इतना कहना था कि बैण्ड के साथ ही नृत्य भी प्रारम्भ हो गया। शीला बड़े मनोयोग से नृत्य की प्रत्येक गतिविधि का अवलोकन करने लगीं। नृत्य की विचित्रता पर उन्हें आश्चर्य हो रहा था। उन्होंने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की—"क्या यही अंग्रेजी नृत्य है ?"

"हाँ, क्या अच्छा नहीं लगा आपको ?"

"लेकिन बुरा भी नहीं है।"

"सम्भवतः आज आपने पहली बार देखा है, इसीलिये आपको कुछ

विचित्र सा लग रहा होगा।"

"मेरे लिये विचित्र तो यहाँ की हर वस्तु है।"

"इसका कारण आपका ऐसे स्थानों से परिचित न होना ही है।"

"वह तो है ही, परन्तु मन बहलाने के लिये स्थान अच्छा है।"

"इसका अर्थ है कि यहाँ आना आपको बुरा नहीं लगा?"

"जहाँ सब लोग आनन्द की प्राप्ति के लिये आते हों, उसे मैं बुरा कैसे कह सकती हूं?"

"तब तो हर शाम यहीं कटा करेगी?"

"हाँ, यदि हर शाम नहीं तो कोई–कोई शाम तो यहाँ बीतेगी ही।"

"क्या करियेगा बँगले में अकेले पड़े–पड़े? भाई साहब भी तो शाम के समय नहीं रहते।"

"पति का ध्यान आते ही शीला के मन में एक खिंचाव पैदा हो गया। हृदय की सारी स्निग्धता एक ही क्षण में न जाने कहाँ विलीन हो गई। पति का एक-एक क्रिया-कलाप दृष्टि के समक्ष चित्रित हो उठा। शीला का चेहरा गम्भीर हो गया। सिनहां इस परिवर्तन पर कोई ध्यान न दे सके, क्योंकि मदिरा अपना रंग दिखाने लगी थी। उन्होंने उसी झोंके में कहा—"भाई साहब तो आज-कल रुपया बटोरने में लगे हैं। रुपये के सामने वह किसी की परवाह नहीं करते रुपया ही उनके लिये सब कुछ है। रुपये के लिये अपना आराम छोड़ सकते हैं, इष्ट-मित्रों को ठुकराते हैं और आप तक की उपेक्षा कर सकते हैं।"

शीला की मानसिक अवस्था बिगड़ती जा रही थी। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा कि जैसे उनका मस्तिष्क फट जायगा। विचारों की आँधी मस्तिष्क को झकझोरे डाल रही थी। वह वहाँ अधिक न बैठे रह सकीं। तत्क्षण उठते हुये बोलीं—"चलिये, यहाँ से चलें।"

उठते हुये आश्चर्य के साथ सिनहा ने पूँछा—"यह क्या? क्या हो गया आपको जो ऐसे सहसा उठ खड़ी हुईं?"

"अब मैं एक मिनट भी यहाँ नहीं रुक सकती।"

"आखिरकार कुछ बताइयेगा भी ?"

"पहले यहाँ से बाहर होइये फिर बताऊँगी ।"

"जैसी आपकी इच्छा ।" कहकर सिनहा चल पड़े ।

शीला ने भी उनका अनुसरण किया ।

दोनों को लेकर कार दौड़ने लगी ।

रात्रि की नीरवता साँय-साँय कर रही थी । चारो ओर सघन अंधकार था । निर्जन मार्ग पर कार अपने तेज प्रकाश द्वारा अंधकार को चीरती हुई अग्रसर हो रही थी । शीला के मस्तिष्क में विचारों की आँधी पूर्ववत थी । वह उन्हीं से संघर्ष कर रहीं थीं ।

कार किस गति से और किस ओर अग्रसर हो रही है, इसका शीला को कुछ भी ज्ञान न था । सिनहा भी मदिरा के मद में मस्त खूब तेज कार चला रहे थे । दिशा का भ्रम उन्हें अभी न होने पाया था इसलिये गाड़ी उचित दिशा को ही जा रही थी ।

रास्ते में कोई कुछ न बोला ।

कार बँगले में आकर रुकी । शीला ने सीधे उतर कर धड़कते हृदय के साथ भीतर प्रवेश किया । शयन-कक्ष में झाँक कर देखा तो पति को निद्रा में निमग्न पाया । वह भी चुपचाप लेट गईं और थोड़ी ही देर में सब कुछ भूल गईं ।

१४

रात्रि को अधिक देर तक जागने के कारण शीला की नींद तब खुली जब डा० कान्त जा चुके थे । पति का बिस्तर खाली देखकर शीला ने दीवाल पर लगी घड़ी की ओर दृष्टि उठाई तो उसमें नौ बज रहे थे ।

डा० कान्त नियमानुकूल प्रातः उठे और पत्नी को बगल के बिस्तर पर सोता हुआ पाया। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि पत्नी ने रात्रि के समय अपने आने की सूचना उन्हें जगा कर क्यों न दी? इस प्रश्न के उत्तर के लिये ज्यों ही उनके मन में आया कि पत्नी को जगायें त्यों ही फोन की घंटी टन टना उठी। उन्हें ज्ञात हुआ कि शीघ्र ही एक मरीज को देखने जाना है। फोन रख कर सोती हुई शीला पर एक दृष्टि डाली और वह कमरे के बाहर हो गये।

कुछ देर तक शीला विस्तर पर बैठी सोचती रहीं, तत्पश्चात वह धीरे से निकल कर बाहर आई। और इधर-उधर दृष्टि दौड़ा कर नौकरानी को धीमे स्वर में पुकारा। नौकरानी तुरन्त आ उपस्थित हुई। कोच पर पड़े समाचार पत्र को हाथ में उठा कर उस पर दृष्टि गड़ाये हुये शीला ने प्रश्न किया—"क्या साहब चले गये?"

"उन्हें तो गये हुये काफी देर हो गई।"

"कुछ क्षण रुक कर शीला ने पुनः प्रश्न किया—"रात को मेरे विषय में कुछ पूँछ रहे थे?"

"हाँ, पहले तो आपको उन्होंने आवाज दी, फिर सब कमरों में देखा। जब आप कहीं न दिखाई दीं तो फिर उन्होंने मुझसे पूँछा।"

"तूने क्या कहा था?"

"मैंने कहा कि आप सिनहा बाबू के साथ कहीं गई हैं।?"

"फिर क्या कहा उन्होंने?"

"कुछ नहीं। चुपचाप अपने कमरे में जाकर लेट रहे।"

"खाना नहीं खाया था क्या उन्होंने?"

"मैंने एक बार पूँछा तो उन्होंने कहा कि उन्हें भूख नहीं है।"

"नौकरानी की बात सुन कर शीला सोच में पड़ गई। उन्हें स्मरण हो आया कि वह उनके बिना भोजन नहीं करते। यद्यपि दृष्टि में समाचार पत्र के बड़े-बड़े अक्षर समाये हुये थे तथापि समझ में कुछ भी न आ रहा था, क्योंकि मस्तिष्क पति सम्बन्धी विचारों में उलझा

हुआ था।

नौकरानी काफी देर तक वहीं खड़ी रही, और जब शीला ने कोई प्रश्न न किया तो वह चली गई। शीला पूर्ववत वैसी ही विचारों में लीन बैठीं रहीं।

सिनहा मेहता के साथ अन्दर आ गये परन्तु शीला उनका आगमन न जान सकीं। दोनों कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़े रहे। इतने पर भी जब शीला का ध्यान अपनी ओर न आकृष्ट कर सके तब सिनहा ने कहा—"हम लोगों से अधिक तो यह पत्र भाग्यशाली है।"

स्वर ने शीला का ध्यान ध्वनि के उद्गम स्थान की ओर आकृष्ट किया। शीला तत्क्षण उठ कर खड़ी हो गईं और स्वागतार्थ कोच की ओर संकेत करते हुये कहा—"आइये! बैठिये।"

दोनों लोग सामने की कोचों पर बैठ गये।

शीला ने भी बैठते हुये कहा—"क्षमा करियेगा। मैं किन्हीं विचारों में खोई हुई थी, इसीलिए आप लोगों का आगमन न जान सकी।"

"देखिये, आपकी यह क्षमा याचना की आदत मुझे पसन्द नहीं। जब देखो तब आप 'क्षमा करियेगा' कह कर आंतमीयता को धक्का पहुंचाती रहती हैं।

"त्रुटि के लिये क्षमा याचना अनुचित नहीं है।"

"आप भी कमाल करती हैं। त्रुटि आप से होती ही कहाँ है?"

"वाह! ऐसा भी संसार में कोई प्राणी होगा जिससे त्रुटियाँ न होती हों?"

"लेकिन आप से नहीं।"

"क्यों?"

"क्योंकि आप आवश्यकता से अधिक सतर्क रहतीं हैं।"

"उसी सतर्कता का तो परिणाम है कि आप लोगों का आना मैं न जान सकी।"

"तो इसका तात्पर्य यह है कि आप हम लोगों की गिनती आने वालों में

ही करती हैं ?"

"तो क्या जाने वालों में किया करूँ ?" कहकर शीला ने तो केवल मुस्करा ही दिया परन्तु वे लोग अपनी उन्मुक्त हँसी न रोक सके और कक्ष हास्य ध्वनि से ध्वनित हो उठा। कुछेक क्षणों में अपने को प्रकृतिस्थ करते हुये सिनहा ने कहा—"आने वाले तो कभी-कभी ही आते होंगे, परन्तु हम तो उन लोगों में हैं जो आते-जाते नहीं वरन् बने ही रहते हैं। जहाँ जाते हैं उसीको अपना घर समझ लेते हैं।"

"तो इसमें बुराई ही क्या है ? इसे भी आप अपना ही घर समझिये।" शीला ने शालीनता प्रकट की।

"यही समझकर तो बिना रोक-टोक घुसा चला आता हूं।"

"आपको रोकने वाला यहाँ है ही कौन ?"

"यह तो आपकी कृपा दृष्टि है।"

"आपकी है या मेरी जो अपना इतना बहुमूल्य समय नष्ट करने के लिये यहाँ आ जाते हैं ?"

"ऐसा तो आप सोचती हैं। मैं तो समझता हूं कि जितना समय आपके साथ व्यतीत होता है केवल उतने ही का तो सदुपयोग होता है शेष व्यर्थ जाता है। न जाने कितने नवीन बिचारों की भण्डार हैं आप। मुझे जितना ज्ञान आपके साथ विचार-विमर्श करने में इतने दिनों में प्राप्त हो गया है उतना तो इतना जीवन व्यतीत करने पर भी नहीं प्राप्त हो सका है।"

"केवल अपनी परेशानियाँ ही तो आपको सुनाती रहती हूं।"

"उन्हीं में तो मुझे वह वस्तु प्राप्त हो जाती है जिसकी खोज में मैं इधर-उधर भटका करता था।"

"यह तो मेरा अहोभाग्य है कि आपको मेरी बातों में भी कुछ उपयोगी वस्तु प्राप्त हो जाती है।"

"आपकी चिंतनशक्ति पर मुझे अगाध विश्वास है। कभी-कभी तो मैं आश्चर्य में पड़ जाता हूं कि आपका चिंतन यथार्थ जगत से कितना

घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। प्रायः महापुरुषों के विचार वास्तविक जगत से परे होते हैं। उनके अनुसार आचरण करने वाला प्राणी भौतिक जगत से अपना सम्बन्ध नहीं बनाये रख सकता, परन्तु आपके विचार आदर्शोन्मुख होते हुये भी यथार्थ की कसौटी पर खरे उतरने वाले होते हैं।''

सिनहा के मुँह से अपनी अभूतपूर्व प्रशंसा सुनकर शीला फूली न समाईं। वास्तव में वह अपने को विचारक समझने लगीं और सिनहा का महत्व तो उनकी दृष्टि में और भी अधिक बढ़ गया; क्योंकि वही एकमात्र उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति थे जिन्होंने उनके विचारों का मूल्यांकन किया था।

सिनहा की बात की पुष्टि करते हुये मेहता ने कहा—''वास्तव में आपके महिला उद्धार सम्बन्धी विचार अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। जब मैंने आपके वे विचार सिनहा साहब के मुँह से सुने तो दंग रह गया। मेरी कल्पना के परे था कि कोई भी महिला ऐसे विचारों वाली हो सकती हैं। उसी क्षण से मैं आपसे मिलने के लिये लालायित हो उठा।''

''भाभी जी जब तक मैं इन्हें आपके पास ले नहीं आया तब तक ये मेरी जान खाए रहे।'' सिनहा ने कहा।

शीला ने मुस्कराते हुए कहा—''सुन लिया आपने मेहता साहब सिनहा साहब की बात ? जान खाने की बात कह रहे हैं। कभी सुनी है आपने जान खाने की बात ?''

''वाह सिनहा बाबू ! जान लेने की बात यो मैंने सुनी थी। परन्तु यह जान खाने की बात कहाँ की है ?''

''देखिए भाभी जी, अब और शर्मिंदा न करिए।'' सिनहा ने कृत्रिम गम्भीरता धारण करते हुए कहा।

''नहीं तो बेचारे रो देंगे।'' मि० मेहता की हँसी छूट गई।

''शीला भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गईं। कुछ देर बाद हँसी पर नियन्त्रण पाते हुये कहा—''आप तो सिनहा साहब के पीछे हाथ धोकर

पड़ गये।"

"वाह भाभी जी ! आप ही तो रास्ता दिखाती हैं और चलने वाले के मत्थे सारा दोष मढ़तीं हैं।"

"अच्छा भाई ! मैं अपने शब्द वापस लेती हूं। कहीं सिनहा साहब बुरा न मान जायँ।"

"नहीं भाभी जी ! ऐसी गलती मुझसे नहीं हो सकती कि आपकी बात का मैं बुरा मान जाऊँ। मैं तो तब से यह सोच रहा हूं कि 'जान खाने' की बात पर आज तक मेरा ध्यान क्यों नहीं गया। सैकड़ों बार मैंने सुना और इसका प्रयोग भी किया होगा, परन्तु इसके अनौचित्य की ओर न तो किसी ने ध्यान आकृष्ट किया और न स्वतः गया। और आपने तो जैसे जबान ही पकड़ ली मेरी।" सिनहा का तीर निशाने पर लगा। उपहास के पात्र बन कर भी प्रशंसा किये जा रहे थे।

मेहता सिनहा के इस कार्य को बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहे थे। उन्होंने उसे और अधिक तीव्रता प्रदान करते हुये कहा—"आजकल सिनहा साहब ज्ञान की खोज में फकीर बन कर निकल पड़े हैं। जहाँ भी तनिक सा ज्ञान प्राप्त हो जाता है उसे अपनी झोली में डाले बिना नहीं रहते।"

शीला ने हिदायत के स्वर में कहा—"देखिये मेहता साहब ! आपकी किसी बात का उत्तर सिनहा साहब नहीं दे रहे हैं और आप हैं कि बस अभी तक सिनहा साहब की जान खाये जा रहे हैं।" शीला ने साड़ी मुँह में लगा कर हँसी को रोकने की लाख चेष्टा की, परन्तु वह व्यक्त हो ही गई।

"भाभी जी आप तो एक तीर से दो शिकार करती हैं। आपकी बात मेरे लिये तो निर्देश होती है, लेकिन सिनहा साहब के लिये तो बस....।" कह कर मि० मेहता ने गरदन के पास हाथ ले जाकर उसे काटने का संकेत किया।

"वाह मेहता साहब ! आप भी खूब हैं। अगर सिनहा साहब मेरी बात

का ऐसा अर्थ न लगा रहे हों—तो आप उन्हें वैसा करने के लिये सचेष्ट किये दे रहे हैं।"

"अब शायद आप सिनहा साहब का स्थान मुझे देना चाह रहीं हैं।"

"मेहता साहब ! अब आप गजब ढा रहे हैं। सिनहा बाबू को भी कुछ कहने का अवसर दीजियेगा या नहीं ?"

"लीजिये सिनहा साहब ! अब मेरा नम्बर है।"

"किसलिये ?" सिनहा ने प्रश्न किया।

"ज़ेर होने के लिये।"

"और आपके बाद फिर मेरा।" शीला के साथ दोनों लोग हँस पड़े। वातावरण की गम्भीरता हास्य में परिणत हो गई। शीला ने खड़े होते हुये कहा—"आइये, जरा चाय–वाय तो पी जाय।"

सिनहा ने उठते हुये कहा—"इसकी क्या जरूरत थी।"

"आपका यह वाक्य अब बहुत पुराना हो गया है। कोई नया ढूँढ़ निकालिये।" कहते हुये कुर्सी पर शीला बैठ गई। सामने की ओर दोनों लोग बैठ गये। शीला ने चाय बनाई और सब लोग साथ-साथ पीने लगे। चाय की चुस्की लेते हुते शीला ने पूँछा—"बातों ही बातों में यह तो पूँछना मैं भूल ही गई कि आज सुबह ही सुबह कैसे इधर कष्ट किया ?"

"अरे हाँ, मैं तो भूल ही गया था। और वाह मेहता साहब ! आप भी खूब हैं, याद भी नहीं दिलाई ?"

"आप भूल सकते हैं, भाभी जी भूल सकती हैं तो क्या मैं किसी और धातु का बना हूं जो नहीं भूल सकता ?"

"मेहता साहब के जवाब का जवाब नहीं।" शीला ने प्रशंसा व्यक्त की।

"खैर ! भाभी जी बात यह है कि मेहता साहब आज सुबह ही आ पहुंचे मेरे यहाँ। मैंने क्लब की बैठक, जो कल होने वाली है, की चर्चा की। मेहता साहब ने अपना पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया है। इस पर हम लोग काफी देर तक विचार-विमर्श करते रहे तो सबसे

बड़ी समस्या बिल्डिंग की आई। क्लब के अनुरूप ही स्थान होना चाहिये। इसके लिये मेहता साहब ने एक बँगला बताया जो कि बिकाऊ है। मैंने सोचा जो कार्य करना है उसमें देर क्यों की जाय, इसलिये उसी समय मैं मेहता साहब के साथ उस बंगले को देखने के लिये चल पड़ा। उस बँगले को मैंने खूब अच्छी तरह चारो तरफ देखा। वास्तव में जैसा मेहता साहब कह रहे थे वैसा ही पाया मैंने उसे। फिर मैंने सोचा आपको दिखाये बिना काम चलने का नहीं। इसलिये इधर चला आया। अब आप फौरन तैयार हो जाइये।"

"किसलिये ?"

"बँगला देखने के लिये।"

"आपको पसन्द है ?" शीला ने प्रश्न किया।

"मुझे तो पसन्द है।"

"जब आपको पसन्द है–मेहता साहब को पसन्द है तो फिर मुझे क्यों न पसन्द होगा ?"

"फिर भी कम से कम आप भी तो देख लीजिये।"

"उसे देख कर मैं आप लोगों की पसन्दगी पर सन्देह नहीं करना चाहती।"

"भाभी जी से पार पाना बड़ा कठिन है सिनहा साहब।" मेहता ने कहा।

"यह तो आप अब जान पाये हैं, मैं न जाने कब से इस बात से परिचित हूं।"

"तो फिर अब क्या करियेगा ? भाभी जी तो चलने को तैयार ही नहीं।"

"तब फिर क्या है। चलिये, चलें हम लोग और बात करलें चलकर।"

"अब बात क्या करनी है। सब कुछ तो सुबह ही तय हो गया था।"

"ओह ! मुझे तो कुछ याद ही नहीं रहा।" घड़ी की ओर देखते हुये सिनहा ने कहा—"यह तो ग्यारह बज रहे हैं। जल्दी चलना चाहिये।

कहीं वह दूसरा आदमी न आ जाय।"

"अभी तो शायद आपको अपने बँगले भी चलना पड़े।"

"बँगले ही नहीं बैंक भी चलना पड़ेगा।"

"परन्तु आज शनिवार है। बारह बजे के बाद कोई काम न हो सकेगा।" मेहता ने कहा।

"तब तो गजब हो जायेगा।" सिनहा के स्वर में घबड़ाहट थी।

"क्या गजब हो जायगा? आखिरकार मुझे भी तो कुछ माळूम हो?" शीला ने प्रश्न किया।

"भाभी जी बात यह है कि बातों में हम लोग ऐसे खो गये कि कुछ पता ही न चला और समय काफी हो गया। उसबँगले का एक खरीददार बारह बजे आने वाला है। उसकी बातचीत लगभग तय हो चुकी है। वह उसे साठ हजार में खरीदने के लिये राजी हो गया है। आज वह पाँच हजार रुपया बँगले के मालिक को देने आ रहा है। बँगले के मालिक ने कहा था कि मेहता साहब के कारण यदि मैं लेना चाहूं तो उसी कीमत पर मुझे वह बँगला दे देगा बसर्ते बारह बजे के पहिले मैं पाँच हजार रुपया उसके पास पहुंचा दूँ।"

"तो इसमें गजब होने की कौन सी बात थी? मैं अभी आपको रुपया दिये देती हूं। आप उसे समय के पूर्व दे दीजिये जाकर। "कह कर शीला अन्दर चली गई और थोड़ी ही देर में सौ-सौ के पचास नोट मि० सिनहा के हाथ में थमाते हुये बोलीं—"गाड़ी तो होगी ही।"

"हाँ, गाड़ी तो है।" कहते हुये सिनहा ने रुपये ले लिये। मेहता और सिनहा गाड़ी पर बैठे और कार बँगले के बाहर हो गई।

१५

डा० कान्त दोपहर को वापस आये तो शीला को अपनी प्रतीक्षा करते हुये पाया। शीला वहीं प्रातःकालीन समाचारपत्र हाथ में लिये पति की प्रतीक्षा कर रहीं थीं। पति को आया हुआ देख कर मधुर मुस्कान बिखेरती हुई पति के स्वागतार्थ वह उठ खड़ी हुई और कृत्रिम क्रोध-पूर्ण स्वर में प्रश्न किया—"पहले आप यह बताइये कि इतनी प्रतीक्षा क्यों कराते हैं ?"

"यह शिकायत तो मुझसे सभी की है।" डा० कान्त ने उत्तर दिया।

"और कौन है यह प्रश्न करने वाला ?" अपने एकाधिकार पर प्रहार समझकर शीला ने आश्चर्यान्वित होकर प्रश्न किया।

"कोई एक हो तो बताऊँ।"

"अच्छा ! तो एक नहीं कई हैं ?"

"कई नहीं हजारों हैं।"

शीला का भय जाता रहा। वह प्रफुल्लित होकर बोलीं—"ओह ! मैं समझ गई आपका तात्पर्य। मेरे अतिरिक्त आपकी प्रतीक्षा करने वाले हैं आपके मरीज।"

"मेरे मरीज नहीं मर्ज के मरीज।" शीला के कपोलों को दोनों हाथों से पकड़ कर हिलाते हुये डा० कान्त ने कहा।

"आपका अभी बचपना नहीं गया।"

शीला के कपोल पर हल्की सी एक चपत लगाते हुये डा० कान्त ने कहा—"धुत ! पगली कहीं की। अब मैं कोई बच्चा थोड़े ही हूं ! जो बचपना अभी तक बना हुआ है। अच्छा चलो, मुझे भूख बड़े जोरों की लगी हुई है।"

"चलिये भोजन तैयार है।" शीला कह कर भोजन कक्ष की ओर बढ़ीं।

"बेसिन में हाथ धोते हुये डाक्टर कान्त ने प्रश्न किया—"तुमने तो लिया होगा ?"

"अभी कहाँ ?"

"क्यों ?"

"आपके बिना कैसे खा लेतीं ?"

"देखो शीला ! मैं तुमसे पचास बार कह चुका हूं कि मेरी प्रतीक्षा न किया करो। समय से भोजन करना स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है।"

"डाक्टर साहब की यह शिक्षा दूसरों के लिये ही हैं या अपने लिये भी ?"

"मेरा क्या—मेरा तो पेशा ही ऐसा है कि मैं कोई भी काम समय से नहीं कर सकता।"

"तब फिर दूसरे को आदेश देने वाले आप कौन होते हैं ?"

"डाक्टर ! डाक्टर तो सभी को समय से भोजन करने, दवा खाने और सोने का आदेश देता है।"

"डाक्टर आप जिनके लिये होंगे उन्हें आप यह सलाह दिया करिये।"

"ती फिर तुम्हारे लिये क्या हूं ?"

"जीवन सर्वस्व।" शीला की लज्जापूर्ण मुद्रा देखकर डा० कान्त पत्नी पर रीझ उठे।

डा० कान्त ने पत्नी के पास जाकर एक प्यार का चिन्ह अंकित करते हुये कहा—"अच्छा शुरू करो।" कहकर भोजन की मेज पर बैठ गये। दोनों लोगों ने साथ-साथ खाना प्रारम्भ किया। खाते हुये डा० कान्त ने कहा—"मेरा क्या ठिकाना मैं कब आऊँ। तुम मेरे कारण क्यों भूँखी बैठी रहती हो ?"

"यही तो मेरा नारी धर्म है। पत्नी पति के पूर्व कैसे भोजन कर सकती है ? उसे तो पति की प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।"

"परन्तु उस पति की प्रतीक्षा करनी चाहिये जिसका कुछ निश्चित

समय हो और अपने पति धर्म का पालन करता हो। मेरे जैसे अनिश्चित समय पर आने वाले व्यक्ति के लिए प्रतीक्षा करना अपने को भूँखों मारना है।"

"आपकी प्रतीक्षा करने में जितना कष्ट मिलता है आपके साथ भोजन करने में उससे कहीं अधिक आनन्द भी तो आता है। आप भूँखे मरीजों को देखते रहें और मैं यहाँ खा-पीकर आराम करूँ—कहीं यह अच्छा लगता है ?"

"इसी का तो मुझे दुःख है कि चाह कर भी तुम्हारा साथ नहीं दे पाता हूं।"

शीला मौन थीं। डा० कान्त ने शीला के चेहरे पर परिवर्तित भावों को पढ़ते हुये कहा—"तुम्हें जब देखता हूं तब तुम किसी दार्शनिक की भाँति किसी किन्हीं विचारों में खो जाती हो।"

शीला की विचारधारा भंग हो गई। गम्भीरता समाप्त करने के अभिप्राय से मुस्कान बिखेरते हुए शीला ने कहा—"यूँ ही बापू की याद इधर कई दिनों से काफी आ रही है।"

"तो जाकर मिल आओ न या उन्हें यहीं बुलाकर रख लो।"

"यहाँ वह रहेंगे नहीं और आपको चलने की फुरसत नहीं।"

डा० कान्त ने कुछ सोच कर उत्तर दिया—"रामू के साथ चली जाओ।"

"उसके साथ क्यों जिसके साथ आई हूं उसी के साथ जाऊँगी।"

"अच्छा तो फिर देखो यदि कोई अवसर आया तो चलूँगा।"

"अवसर से आपका तात्पर्य ?"

"रोगियों की संख्या कम होने से है।"

"इसकी सम्भवना मुझे तो दिखाई नहीं देती।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। सदैव समय एक सा नहीं रहता।"

"उसकी भी प्रतीक्षा कर लूंगी।" दीर्घ नि:स्वास छोड़ते हुए शीला

उठ कर खड़ी हो गईं।

भोजन समाप्त हो चुका था।

डा० कान्त पत्नी के साथ दूसरे कक्ष में चले गए।

१६

इतवार का दिन था। जैसे ही प्रातःकाल डा० कान्त जाने लगे वैसे ही शीला ने प्रश्न किया—"दोपहर को शीघ्र ही आ रहे हैं न आप ?"

"अवश्य।"

"देखिये, कहीं मरीजों में न उलझ जाइयेगा। मैं आपके बिना कुछ भी न कर सकूँगी।"

"तुम निश्चित रहो मैं सब तैयारी कर दूँगा आकर।" कहते ही डा० कान्त की कार बँगले के बाहर हो गई।

शीला आज विशेष प्रसन्न थी। बँगले की सफाई हो रही थी। नौकर-चाकर इधर से उधर दौड़ रहे थे। पति के आश्वासन के कारण आवश्यकता न होने पर भी वह कुछ न कुछ आदेश दिये ही जा रही थीं। बीच-बीचमें अनेक बार फोन पर पतिको पूँछा गया। शीला ने 'यहाँ नहीं हैं' कह कर हर बार उत्तर दे दिया। शनैः शनैः डाक्टर कान्त के आने का समय हो चला। शीला की व्यग्रता बढ़ गई। सड़क पर किसी कार के गुजरने की ध्वनि सुन कर वह पति का आगमन समझ बैठतीं और हृदय की गति तीव्र हो जाती, परन्तु कुछ ही क्षणों में वह आशा भी निराशा में परिणत हो जाती। शीला ने अस्पताल को फोन किया। वहाँ से उत्तर मिला 'नहीं हैं'। कुछ देर रुक कर पुनः पूँछा, लेकिन फर वही चिर-परिचित उत्तर मिला। शीला ने झुंझला कर फोन पटक दिया. परन्त फोन छोड़ते ही घण्टी टन टना उठी। शीला ने उसकी

कोई परवाह नहीं की और जाकर कोच पर बैठ गईं परन्तु घंटी की ध्वनि बन्द न हुई। अनिच्छा पूर्वक शीला ने पुनः चोंगा उठाया और कानों से लगाया। फोन डा० कान्त ने किया था। उन्होंने कहा—
"शीला! मैं जानता हूँ कि तुम मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। हो सकता है कि उस समय तक न पहुँचने के कारण नाराज भी हो, परन्तु मैं शायद जरा देर से लौटूँ।"
"क्यों?" शीला ने फोन पर ही प्रश्न किया।
"शहर में हैजा फैल गया है। लोग बड़ी तेजी से बीमार हो रहे हैं। इस समय मैं सैकड़ों मरीजों से घिरा हुआ हूँ।"
"लेकिन आपके बिना तो मैं कुछ भी न कर सकूँगी। आपका आना बहुत आवश्यक है। जैसे भी हो आप शीघ्रातिशीघ्र आइये अवश्य।"
"परन्तु मरीजों को कैसे छोड़ सकता हूँ? फिर भी छुट्टी मिलते ही आजाऊँगा।" कह कर डा० कान्त ने फोन रख दिया।
शीला झुँझला उठीं। क्रोध में फुफकारते हुये कहा—"मरीज-मरीज-मरीज। जहाँ देखो मरीज-जब देखो मरीज। अस्पताल में मरीज- घर पर मरीज-फोन पर मरीज।" कहते हुये शीला कोच पर गिर पड़ीं।
शीला की मानसिक अशान्ति चरम सीमा पर थी। रह-रह कर पति पर क्रोध आ रहा था। यह सोच कर कि थोड़ी ही देर में मेहमान आने वाले हैं और उनके स्वागतार्थ अभी तक कोई भी तैयारी नहीं हो सकी है शीला के हाँथ-पैर फूलने लगे। वह घबड़ा उठीं। नेत्र विस्फरित हो गये। चारो ओर दृष्टि दौड़ाई, लेकिन वायु के कारण हिलते हुये रेशमी परदों के अतिरिक्त कुछ भी गतिमय दृष्टिगत न हुआ। घड़ी की सुई बड़ी तेजी के साथ दौड़ रही थी। दृष्टि घड़ी पर जाती, परन्तु टिक न पाती। वह बैठी न रह सकीं। उठ कर चहल कदमी करने लगीं। सहसा मस्तिष्क में किसी विचार के आते ही वह चीख पड़ीं—"रामा! चम्पा! रामू! किसनू!"
शीला की पुकार सुन कर सभी नौकर-नौकरानियाँ दौड़ पड़े। सबको

सामने उपस्थिति देख कर एक साँस में ही तमाम काम बता डाला और फौरन करने को कहा। सभी आज्ञा सिरोधार्य कर बाहर हो गये और काम में जुट गये। नौकरों के चले जाने के पश्चात् शीला नेत्र मूँद कर कोच पर बैठ गईं।

मि० सिनहा ने भीतर प्रवेश करते हुये आश्चर्य प्रकट किया—"अरे भाभी! यह क्या? आप तो इस तरह से बैठी हैं जैसे कोई आने वाला ही नहीं है।"

शीला ने मि० सिनहा की ओर दृष्टि उठा कर देखा तो, परन्तु बोलीं कुछ नहीं। शीला के न बोलने से सिनहा के आश्चर्य की मात्रा में और अधिक वृद्धि हो गई। उन्होंने एक कदम आगे बढ़ कर पुनः कहा—"भाभी जी! क्या बात है?"

"कुछ नहीं।"

"आप मुझ से छिपा रही हैं।"

शीला का स्वर न फूटा।

"भाभी जी क्या मुझे अपने दुःख में शरीक न करियेगा?" सिनहा ने समवेदनात्मक स्वर में कहा।

शीला अपने को न रोक सकीं और वैराग्य पूर्ण स्वर में कहा—"क्या बताऊँ सिनहा साहब! अब मैं इस जीवन से तंग आ गई हूँ।"

"आखिर हुआ क्या? कुछ बताइयेगा भी?"

"मेहमानों के स्वागत का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आपके भाई साहब ने अपने ऊपर ले रखा था। काफी देर तक उनकी प्रतीक्षा करती रही। अभी कुछ ही मिनट पूर्व उन्होंने फोन पर कहा कि वह नहीं आ सकते।" सिनहा की ओर देखते हुये शीला ने कहा—"अब आप ही बताइये कुछ देर बाद मेहमान आने वाले हैं। इतने समय में मैं अकेले क्या तैयारी कर सकती हूँ?"

"भाभी जी अगर और किसी के बीच की बात होती तो मैं कुछ कहता भी, अब आपके और भाई साहब के बीच मैं क्या बोलूँ।" सिनहा ने

गम्भीर स्वर में कहा।

"बोलने से कुछ होने का भी तो नहीं। अब तो जो मेरा अपमान होना है वह होगा ही।"

"ऐसा आप क्यों सोचती हैं? आपका अपमान मैं अपना अपमान समझता हूँ।"

"लेकिन इस कोरी सहानुभूति से कुछ काम बनने का नहीं।"

"वाह! अभी क्या हो गया है? अभी तो काफी समय है। सब कुछ किया जा सकता है। मैं नौकरों को बुला कर अभी सब व्यवस्था किये देता हूँ।"

"इतना तो मैंने कर रखा है। नौकरों को बुलाने की आवश्यकता नहीं।"

"तो फिर भाई साहब के लिये आप क्यों दुःख कर रही हैं।"

"हमारे यहाँ मेहमान आयें और वह घर पर न हों—सब लोग क्या सोचेंगे अपने मन में?"

"कुछ नहीं। सब लोग भाई साहब की व्यस्तता से परिचित हैं। उनकी अनुपस्थिति किसी को खटकेगी नहीं।"

"परन्तु मुझे तो खटकेगी ही।"

"हाँ, भाभी! यह बात तो जरूर है, परन्तु किया क्या जाय? शहर में हैजा खूब जोरों से फैल रहा है। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है। इस वक्त तो डाक्टरों को दम मारने तक की फुरसत न मिलेगी। और फिर भाई साहब को ......।"

"हैजे को भी आज ही फैलना था।" बीच में शीला बोल पड़ीं।

"कभी-कभी ऐसा ही होता है कि आवश्यकता के समय व्यस्तता और भी बढ़ जाती है।"

"और लोगों के साथ तो यह बात कभी-कभी होती होगी, परन्तु आपके भाई साहब के साथ तो ऐसा सदैव ही होता रहता है। जिस दिन मैंने उन्हें शीघ्र आने को कहा उसी दिन उनकी व्यस्तता बढ़ गई।"

"ओफ हो! लो सिनहा साहब हाजिर हैं।" मेहता ने प्रवेश करते हुये कहा।

"आइये मेहता साहब।" उठ कर शीला ने स्वागत करते हुये कहा।
मेहता ने बैठते हुये प्रश्न किया—"सम्भवतः और लोग अभी नहीं आये ?"
"अभी साहब साढ़े तीन ही तो बजे हैं।" सिनहा ने घड़ी की ओर संकेत करते हुये कहा—"धीरे-धीरे आ रहे होंगे सब लोग।"
"आज तो साहब शहर में चारो ओर आफत मची हुई है। न जाने कैसे जान बचा कर आ पाया हूं।" मेहता ने कहा।
"क्यों, क्या आपको भी कुछ हो गया था ?" शीला ने आश्चर्य प्रगट किया।
"मुझे तो नहीं, लेकिन पड़ोस में कई परिवार के परिवार ऐसे बीमार पड़े हैं कि कोई पानी तक देने वाला नहीं है।"
"लेकिन आपको जान बचाने की क्या आवश्यकता पड़ गई ?" सिनहा ने प्रश्न किया।
"अरे साहब कुछ पूँछिये न। अगर मैं जरा भी दिखाई दे जाता तो किसी न किसी की तीमारदारी इस समय कर रहा होता।"
"तो क्या हर्ज था ?"
"वाह साहब वाह ! भाभी साहिबा के बुलाने पर हम न आयें—ऐसा कैसे हो सकता है ?"
मेहता की बात का शीला पर काफी प्रभाव हुआ। उन्होंने कृतज्ञता प्रकट करते हुये कहा—"मेरी क्या हस्ती है आप लोगों को बुलाने की। यह तो सब सिनहा साहब की कृपा है जो आप जैसे लोग यहाँ तक आने का कष्ट उठाते हैं।"
"इसमें कष्ट उठाने की कौन सी बात है ? कष्ट तो वहाँ होता है जहाँ अनिच्छा पूर्वक जाना पड़ता है।"
शीला ने घड़ी की ओर देखा तो चार बजने में कुछ मिनट ही शेष थे। उन्होंने उठते हुये कहा—"तब तक आप लोग बातचीत करिये मैं अभी आई।" कहकर शीला अन्दर चली गई।

शीला ने अन्दर जाकर सम्पूर्ण तैयारी का निरीक्षण किया और जो कमी प्रतीत हुई उसे पूरा करने का आदेश दे कर वस्त्र परिवर्तन के लिये अन्य कक्ष में चली गईं।

कुछ देर बाद शीला ने पूर्ण सुसज्जित रूप में बैठक में प्रवेश किया। उनके आते ही नवागन्तुक लोग उठकर खड़े हो गये। शीला के जाने के पश्चात् कई अन्य लोग आ गये थे। शीला ने मुस्कराते हुये हाथ जोड़ कर सबके अभिवादन का उत्तर दिया और अत्यन्त विनम्र स्वर में कहा—"आप लोगों के आगमन के समय मैं यहाँ उपस्थित न थी—इसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूं।"

अन्य लोगों के साथ ही मिस कला ने बैठते हुये कहा—"आपका पार्ट सिनहा साहब तो अदा कर रहे थे।"

सभी उपस्थित लोग हँस पड़े। सिनहा साहब ऐसे प्रहारों के इतने अभ्यस्त थे कि उनकी असाधारण स्थिति कभी न होने पाती थी। प्रहार उनकी हँसी में विलीन हो जाता था। हँसी की लहर विलीन होने के पूर्व ही मेहता ने कहा—"सिनहा साहब का यह अभ्यास बहुत पुराना है।"

इसके पूर्व कि हँसी कहकहों में परिणत होने पावे सिनहा ने कहा—"सिखाया हुआ तो आप ही का है।"

कहकहों से अतिथि-कक्ष गूँज उठा। सिनहा विजयोल्लास से भरे हुये सबकी ओर देख रहे थे। कला ने हँसी पर नियन्त्रण पाते हुये कहा—"सिनहा साहब, भला कहीं चूकने वाले हैं। जहाँ बैठ जायँ वहीं हँसी के मारे दम फूलने लगे।"

"लेकिन भाभी साहिबा के सामने इनकी एक नहीं चलने पाती है।" मेहता ने कहा।

"तो फिर आज आप क्यों चुपचाप बैठीं हैं?" कला ने शीला से कहा।

"अरे, यह तो मेहता साहब हैं। आप इनकी बातों में न आइयेगा।"

"तो क्या मेहता साहब झूठ भी बोलते हैं, लेकिन कब से?"

मेहता चुप ।

शीला भी कुछ न बोल सकीं ।

कला ने जब सभी लोगों पर अपना रंग चढ़ते देखा तो सिनहा को सम्बोधित करते हुये बोलीं—"सिनहा साहब ! आप ही बताइये न । भाभी साहिबा और मेहता साहब तो कुछ बोल नहीं रहे हैं ।"

"इसका उत्तर तो भाभी साहिबा ही देंगी । मेहता साहब के विषय में यह जानकारी तो उनकी अपनी है ।"

"आप कहीं गलत अर्थ न लगा लीजियेगा । मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि मुझमें ऐसी कोई विशेषता नहीं है जिसकी ओर मेहता साहब ने संकेत किया था ।"

"वाह भाभी जी वाह ! हो गईं गम्भीर । अरे मित्रों के बीच तो ऐसी बातें चला ही करती हैं ।" सिनहा नें बदलती हुई स्थिति को सम्हालने की दृष्टि से कहा ।

"मैं गम्भीर कहाँ हुई ? मैं तो अपनी सफाई पेश कर रही थी ।"

"इसकी आवश्यकता ही क्या ? यहाँ कौन ऐसा है जिसे आपके विषय में ज्ञान न हो ।"

"तो यह कहिये कि मैं खूब चर्चा की विषय बन गई हूं ।"

"क्यों नहीं ! आप इतना बड़ा कार्य करने जा रहीं हैं और आपको कोई जाने न—ऐसा कैसे हो सकता है ?"

"मैं क्या करने जा रही हूं, जो कुछ भी होगा वह सब आप लोग ही करेंगे ।"

"हो सकता है कि हमीं लोग करें, परन्तु होगा तो आपके ही निर्देशन में ।"

"जहाँ पर आप जैसे अनुभवी लोग उपस्थित हैं वहाँ मेरे निर्देशन क क्या कीमत ?"

"यह तो हम लोग समझते हैं कि आपका पथ प्रदर्शन कितना महत्व रखता है । हम लोग तो आपके अनुसरण कर्ता मात्र हैं ।"

"नहीं ऐसी बात नहीं है। आप लोग ही उसके कर्ता-धर्ता होंगे।"

"परन्तु महिला समाज की बुराइयों को समाप्त करने में एक महिला जितना सफल हो सकती है उतना पुरुष नहीं, क्योंकि सुधार कर्ता यदि पुरुष हुआ तो महिला समाज को उसमें स्वार्थ की गंध आने लगेगी और यदि आपने यह कार्य अपने हाथ में ले लिया तो किसी महिला को सन्देह की गुञ्जाइश नहीं रहेगी और आपके विचारों से साम्यता रखने वाली महिलायें आपके कंधे से कंधा मिलाने के लिये मैदान में आ जायेंगी।"

सिनहा की बात का समर्थन करते हुये मेहता ने कहा—"और फिर महिला उद्धार सम्बन्धी विचारों की जन्मदायिनी भी तो आप ही हैं।"

इसके पूर्व कि शीला कुछ कह सकें सिनहा बोल पड़े—"तो फिर इस महिला सुधार सम्बन्धी संगठन की संचालिका के लिये मैं भाभी जी का नाम पेश करता हूं।"

विरोध किसे हो सकता था। सभी ने सहमति व्यक्त की परन्तु, मेहता साहब से न रहा गया। उन्होंने कहा—"और मिस कला भाभी जी की सह-संचालिका का कार्य भार सम्हाळेंगी।"

शीला और कला ने एक दूसरे की ओर देखा और मुस्करा दीं।

"वाह मेहता साहब वाह ! आपने मिस कला को सह संचालिका चुन कर भाभी जी के हाथों को और मजबूत कर दिया।" शीला की ओर देखते हुये सिनहा ने उत्साहित होकर कहा—"लीजिये भाभी जी, अब आपकी सहयोगी वाली शिकायत भी समाप्त हो गई।"

हल्की मुस्कान बिखेरते हुये शीला ने कहा—"लेकिन एक शिकायत अभी बाकी है।"

"वह क्या ?"

"आप लोग बिना कुछ नाश्ता किये ही अभी तक बैठे हैं।"

"वाह भाभी जी ! इसकी क्या आवश्यकता है। सब लोग सीधे अपने अपने घरों से ही तो आ रहे हैं।" मेहता ने शिष्टाचार प्रदर्शित किया।

"फिर भी चलिये, कुछ न सही तो चाय-वाय ही कम से कम पी लीजिये चलकर।" शीला उठकर खड़ी हो गई।

"अरे भाई मेहता साहब ! भाभी बिना कुछ खिलाये-पिलाये छोड़ने वाली नहीं।"

सब लोग उठकर शीला के पीछे-पीछे अन्य कक्ष में चले गये। वहाँ की व्यवस्था पर दृष्टि डालते ही मेहता चौंक पड़े—'अरे भाभी जी ! यहाँ तो आपने अच्छी-खासी दावत की व्यवस्था कर रखी है।"

"क्या है, कुछ भी तो नहीं हो सका है।" शीला ने संकोच सहित कहा।

"इसे आप कम समझती हैं !" मेहता ने आश्चर्य प्रकट किया।

"अरे भाई साहब ! आज के स्वागत की पूरी व्यवस्था की जिम्मेदारी भाई साहब पर थी,परन्तु शहर में हैजा फैल जाने के कारण उन्हें फुरसत ही कहाँ, इसलिये भाभी साहिबा भाई साहब के अभाव में जो कुछ भी कर सकीं हैं—वह सब आप लोगों के सामने है।"

"क्या सफ़ाई पेश की है सिनहा साहब ने भाभी साहिबा की ओर से।" कला ने कुर्सी पर बैठते हुये कहा। एक बार पुनः हँसी का फौवारा छूट गया।

हँसी पर नियन्त्रण पाते हुये शीला ने कहा—"कला बहिन ! आप तो सिनहा साहब के पीछे हाथ धोकर पड़ गई हैं।"

"अरे शीला जी भाभी जी से बचियेगा। आज आपका नम्बर है।" मेहता ने उड़ते हुये स्वर में कहा।

"क्या मतलब ?" कला ने सतर्क होकर कहा।

"थोड़ी ही देर में सब मालूम हो जायगा।"

"अगर अभी बता दें तो मैं तैयार हो जाऊँ।"

"फिर तो सारा मजा ही किर-किरा हो जायगा।"

मेज पर सभी चीजें पहले से ही सजी हुई थीं। सभी लोगों ने खाना प्रारम्भ कर दिया। शीला रह-रह कर सब पर दृष्टि डाल रहीं थीं।

कला को संकोच सहित खाते देख कर शीला ने कहा—"कला बहिन तो ऐसा संकोच प्रदर्शित कर रही हैं जैसे नई-नवेली दुलहन बनी ससुराल में बैठी हों।"
कला के कपोल रक्ताभ हो उठे। सभी लोग हँस पड़े। मेहता ने कहा—"देखा कला जी! मैंने क्या कहा था। शीला भाभी की दृष्टि में जो चढ़ गया वह फिर बचने का नहीं।"
"आप भी कमाल करते हैं मेहता साहब! अगर कोई किसी की बात का बुरा न मानता हो तो आप मनवा दें।"
"वैसे तो कला जी चाहे बुरा न मानतीं, लेकिन आपने ससुराल वाली बात कह कर कला जी के दिल को ठेस पहुंचाई है।" सिनहा ने कहा—
"क्यों?"
"अभी कला जी ने ससुराल का मुँह ही कहाँ देखा है।" मेहता ने कहा।
"ओह! माफ कीजियेगा कला बहिन, मुझसे गलती हुई। मैं समझ बैठी थी कि शायद आपका विवाह हो चुका है।"
"अरे आप सिनहा साहब की बातों में न आइयेगा। इनका तो स्वभाव ही ऐसा है कि........।"
"लीजिये साहब! जो बात भाभी जी ने कला जी से मेरे लिये कही थी—वही बात अब आपके लिये कला जी भाभी जी से कह रही हैं।" कला की बात समाप्त होने के पूर्व ही मेहता ने सिनहा से कहा।
"भाभी जी की सहायक जो ठहरीं। अभी से रिहर्सल करना प्रारम्भ कर दिया है।" सिनहा साहब की बात से छूटते हुये कहकहों के साथ खाना समाप्त हो गया।
उठकर सभी लोग पुनः पूर्व कक्ष में आ गये। सभी के चेहरों पर प्रसन्नता झलक रही थी। कला और शीला एक साथ ही बैठ गईं थीं। वातावरण अत्यन्त स्निग्ध था। शीला की उदासीनता न जाने कहाँ विलीन हो गई थी। मेहता ने शीला और कला को एक साथ बैठे हुये

देखकर कहा—"साहब ! अब दोनों लोगों में कुछ समझौता सा हुआ माळूम दे रहा है। अब हम लोगों की खैर नहीं।"

एक बार पुनः सभी लोग हँस पड़े। इसी हास्य को सुनकर विमला ने अपने रुग्ण पुत्र मुन्ने को लेकर भीतर प्रवेश किया था।

१७

डाक्टर कान्त को मुन्ने की मृत्यु से अतीव मानसिक वेदना हुई। पिता द्वारा भाई तथा माता को ले जाने के उपरान्त वह काफी देर वहीं खड़े सोचते रहे। उनसे बोलने का किसी को साहस न हुआ। सभी आगंतुक पूर्व ही एक-एक करके प्रस्थान कर चुके थे। शीला भी उठकर चली गई थीं। उन्होंने इस दुष्परिणाम की कल्पना तक न की थी। उनके विरोध का कारण तो विमला का पुत्र को लिये हुये अचानक आ जाना तथा उनके और मित्रों के मध्य चल रहे आमोद-प्रमोद की बातों में विघ्न उपस्थित करना था। यदि शीला को इस बात का विश्वास हो गया होता कि विमला उनके पति की माता तथा गोद का पुत्र उनका भाई है तो सम्भवतः यह अप्रत्याशित घटना न घटने पाती। पति के अनेक बार कहने पर कि वह उनकी माँ हैं विमला विश्वास न कर सकीं, क्योंकि यह तो उनका स्वभाव ही था कि वह प्रत्येक महिला को माँ कहकर सम्बोधित करते थे। उस गलतफहमी का परिणाम हुआ मुन्ने की मृत्यु। पति द्वारा धक्का खाने के कारण शीला गिर पड़ीं थीं। क्रोध चरम सीमा पर था। आत्माभिमान जाग उठा था। वह उठीं और जाकर पलंग पर गिर पड़ीं। काफी देर तक घटना का मनोविश्लेषण करती रहीं। वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होने के कारण उनकी विचारधारा पति के आचरण के प्रतिकूल थी। रह-रह कर वेदना से

मन भर जाता था। कभी कभी वेदना वेगवती होकर नेत्रों द्वारा वह निकलती थी। विचारों के हिंडोले में झूलते हुये न जाने कब वह निद्रा निमग्न हो गई।

प्रातःकाल जब आँख खुली तो काफी दिन चढ़ चुका था। रात्रि की घटना के पुनः मस्तिष्क में आते ही वह एक क्षण के लिये सिहर उठीं। बाहर निकल कर पति को इधर—उधर देखा परन्तु कहीं न पाया उन्हें। सामने लान में काम करता हुआ भीखू दिखाई दिया। भीखू को उन्होंने पुकारा। भीखू भगाता हुआ आया और विनीतभाव से आज्ञा ग्रहण करने के लिये खड़ा हो गया। शीला ने उससे भीतर आने को कहा। उसे शीला के आचरण पर आश्चर्य हो रहा था, क्योंकि इस प्रकार उसे कभी न बुलाया गया था।

भीखू विमल बाबू का सबसे पुराना नौकर था। डाक्टर कान्त का बचपन उसी की गोद में बीता था। उसके जीवन का बहुत बड़ा भाग इसी परिवार की सेवा करते बीता था। परिवार के एक सदस्य की भाँति ही उसका व्यवहार हो गया था। कोई बात उससे छिपी न थी। हर ऊँची-नीची बात में वह सम्मिलित रहता था।

कान्त की मृत्यु का समाचार सुनने के पश्चात विमल बाबू विरक्त से रहने लगे थे। गुम-सुम बने रहते, बहुत कम बात करते और छोटी छोटी बातों पर खाने को दौड़ते। उनकी झुँझलाहट दिन पर दिन बढ़ती गई। तनिक भी इच्छा के विरुद्ध आचरण करने पर वह नौकरों को बुरी तरह डाँटते, कभी हाथ उठा देते और यदि जरा भी उसने अवज्ञा प्रदर्शित की तो उसे सेवा कार्य से भी निकाल देते थे। शनैः शनैः नौकरों की संख्या में कमी होती गई।

एक दिन विमल बाबू ने किसी कार्यवश भीखू को पुकारा। भीखू कुछ दूर पर बैठे तमाखू पी रहा था। अवस्था से उसकी श्रवणशक्ति प्रभावित हो चुकी थी, अतएव वह उनकी पुकार न सुन सका। विमल बाबू ने उसे हुक्का पीते हुये देख लिया था। उन्होंने पास जाकर भीखू से

रोबीले स्वर में कहा—"तुझे भी हरामखोरी सूझी है ? कितनी देर से आवांज दे रहा हूं।"

"सुन नहीं पाया बाबू जी, वरना.........।" भीखू ने घबड़ा कर उठते हुये कहा।

"न सुनने का बहाना करके मुझे बेवकूफ बनाना चाहता है।"

"बाबू जी.........।"

"चुप रह बदतमीज, जबान लड़ाता है ? हराम का खाता है और दिन भर बैठे हुक्का गुड़-गुड़ाया करता है, न काम का न काज का।"

भीखू स्वामिभक्त सेवक था। मन लगाकर हर काम करने को सदैव तत्पर रहता था। यदि विमल बाबू के परिवार की कभी असाधारण परिस्थिति हुई तो भीखू ने दिन-रात एक कर दिया। परिश्रम से कभी मुँह न मोड़ा। सदैव हर सेवा के लिये प्रस्तुत रहा परन्तु था, आत्माभिमानी।

विमल बाबू के मुँह से अपने प्रति अपशब्द सुनकर उसका आत्माभिमान बोल उठा—"बाबू जी ! मैंने कभी किसी काम से मुँह नहीं मोड़ा। आपका हर काम चाहे जैसा हो किया। इस पर भी आप मुझे बदतमीज.........।"

भीखू के वाक्य पूरा करने के पूर्व ही विमल बाबू बरस पड़े—"सुअर कहीं का फिर जबान लड़ा रहा है।" कहते हाथ की छड़ी भीखू के शरीर से चिपक गई।

छड़ी से फाटक की ओर संकेत करते हुये विमल बाबू ने कहा—"निकल जा यहाँ से। मुझे तुझ जैसे नमकहराम नौकर की जरूरत नहीं।"

भीखू विमल बाबू के जिद्दी स्वभाव से परिचित था। उसने वहाँ रुकना उचित न समझा और सिर झुकाये दबे पाँव वहाँ से चल दिया। फाटक पार करने के उपरान्त उसने एक बार लौटकर बँगले की ओर देखा, हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चल दिया।

कुछ दिन पश्चात भीखू का लड़का रोगग्रस्त हुआ। डा० कान्त अपनी

अद्वितीय बाल-चिकित्सा तथा गरीबों के प्रति सहानुभूति के लिये प्रसिद्ध तो थे ही। भीखू अपने लड़कों को लेकर सीधे उन्हीं के पास पहुंचा। उन्होंने देखते ही उसे पहचान लिया और पूँछा—"कहो भीखू काका मजे में तो हो?"

"तुमहूं हँसी करत हवौ बेटवा।" भीखू ने व्यंग्यात्मक ढंग से कहा।

भीखू की बात सुनकर सभी मरीज आश्चर्य में पड़ गये। डा० कान्त भी भीखू की बात सुनकर मुस्करा दिये और पूँछा—"इसमें हँसी की कोई बात नहीं है भीखू काका। हमारे पूँछने का मतलब था कोई कष्ट तो नहीं है।"

"बेटवा गरीब के भाग में सुख कहाँ बदा है?"

"क्यों, तुम्हें तो मैंने कभी कष्ट में नहीं देखा। तुम तो हमेशा मजे में भजन गाया करते थे?"

"जब पेट मा दुइ जून रोटी जातं हवै तब भजन-वजन सबै सोहातं नाहीं तो सबै भुलाय जात है।"

"ऐसी क्या बात हो गई काका?" डा० कान्त की उत्सुकता बढ़ गई।

"सब दिन एक-सा नाहीं रहते बेटवा। जब से बाबू जी निकाल दिहिन तब कोई नाहीं पूछत।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात है कि बाबू जी वे तुम्हें निकाल दिया।"

"बेटवा हम हीं का नाहीं सबै का एक-एक करिकै जवाब दई दिहिन।"

"और तुम्हारी इस उम्र का भी ख्याल नहीं किया?"

"अगर उइ यहै खयाल कीन्ह होइत तो काहे का निकाले होत।" कहते हुये भीखू अपने अश्रुपूरित नेत्रों को पोंछने लगा।

डा० कान्त से भीखू की दशा न देखी गई। उनका हृदय करुणार्द्र हो उठा और तुरन्त भीखू से कहा—"अच्छा, तो तुम मेरे यहाँ चले आओ।"

तबसे भीखू डा० कान्त के यहाँ ही रहने लगा।

शीला ने भीखू को अपने सामने फर्स पर बैठने का संकेत करते हुये

पूँछा—"भीखू तुम तो बाबू जी के यहाँ काफी दिन नौकर रहे हो ?"

"विमल बाबू के हुआँ ?"

"हाँ।"

"हाँ, बिटिया ! यहै एक बीस बरस रहेन उनके हियाँ।"

"तब तो तुम उनको खूब अच्छी तरह पहचानते होगे जो कल रात को एक लड़के को लेकर आई थीं ?"

"काहे नाहीं। उइतौ मालकिन रहैं। बाबू जी की बबुआइन।"

"अच्छी तरह देखा था न उन्हें ?"

"यहू माँ कउनौ धौखा होइ सकत हवै। हमका सबै नौकर उनका पहिचानत हवैं।"

"तो तुम्हारे कहने का मतलब है कि वह अपने डाक्टर साहब की माँ थीं ?"

"हाँ बिटिया।"

"और गोद का लड़का कौन था ?"

"बबुआ इनका बेटवा रहै और कौन रहै।"

"यानी डा० साहब का छोटा भाई।"

"तुम तो बिटिया अइसे पूँछि रही हवौ जइसे डा० साहब तुम्हें कुछ बतावै नहिन।"

शीला ने भीखू की बात का कोई उत्तर न दिया और कहा—"अच्छा, अब तुम जाओ।"

भीखू उठ कर चला आया।

शीला बैठे काफी देर तक कल की घटना पर विचार करती रहीं। जितना ही वह विचार करतीं उतना ही हर दृष्टि से अपने को अपराधिनी पातीं। एक अज्ञात भय से वह कांप उठीं। दिल घबड़ा उठा। घबड़ाहट में उन्हें फोन उठाने के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता न दिखाई दिया, परन्तु फोन पर उत्तर मिला कि डा० साहब किसी मरीज को देखने गये हैं।

शीला ने चोंगा रख दिया और लेट रहीं जाकर। विचार धारा टूटने का नाम ही न लेती थी। उनकी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। जब किसी की आत्मा अपने को अपराधी स्वीकार कर लेती है तब उसे तब तक चैन नहीं मिलती है जब तक वह अपने अपराध को व्यक्त न कर ले। शीला पति के समक्ष अपने अपराध को स्वीकार करना चाहतीं थीं। रह-रह कर कई बार फोन किया, परन्तु एक भी बार पति की अनुपस्थिति के कारण बात न हो सकी। काफी देर बाद फोन की घंटी बज उठी। अनिच्छा पूर्वक फोन उठा कर कान में लगाया तो पति का स्वर सुनाई दिया। शीला ने उत्तर दिया—"हाँ, मैं शीला बोल रही हूं।"

"क्यों, क्या बात है ?" फोन पर कान्त का स्वर सुनाई दिया।

"आप जितनी जल्दी आ सकें आ जाइये।"

"क्यों ?"

"मेरी तबियत ठीक नहीं है।"

"क्या हो गया है ?"

"वैसे तो कुछ नहीं हुआ है, परन्तु तबियत बड़ी घबड़ा रही है।"

"मैं इस समय सैकड़ों मरीजों से घिरा हुआ हूं। मुझे एक मिनट की भी फुरसत नहीं है। मैं नौकर के हाथ दवा भेजे दे रहा हूं, उसे खा लेना।"

"लेकिन आप कब तक आइयेगा ?"

"जब मरीजों से छुट्टी मिल जायेगी।" इस स्वर के साथ आवाज आनी बन्द हो गई। शीला ने आगे बात करने का प्रयास किया, परन्तु व्यर्थ, क्योंकि कान्त ने फ़ोन छोड़ दिया था।

शीला नैराश्य पूर्ण मुद्रा लिये ज्योंही पीछे घूमी त्योंही सिनहा को खड़े पाया। सिनहा ने आगे बढ़ते हुये पूँछा—"क्या तबियत खराब है आपकी ?"

"आपको कैसे मालूम कि मेरी तबियत खराब है ?"

"लेकिन भाई साहब तो सभी वृद्ध स्त्रियों को 'माँ' शब्द द्वारा सम्बोधित करते हैं।"

"मैंने भीखू से भी पूँछ लिया है। वह उनके यहाँ का सबसे पुराना नौकर है।"

सिनहा किसी विचार में खो गये। कुछ क्षणों के पश्चात् बोले—"तो क्या इसी घटना से आप परेशान हैं।"

"इसे आप मामूली घटना समझते हैं?" कह कर शीला ने सम्पूर्ण घटना सिनहा को सुना दी। सुनने के पश्चात् सिनहा ने कहा—"परन्तु मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि इस दुर्घटना का कारण आप अपने को क्यों समझ बैठी हैं?"

"सत्य की उपेक्षा कैसे की जा सकती है? यदि मैं बीच में आकर बाधा न बनी होती तो सम्भवतः मुन्ने की मृत्यु न होती।"

"देखिये भाभी जी! मरने वाले को कोई बचा नहीं सकता और जी ने वाले को कोई मार नहीं सकता। और फिर आप यह क्यों नहीं सोचतीं कि इस घटना के लिये जितनी आप उत्तर दायी हैं उससे अधिक भाई साहब और उनके माता पिता हैं।"

"यह आप क्या कह रहे हैं?" शीला ने साश्चर्य पूँछा।

"मैं ठीक ही कह रहा हूँ। आपने सम्भवतः विचार ही नहीं कि किया इस घटना का सम्पूर्ण उत्तर दायित्व आप पर नहीं बल्कि उन लोगों पर है।"

"आपने कदाचित भली-भाँति विचार नहीं किया है, इसीलिये ऐसा कह रहे हैं आप।"

"मैंने भली भाँति समझ लिया है तभी तो कह रहा हूँ कि आप इस घटना के लिये तनिक भी उत्तरदायी नहीं हैं।"

"कैसे?"

"जिस पुत्र को विमल बाबू और उनकी पत्नी ने मरा हुआ समझ लिया था, उसे पुनः-जीवन प्रदान करने वाले के प्रति क्या ऐसा ही व्यवहार

करना चाहिये जैसा उन्होंने आपके साथ किया ?"

शीला ने भी अनेक बार इस प्रश्न पर विचार किया था, परन्तु यह सोच कर कि सामाजिक बन्धनों तथा परम्पराओं ने उन्हें ऐसा करने को बाध्य किया, विचार करना ही छोड़ दिया, परन्तु सिनहा के प्रश्न ने शीला के सुसुप्त विचारों को पुनः जाग्रत कर दिया। शीला ने अपनी धारणा व्यक्त करते हुये कहा—"ऐसा तो सामाजिक बन्धनों तथा परम्पराओं ने करने को बाध्य कर दिया था।"

"मैं सामाजिक बन्धनों और परम्पराओं के महत्व को अस्वीकार नहीं करता, परन्तु जीवन की कीमत पर सामाजिक परम्पराओं को अक्षुण्य रखने की बात मेरी समझ में नहीं आती और फिर क्या इस कार्य से उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ गई ? क्या भाई साहब को समाज ने बहिष्कृत कर दिया ?"

"ऐसा तो कुछ भी नहीं हुआ ?"

"तो फिर आप ही बताइये कि उनका उठाया हुआ कदम कहाँ तक उचित कहा जा सकता है ?"

"आपकी बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने हम लोगों के प्रति अन्याय किया।"

"यही मैं कहता हूं। यदि आवेश में आकर ऐसा कदम उठा भी गये थे वह तो क्या कुछ समय पश्चात आकर अपनी गलती स्वीकार नहीं कर सकते थे ?"

"वह बड़े हैं। ऐसा कैसे कर सकते हैं ?"

"अन्याय करने वाला कभी बड़ा नहीं होता है, उम्र उसकी चाहे कितनी हो क्यों न हो।"

"बाबू जी बड़े ही जिद्दी स्वभाव के हैं। एक बार जो निर्णय कर लेते हैं उससे डिगना उनका मुश्किल होता है।"

"माता जी तो आ सकती थीं।"

"पति के निर्णय के विरुद्ध वह आचरण कैसे कर सकतीं थीं ?"

"तो फिर यदि न पहचान सकने के कारण उनका आपके द्वारा कुछ अपमान हो ही गया तो इसमें आपका क्या दोष, जबकि आप लोगों को पहचान कर भी उन लोगों ने खड़े-खड़े निकाल दिया था।"

शीला सिनहा की बात के औचित्य पर विचार करने लगीं। उन्हें सिनहा की बातों में कुछ तथ्य दिखाई देने लगा। उनका बहुत कुछ भय तो दूर हो चुका था। चेहरे पर प्रसन्नता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। सिनहा ने शीला को प्रभावित देख कर आगे कहना प्रारम्भ किया—

"उनके अतिरिक्त भाई साहब भी इस घटना के लिये कम उत्तरदायी नहीं हैं।"

"वह कैसे?" शीला की उत्सुकता बढ़ गई।

"दिन-रात चौबीसो घंटे तो आप इस चहारदीवारी में बन्द रहती हैं। न कोई सुनने वाला है न कोई बोलने वाला। दिन-रात पड़े-पड़े क्या आपका मन नहीं ऊबता है? क्या आपका मन नहीं चाहता कि आपको भाई साहब घुमाने कहीं ले जायँ और बैठकर दो मिनट दुख-सुख की बातें करें?"

"चाहता क्यों नहीं?"

"तो क्या उन्होंने आपकी इस आवश्यकता पर कभी ध्यान दिया है?"

"इसी का तो रोना है।" शीला की उदासीनता व्यक्त हो गई।

"तब फिर यदि आप अपने कुछ मित्रों के साथ कुछ समय व्यतीत कर लेती हैं तो क्या बुरा करती हैं? और फिर यदि उस समय भी कोई मरीज आकर आपके आनन्द के क्षणों में विघ्न उपस्थित करे तो आपका क्रोधित होना क्या अस्वाभाविक है?"

"शीला चुपचाप सुन रही थीं। सिनहा एक-एक बात तौल कर कह रहे थे। श्रोता जब मनोनुकूल मिल जाता है तो फिर बोलने वाला दम नहीं लेता और निरन्तर बोलता ही चला जाता है। सिनहा भी उसी प्रवाह में बोल पड़े—"आप कह सकती हैं कि आपको क्रोध नहीं करना

चाहिये। ठीक है, क्रोध नहीं करना चाहिये–यह मानवीय दुर्बलता है, परन्तु यदि भाई साहब ने अपने कर्तव्य का पालन किया होता तो क्रोध करने का अवसर ही क्यों आने पाता ?"

"कौन सा कर्तव्य पालन ?"

"आपकी उदासीनता दूर करने का।"

सिनहा की बात के प्रभाव को शीला ने व्यक्त किया—"आपकी बातों से मन को काफी शान्ति मिल गई वरना मैं तो इस कदर घबड़ा रही थी कि मेरा दम घुटा जा रहा था।"

"वह तो मैंने आते ही आपके चेहरे को देख कर समझ लिया था।"

"क्या बताऊँ सिनहा साहब, कल में मैं इतनी परेशान हूं कि कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या करूँ।"

"किसी असाधारण घटना के घटित होने पर विचार शक्ति क्षीण हो ही जाती है।"

"ठीक ही कहा गया है कि दुःख सुनाने से कम होता है।"

"ओर कहीं यदि दुःखी के प्रति सहानुभूति रखने वाला मिल गया........।"

"आप जैसा।" शीला मुस्करा दी।

"तो दुःख समाप्त हुये बिना नहीं रहता।" कह कर सिनहा भी हँस दिये।

"आप ठीक ही कहते हैं।"

',इस पर भी यदि कहीं खुले में घूमने को मिल जाय।"

"तो क्या हो ?"

"गई खुशी पुनः वापस आ जाय।"

"तो फिर चलिये थोड़ी देर के लिये कहीं घूम आया जाय।"

सिनहा को मुँह माँगी मुराद प्राप्त हो गई। मन की प्रसन्नता छिपाते हुये उन्होंने कहा "लेकिन अब तो भाई साहब के आने का समय हो रहा है।" कहकर घड़ी की ओर देखने लगे।

,'उन्हें रात के पहले मरीजों से फुरसत नहीं मिलने की।" कहकर शीला उठ खड़ी हुईं और अन्दर चली गईं। उनके तैयार होकर कार में बैठते ही कार चल दी।

१८

रोगियों की अधिकता के कारण डा० कान्त दोपहर को बँगले न पहुंच सके। रात को भी आने में दस बज गये। कार से उतर कर भीतर पहुंचे। चारो ओर दृष्टि डाली, परन्तु कहीं भी पत्नी न दिखाई दीं। पैरों ने उन्हें ले जाकर कई कमरों में देखने को बाध्य किया, परन्तु शीला का कहीं पता न था। डा० साहब ने चम्पा को पुकारा। चम्पा तत्क्षण आ उपस्थित हुई। डा० साहब ने चम्पा से पूँछा—"बीबीं जी कहाँ हैं?"

"कहीं गई हैं।" चम्पा ने सिर झुकाये ही उत्तर दिया।

"कब की गईं हैं?"

"दोपहर को गईं थीं।"

"अकेले गई हैं या और कोई साथ में था?"

"सिनहा साहब के साथ गई हैं।"

डा० साहब कुछ क्षणों तक खड़े कुछ सोचते रहें। सहसा उनके मुँह से निकल पड़ा—"अच्छा जाओ।"

चम्पा मुड़कर एक कदम ही बढ़ पाई होगी कि घूम कर कहा—"खाना तैयार है।"

"मैं नहीं खाऊँगा।" शयन कक्ष की ओर बढ़ते हुये डा० कान्त ने कहा। कक्ष के अन्दर जाते ही वह पलंग पर लेट गये। पड़े-पड़े कुछ देर तक

किन्हीं विचारों में उलझें रहे, परन्तु नींद ने विचारों पर भी विजय प्राप्त कर ली।

प्रातः जब आँख खुली तो शीला का बिस्तर खाली देखा। सहसा किसी आशंका से उनका मन भर गया। तत्क्षण उन्होंने बिस्तर छोड़ दिया और अतिथि कक्ष में आकर देखा तो शीला को कोच पर बेसुध पड़ा पाया। पत्नी के चेहरे की ओर कुछ देर तक वह खड़े-खड़े अपलक दृष्टि से देखते रहे, परन्तु जगाया नहीं और नित्य कार्यों से निवृत होने चले गये। थोड़ी देर बाद वह पुनः उसी कक्ष में आये और शीला को उसी रूप में पड़ा देख कर बिना किसी से कुछ कहे चले गये।

काफी देर बाद शीला की आँख खुली तो अपने को कोच पर पड़ा देख कर आश्चर्य हुआ। तत्क्षण उठ कर इधर-उधर देखा, परंतु कोई दिखाई न दिया। घड़ी पर दृष्टि डाली तो दस बज रहे थे। वहीं खड़े–खड़े चम्पा को पुकारा। चम्पा तत्काल आ उपस्थित हुई। शीला ने चम्पा को समक्ष आया देख कर पूँछा—"साहब कल को कितने बजे आये थे ?"

"रात को दस बजे।"

"मुझे पूँछ रहे थे ?"

"हाँ।"

"तूने क्या कहा था ?"

"मैंने बता दिया था कि आप सिनहा बाबू के साथ कहीं गई हैं।"

"तुझसे यह सब कहने को किसने कहा था ?"

"तो फिर क्या कहती ? आप कुछ कह भी तो नहीं गई थीं।"

चम्पा की बात सुनकर शीला को कोई उत्तर न सूझा। कुछ देर तक चुप रहने के बाद पूँछा—"आज कुछ कह गये हैं ?"

"नहीं तो।"

"अच्छा, जाओ।" कुछ रुककर शीला ने कहा–"देखो, अगर सिनहा बाबू आयें तो उन्हें बैठाना और मुझे बता देना आकर।" अन्दर की ओर कदम बढ़ाते हुये शीला ने कहा।

शीला का अन्दर जाना था कि सिनहा आ धमके। उसके पूर्व कि चम्पा उनसे बैठने को कहे वह पूँछ बैठे—"भाभी जी कहा हैं ?"

"अन्दर हैं। अभी आ रही हैं। आपको बैठने को कह गई हैं।"

"तुम जरा बता तो दो जाकर कि मैं आ गया हूं।" कोच पर बैठते हुये सिनहा ने कहा।

"उन्हें बताने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि वह उन्हें विश्वास है कि आप आयेंगे अवश्य। काफी देर तक आपका इन्तजार करती रहीं वह। अभी-अभी तो गई हैं अन्दर।"

चम्पा के मुँह से शीला द्वारा अपनी प्रतीक्षा करने की बात सुनकर सिनहा को कुछ विशेष प्रसन्नता हुई, परन्तु उसे व्यक्त न होने दिया और विजय के रुख को बदलते हुये पूँछा—"भाई साहब तो अस्पताल गये होंगे ?"

"हाँ, आजकल उन्हें छुट्टी कहाँ। कभी आते हैं कभी आते ही नहीं। दिन-रात मरीजों के चक्कर में ही फँसे रहते हैं।"

सिनहा का रहा-सहा भय भी जाता रहा। उमंग में आकर बोले—"ठीक भी है। काम से किसी को मुँह नहीं चुराना चाहिये। जो भी काम आये उसे किये बिना नहीं छोड़ना चाहिये। जीवन में कुछ ही दिन तो ऐसे आते हैं जो मनुष्य को उन्नति के चरम शिखर पर पहुंचा देते हैं बसर्ते उनका महत्व समझा जाय और उचित सदुपयोग किया जाय। उन क्षणों की उपेक्षा करने वाले जीवन पर हाथ मलते रह जाते हैं। भाई साहब के आजकल वे ही दिन हैं। जितना परिश्रम करेंगे उतनी ही उन्नति होगी।" कुछ रुककर पुनः सिनहा बोले—"और वह हैं भी एक ही लगन के आदमी, परिश्रम करते तो जैसे थकते ही नहीं। दिन-रात एक किये दे रहे हैं अपनी उन्नति के लिये।"

सिनहा कह ही रहे थे कि शीला आ गईं और शिष्टाचार प्रदर्शित करती हुई बोलीं—"तो आप आ गये!"

"वायदा जो किया था।"

"लेकिन आप थोड़ी देर से आये हैं।"

"जी हाँ भाभी जी ! मैं आ तो ठीक ही समय से रहा था, परन्तु रास्ते में एक मित्र मिल गये। बस ! जितनी देर उनसे बात हुई उतनी ही देर मुझे हो गई।"

"कोई बात नहीं, मैंने तो यों हीं हँसी में कह दिया।"

"मैं कोई बुरा थोड़े ही मानता हूं आपकी बात का।" शीला पर विहँगम दृष्टि डालते हुये सिनहा ने कहा—"कहिये, स्वस्थ तो हैं आप ?"

"जी हाँ, लेकिन रात भर होश नहीं रहा।"

"उसी की तो वह दवा है, यदि आपको होश रहता तो आपकी बेचैनी फिर कैसे दूर होती ?"

"मगर आपकी यह दवा कहीं आपके भाई साहब को माळूम हो गई तो.........।"

"तो क्या होगा ?"

"बुरा मानेंगे।"

"सभ्य समाज में इसे बुरा नहीं समझा जाता। वह देश-विदेश घूमें हैं। हर सभ्य समाज में इसका प्रयोग होता है और भाई साहब को तो सैकड़ों बार इसका प्रयोग करना पड़ा होगा।"

"लेकिन मैंने तो उन्हें कभी भी इसका प्रयोग करते हुये नहीं पाया।"

"यह तो मित्रों के साथ बैठकर प्रयोग की जाने वाली वस्तु है। भाई साहब को इतनी फुरसत ही कहाँ कि वह इसका प्रयोग कर सकें।"

"जो इसका प्रयोग नहीं करता उसे अवश्य बुरा लगेगा।"

"आप भी कैसी बातें करतीं हैं भाभी जी ! क्या वह हमेशा ऐसे ही व्यस्त रहे हैं। जब अवसर मिलता होगा तब अवश्य ही वह इसका प्रयोग करते होंगे।"

"हो सकता है कि आप ठीक कह रहे हों, परन्तु मुझे भीतर से भय लग रहा है।"

"आप तो तनिक-तनिक बात में भय खाने लगती हैं। अगर आपका यही

स्वभाव रहा तो कैसे काम चलेगा। आप जानतीं हैं कि कौन सा काम करने जा रही हैं?

"जानती हूं?

"तो क्या यह नहीं जानतीं कि उसके लिए कितने साहस, धैर्य तथा त्याग की आवश्यकता है?"

"वह भी जानती हूं और मुझे यह भी विश्वास है कि भाई साहब किसी अच्छे कार्य के लिये मुझे रोकेंगे भी नहीं।"

"तो इसका तात्पर्य है कि शराब बुरी वस्तु है—यह धारणा आपके मस्तिष्क में बन गई है।"

"बापू ने भी एक बार इसे बुरा कहा था।"

"परन्तु मैं किसी वस्तु को बुरा नहीं मानता। कोई भी वस्तु बुरी तब होती है जबकि उसका अनुचित प्रयोग किया जाय।"

"अनुचित प्रयोग से आपका तात्पर्य?"

"उसकी मात्रा से है। यदि कोई वस्तु आवश्यकता से अधिक मात्रा में प्रयोग की जायेगी तो उसका प्रभाव अहितकर हुये बिना न रहेगा।"

"तो फिर कल आपने मुझे काफी मात्रा में क्यों पिलाई थी?"

"कल आपके लिये उतनी ही मात्रा उचित थी। यदि आपने थोड़ी पी होती तो आज जिस तरह बातें कर रही हैं वैसे न कर पातीं।"

"खैर! इसी से संतोष है कि उसका कोई दुष्परिणाम नहीं हुआ।"

"दुष्परिणाम कभी नहीं होगा! आप तो अकारण सन्देह करती हैं। वैसे चाहे कोई भी किसी प्रकार का सन्देह न करे, परन्तु आपके संदेह को देखकर वह भी सन्देह करने लगेगा।"

"बस, केवल आपके भाई साहब की ओर से सतर्क रहना चाहती हूं।"

"उनकी आप चिंता न करिये। वह बहुत समझदार हैं। प्रत्येक वस्तु के औचित्य-अनौचित्य को वह भली-भाँति समझते हैं। और फिर उन्हें इतनी फुरसत ही कहाँ कि इन सब बातों पर ध्यान दें।"

"अगर उन्हें ध्यान देने की फुरसत नहीं है तो इसका तात्पर्य यह नहीं

कि मैं कोई गलत कदम उठा बैठूँ ।"

"तो क्या आप सोचती हैं कि मेरे रहते आप गलत कदम उठाने भी पायेंगी ? कभी नहीं, यदि भूल से कोई ऐसा कदम उठ भी जायेगा तो मैं जी-जान से आपका सहयोग देने को तैयार हूं ।"

"इसीलिये तो आप जो कहते हैं मैं बिना सोचे-समझे करने को तैयार हो जाती हूं ।"

"तो फिर भाभी जी आप मेरे ऊपर विश्वास रखिये कि आपका नाम भाई साहब से भी अधिक एक-एक बच्चे तक की जबान पर होगा। आपका नाम अखबारों में छपेगा । आपके भाषणों को लोग पढ़-पढ़कर आपके पास प्रशंसात्मक पत्र भेजेंगे । धीरे—धीरे आपकी प्रसिद्धि नगर और देश तक ही सीमित न रह कर विदेशों में भी पहुंचेगी । विदेशों से आपके पास निमन्त्रण आयेंगे । आप जहाज द्वारा विदेशों का भ्रमण करेंगी । स्थान—स्थान पर हजारों—लाखों नर—नारी आपके स्वागतार्थ आँखें बिछाये खड़े मिलेंगे । आप उनके अभिवादन का उत्तर (शीला की मुस्कान की ओर संकेत करके) ठीक इसी तरह मुस्कराकर देंगी ।"

"वाह सिनहा साहब ! आपने भी खूब इस कमरे में बैठे—बैठे विदेशों की सैर कराई ।" शीला ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुये कहा ।

आवश्यकता से अधिक गम्भीरता धारण करते हुये सिनहा ने कहा—"आज आप मेरी इन बातों पर हँस सकती हैं, परन्तु जब ये बातें सत्य सिद्ध होंगी तब आपको मुझसे बात करने तक की फुरसत नहीं मिलेगी। जब मैं कभी आपके पास आया करूँगा तब आप कहेंगी कि बड़ी देर हो रही है अमुक सभा में भाषण देने जाना है और अमुक साहब से मिलना है ।"

"लेकिन जहाँ चलना है वहाँ का ध्यान ही नहीं है ।"

"ओह ! मैं तो भूल ही गया ।"

"हवाई किले बनाने में ऐसा ही होता है ।"

"अब आप बैठी क्यों हैं, जल्दी तैयार होइये न ?"

"आप तो उठिये।"

सिनहा उठकर खड़े हो गये।

शीला ने भी साथ ही उठ कर एक कदम आगे बढ़ते हुये कहा—"आइये।"

"ओह! तो आप तैयार ही बैठीं थीं।" कहकर सिनहा मुस्करा दिये और शीला के साथ अतिथि कक्ष के बाहर हो गये।

१९

डा० कान्त अस्पताल में मन लगाकर मरीजों को नहीं देख सके। कई दिनों से निरन्तर कठिन परिश्रम के कारण शरीर टूट सा रहा था। आलस्य छाया हुआ था। मुन्ने की मृत्यु ने उनकी मानसिक स्थिति को भी असाधारण बना दिया था और फिर इधर दो तीन दिन से शीला के साथ कुछ बात भी न कर पाये थे अतएव किसी तरह मरीजों से निपट कर निर्धारित समय के पूर्व ही लौट आये। ड्राइंग रूम में प्रवेश करते ही उन्होंने शीला को आवाज दी। शीला के स्थान पर चम्पा ने आकर कहा—"वह तो सिनहा साहब के साथ कहीं गई हैं।" चम्पा का उत्तर सुनकर डा० कान्त सन्न रह गये। एक क्षण के लिये उनकी विचार शक्ति लुप्त हो गई। परिवर्तित परिस्थिति ने उन्हें विचार करने के लिये बाध्य कर दिया। वह सोचने लगे 'जो शीला सदैव मेरी प्रतीक्षा करती हुई मिलती थी, मुस्कराकर मेरा स्वागत करती थी तथा मुझ से बिना कुछ देर बात-चीत किये जिसे सन्तोष ही न होता था उसी शीला में इतना बड़ा परिवर्तन? क्या हो गया है उसे? कहीं.........!'।

विचार शक्ति को एक धक्का सा लगा। वह सचेष्ट हो उठे। चम्पा अब भी सिर नीचा किये हुये खड़ी थी। डा० कान्त ने उससे जाने को कहा। वह चली गई। वह स्वय भी अधिक देर खड़े न रह सके और जाकर लेट रहे। लेटते ही उनकी विचारधारा पुनः प्रवाहित होने लगी, परन्तु इस बार शीला की मुद्रा नेत्रों के समक्ष साकार हो उठी। शीला का हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाना, कभी गम्भीर हो जाना तो कभी रो पड़ना इत्यादि मुद्रायें और एक-एक क्रिया कलाप नेत्रों ने समक्ष चित्र की भाँति आता और विलीन हो जाता। शनैः शनैः उस रात्रि की घटना ने मानसिक क्षितिज को आवृत्त कर लिया। माँ की विक्षिप्तावस्था की दशा, मुन्ने का जर्द चेहरा, शीला का उग्र स्वरूप तथा पिता की विरक्ति पूर्ण मुद्रा सब साकार हो उठे। काफी देर तक उस घटना ने उन्हें बेचैन बनाये रखा। लाख चेष्टा करने पर भी वह अपने मस्तिष्क को आराम न दे सके। सिर भारी होता गया। शरीर की गर्मी बढ़ती हुई सी प्रतीत होने लगी। शारीरिक पीड़ा तो उन्हें बेचैन किये थी, परन्तु उन्होंने किसी से भी कुछ न कहा। चुपचाप लेटे रहे। ज्योंही चार बजा त्योंही उन्होंने उठ कर कपड़े बदले और इच्छा न होते हुये भी अस्पताल चले गये।

डा० कान्त की हालत खराब होती गई। उनका शैथिल्य बढ़ गया, परन्तु उन्होंने किसी से वहाँ भी कुछ न कहा और चुपचाप मरीजों को देखते रहे। मरीजों से छुटकारा पाते ही वह घर लौट पड़े। इस समय भी उन्हें शीला के दर्शन न हुये। वह सीधे अपने शयन कक्ष में गये और लेट रहे।

काफी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब डा० कान्त ने किसी को न पुकारा तो चम्पा से न रहा गया। उसने साहस एकत्र किया और अन्दर जाकर खड़ी हो गई। डा० कान्त ने चम्पा के प्रवेश से अपरिचित न रह सके। चम्पा को नीचे से ऊपर तक देखने के उपरान्त उन्होंने प्रश्न किया—"चम्पा, क्या बात है ?"

चम्पा ने सिर नीचा किये ही उत्तर दिया—"क्या खाना यहीं ले आऊँ ?"

"नहीं, मुझे भूख नहीं है।"

"आपने परसों से खाना नहीं खाया है।"

"मेरी तबियत ठीक न ीं है।"

"क्या हो गया है ?" यकायक चम्पा का सिर ऊपर को उठ गया और दृष्टि डा० कान्त के शरीर पर जा पड़ी।

"कुछ नहीं, यों ही जरा सिर में दर्द हो रहा है।"

"लाइये मैं दबा दूँ।"

"नहीं, दबाने की कोई आवश्यकता नहीं है। अब तुम जाओ, यदि बीबी जी आयें तो उन्हें भेज देना।" कह कर उन्होंने करवट बदल ली।

चम्पा के आगमन की प्रतीक्षा सभी नौकर कर रहे थे। साहब की तबियत ठीक नहीं है—यह सुन कर सभी नौकर आश्चर्य में डूब गये। भीखू ही सबों में वयोवृद्ध था उसने चिन्ता व्यक्त करते हुये कहा—"बाबू जी कै तबियत नाहिन ठीक हवै और बीबी का कुछौ पता नाहिन।"

"उन्हें का माळूम कि साहब की तबियत ठीक नहीं है।"

"उन्हें तो कुछौ नाहीं माळूम। तीन दिना तें उइ हियाँ कहूँ दिखाइउ परति हवैं। जब उइ अउती हैं तब बाबू जी नाहीं रहत और जब बाबू जी आवत हैं तब उनका पता नाहीं रहत। अब तौ भगवानै मालिक हवैं।" कह कर भीखू चला गया।

सभी नौकर इधर-उधर हट गये, परन्तु चम्पा आकर उसी कक्ष के बाहर बैठ गई जिसमें डा० साहब लेटे हुये थे।

१५

शीला सिनहा के साथ सीधे बँगले पर पहुँची। निर्धारित समय के कुछ देर पश्चात् पहुँचने के कारण आमन्त्रित लोग एकत्र हो चुके थे। शीला को देखते ही सभी लोग उठ कर खड़े हो गये। अपना अभूत पूर्व स्वागत देख कर शीला फूली न समाईं और हाँथ जोड़ कर मुस्कराते हुये स्थान ग्रहण किया। सिनहा ने सम्पूर्ण व्यवस्था पहले से ही कर रखी थी। एक-एक करके सभी पर दृष्टि डालते हुये सिनहा ने कहा—"मिस-कला नहीं दिखाई दे रही हैं ?"

"क्या कला जी अभी तक नहीं आईं ?" शीला ने भी प्रश्न किया।

मेहता से न रहा गया, उन्होंने कहा—"यह युग स्त्रियों का है। जिसका युग होता है वह जरा देर से ही आता है।"

शीला समझ गईं कि यह व्यंग उन्हीं पर किया गया है। अपनी शालीनता व्यक्त करते हुये उन्होंने कहा—"मुझे तो सिनहा साहब के कारण देर हो गई वरना मैं तो ठीक समय पर आ जाती।"

"अच्छा तो भाई जान शायद किसी और से मिलने चले होंगे।" मेहता ने बड़े ही नाटकीय ढंग से कहा।

"नहीं भाई, चला तो कहीं नहीं गया था, बात दर-असल यह हुई कि बात ही ऐसी छिड़ गई कि समय का ध्यान ही न रहा।" सिनहा ने अपनी सफाई पेश की।

"समय का ध्यान नहीं रहा था तो कम से कम इसका तो ध्यान रखा होता कि हम लोग यहाँ बैठे आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"अरे भाई जान ! इसी का तो ध्यान नहीं रहा।"

"आप अभी तो कह रहे थे कि समय का ध्यान नहीं रहा और अब......।"

"अरे भाई ऐसा ही कहा जाता है।"

"तब तो मुझे आपकी हर बात का ध्यान रखना पड़ेगा। आप कहेंगे

कुछ और मतलब होगा।"

"सिनहा साहब की बात का मतलब जो कुछ होगा वह बना रहेगा लेकिन आप और कुछ समझने की चेष्टा न करियेगा।" शीला के इस वाक्य पर सब लोग हँस पड़े।

इस समय तक सामने की टेबुलें खाद्य सामग्रियों से सज चुकी थीं। इसी बीच कला ने प्रवेश किया, परन्तु सबको बैठा हुआ देख कर वह एक क्षण के लिये ठिठक गईं। सिनहा ने कला की ओर दृष्टि करते हुये कहा—

"आइये मिस कला आपकी ही प्रतीक्षा हो रही थी।"

कला फिर भी वहीं खड़ी रहीं।

"आइये, आइये, आप वहाँ क्यों खड़ी हैं?" सिनहा ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"अरे भाई जान! आयें कैसे? आपने उनके स्थान पर अधिकार जो कर रखा है।"

"ओह! मैं तो भूल ही गया था। आइये, लीजिये आपके लिये मैंने स्थान सुरक्षित कर रखा था।" सिनहा ने उठते हुये कहा।

कला चञ्चला की भाँति आगे बढ़ीं और शीला के बगल में जा बैठीं।

"स्थान सुरक्षित तो कर रखा था, परन्तु छोड़ने का मन नहीं हो रहा था।" मेहता ने कहा।

"भाभी जी के साथ फिर कैसे बैठ पाते?" कला की मुस्कान खिल उठी।

"आपकी तरह।" सिनहा बोल पड़े।

"जी नहीं, आपकी तरह।" मेहता ने प्रतिवाद किया।

"क्या मतलब?"

"उनका तो अधिकार ही है भाभी जी के बगल में बैठने का।"

"ओह! मैं तो भूल ही गया था। सहायक संचालिका के नाते।"

"अरे साहब! आप समय भूल जाते हैं, यह भूल जाते हैं कि कोई आपकी प्रतीक्षा कर रहा है, किसी के आने पर उसका स्थान रिक्त

करना भूल जाते हैं और यह भी भूल जाते हैं कि मिस कला भाभी जी की सहायक के रूप में हैं, और अब मुझे तो डर इस बात का लग रहा है कि कहीं आप अपने को न भूल जायँ।" मेहता की इस बात पर सभी लोग हँस पड़े। कक्ष हास्य से गूँज उठा।

"और मेहता साहब की याददाश्त का भी जवाब नहीं।" शीला की इस बात से हास्य को और भी शक्ति प्राप्त हो गई।

कक्ष में प्रध्वनित हास्य की लहर शनैः शनैः दूर होती गई।

सिनहा ने आश्वस्त होकर कहा—"अब आज के कार्यक्रम को भी तो चलने दीजिये।"

सब लोग मौन हो गये।

सिनहा ने खड़े होकर कहा—"हम लोगों को एक दूसरे के परिचय की सम्भवतः आवश्यकता नहीं है। यद्यपि आप लोग इस क्लब के उद्देश्यों से परिचय प्राप्त कर चुके हैं फिर भी संघ के उद्देश्य पर कुछ प्रकाश डालना अनुचित न होगा।" शीला की ओर संकेत करके सिनहा ने कहना प्रारम्भ किया—"इस संघ का उद्देश्य है महिला समाज की कुरीतियों का उन्मूलन करना। हमारे स्त्री समाज में ऐसी अनेक बुराइयाँ प्रचलित हैं जो महिला-प्रगति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधायें हैं। इनको समाप्त किये बिना नारी जगत कभी भी उन्नतावस्था में नहीं पहुंच सकता। भाभी जी ने इस ओर सर्व प्रथम अपना ध्यान आकर्षित किया है। ध्यान ही आकर्षित नहीं किया है, बल्कि काफी विचार भी किया है। मैं चाहता हूं कि जब स्वयं विचारक हम लोगों के मध्य उपस्थित हैं तो फिर क्यों न आप लोग उन्हीं के मुँह से उन विचारों का आनन्द लाभ करें।" कह कर सिनहा अपने स्थान पर बैठ गये।

सिनहा के इस अप्रत्याशित आचरण ने शीला को संकट में डाल दिया। ऐसे अवसर की उन्होंने कल्पना ही न की थी। बिना किसी तैयारी के उनकी कुछ समझ में ही न आ रहा था कि वह क्या बोलें फिर भी अवसर की आवश्यता को ध्यान में रख कर वह खड़ी हो गईं। उनका हृदय

धड़क रहा था। वह धड़कन स्वर के साथ कम्पन बनकर व्यक्त हो गई–'सम्भवतः आप लोग सिनहा साहब के विनोदी स्वभाव से भली भाँति परिचित होंगे। किस समय किसे किस उपहास का पात्र बना दें—कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर भी आप लोगों के समक्ष अभी मुझे जो विचारक की संज्ञा प्रदान की गई है उसके अनौचित्य को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। प्रत्येक प्राणी कुछ न कुछ चिंतन करता है। इसी चिंतन ने उसे प्रगति के चरमोन्नत शिखर पर पहुंचा दिया है। मुझे इधर ऐसे अनेक ग्रन्थों के अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिनमें नारी जगत के बन्धनों, अत्याचारों, दासताओं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों का ऐसा सजीव वर्णन किया गया है कि मैं उन विचारों को अपने तक ही सीमित न रख सकी और सिनहा साहब के समक्ष व्यक्त कर दिये। और मैंने देखा कि उन विचारों से जितना मैं प्रभावित हुई थी उससे अधिक कहीं सिनहा साहब हुये। बस ! फिर क्या था ; सिनहा साहब ने उन विचारों का मूल्यांकन किया और उन्हें व्यवहारिकता प्रदान करने के लिये कटिबद्ध हो गये और आप लोग तो देख ही रहे हैं कि यह हम लोगों का छोटा-मोटा सम्मेलन इन्हीं के प्रयास का परिणाम है।" कह कर शीला बैठ गई।

सिनहा ने तत्काल खड़े होकर कहा—"आप लोगों ने इतने में ही समझ लिया होगा कि भाभी जी की शैली कितनी निराली तथा प्रभावपूर्ण है, परन्तु साथ ही साथ आप लोग इससे भी अपरिचित न रहे होंगे कि किसी बात को कितनी सफाई से टाल जाती हैं। नारी जाति सम्बन्धी विभिन्न विचारों से आप लोग परिचित नहीं हो सके। खैर ! आज हम भाभी जी को इसके लिये बाध्य नहीं करेंगे, क्योंकि आपकी तबियत कल से कुछ ठीक नहीं है। ऐसी परिस्थिति में हम नहीं चाहेंगे कि भाभी जी को और अधिक कष्ट दिया जाय और सम्भवतः आप लोग मेरे इस विचार से असहमत न होंगे।" कहकर सिनहा ने अपना स्थान ग्रहण कर लिया।

"यदि ऐसी बात थी तो आपको इतना भी कष्ट नहीं देना चाहिये था।" मेहता से चुप न रहा गया।

"अगर शीला बहिन जी बचना हैं तो सिनहा साहब किसी को बचाने में भी कम कुशल नहीं है।" कला ने विनोद पूर्ण स्वर में कहा।

"क्या आपको ऐसे अनेक अनुभवों का सुअवसर उपलब्ध हुआ है ?" शीला ने अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से कहा।

कला शीला के इस व्यंग्य से पानी-पानी हो गई। सभी लोगों का उन्मुक्त हास्य गूंज उठा।

मेहता ने आश्वस्त होते हुये कहा—"कला जी ! अभी आपका भाभी जी के साथ बहुत साधारण सा परिचय हैं। भाभी के प्रहार अचूक होते है। बिना घायल हुये कोई बच नहीं सकता।"

"सुन रही हैं कला जी मेहता साहब की बात। मेहता साहब भी एक ही आदमी हैं। घायल होने का अनुभव आपका कुछ कम नहीं है।"

"और घायल करके उसकी दवा करना भी आप खूब जानती हैं। कला जी ! आपका घाव तो भर गया होगा।"

"हाँ, निशान अभी बाकी है।" कला के साथ सभी हँस पड़े।

"अरे भाई ! आप लोगों ने तो खाना ही बन्द कर दिया। खाते भी जाइये और मनोविनोद भी करते जाइये।"

"कितना खिलाइयेगा ? इतनी देर से तो हम लोग खा रहे हैं। क्या अब भी कोई कसर बाकी है ?" शीला ने पूँछा।

इसके पूर्व कि सिनहा कुछ बोल सकें मेहता बोल उठे—"सिनहा साहब ! जरा बच के। घायल होने के लिये तैयार हो लीजियेगा।"

"लेकिन आप मेहता साहब की तरह तैयारी न कर पाइयेगा।" शीला ने अपना व्यंग्य बाण छोड़ दिया।

"मालूम देता है कि अब खैर नहीं।" मेहता ने कहा।

"अरे क्या हो गया !" सिनहा आश्चर्य के साथ उछल पड़े और मेहता साहब की नब्ज पकड़ कर कान के पास ले गये।

सिनहा के इस नाटकीय आचरण से लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। काफी देर तक कहकहे कक्ष में प्रध्वनित होते रहे।

२१

रात्रि के समय जब डा० कान्त लौटे तो उनकी तबियत ज्यादा खराब मालूम हो रही थी, क्योंकि वह क्षण भर भी खड़े न रह सके और सीधे जाकर लेट रहे। चम्पा शयन कक्ष के द्वार के पास कान लगाये काफी देर तक खड़ी रही; परन्तु कोई भी आज्ञा जब न प्राप्त हुई तो उसने धीरे से अन्दर प्रवेश किया। डा० कान्त की आँखें बन्द थीं। चेहरा लाल था। चम्पा काफी देर तक खड़ी उनकी ओर देखती रही, परन्तु बोलने का साहस न हुआ और बाहर निकल आई।

डा० कान्त के नेत्र बन्द थे, परन्तु वह सो न रहे थे। एक तो वैसे ही सिर दर्द के कारण फटा जा रहा था और फिर अनेकानेक विचार भी मस्तिष्क को कम न झकझोर रहे थे। काफी देर तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब पत्नी के आगमन के चिन्ह दृष्टिगोचर न हुये तो उन्होंने चम्पा को आवाज दी। चम्पा तो जैसे इसी की प्रतीक्षा ही कर रही थी। उसने तत्क्षण अन्दर प्रवेश किया। डा० कान्त ने ज्वर पीड़ित नेत्रों से चम्पा की ओर देखते हुये प्रश्न किया—"बीबी जी आई ?"

"जी नहीं।" चम्पा का सरल और सीधा उत्तर था।

डा० कान्त ने काफी देर तक सोचने के उपरान्त कहा—उन्हें आते ही मेरे पास भेज देना।"

"जी।"

चम्पा को और कुछ पूँछने का साहस नहीं हुआ।

डा० कान्त ने भी आगे कुछ न कहा और करवट ले ली।

प्रातः जब नींद खुली तो डा० कान्त ने अपने को कुछ स्वस्थ अनुभव किया, परन्तु शरीर अब भी टूट रहा था। उन्होंने लेटे ही लेटे चम्पा को आवाज दी। चम्पा तत्काल सेवा में आ उपस्थित हुई। डा० कान्त ने पूछा—"बीबी जी कहाँ सो रही हैं?"

"कहीं नहीं, वह रात को लौटी ही कहाँ हैं?"

"ऐसा कैसे हो सकता है? जाओ देखो जाकर ड्राइंग रूम में पड़ी होंगी।"

"नहीं साहब, वह आई ही नहीं हैं। मैं रात भर जागती रही हूं, अगर वह आतीं तो क्या मुझे न माळूम होता?"

"तू रात भर क्यों जागती रही है?"

"आपकी तबियत ठीक नहीं थी। बीबी जी घर पर नहीं थीं, अगर आपको किसी चीज की जरूरत पड़ जाती तो फिर कौन देता।"

"तू मेरे लिये रात भर जागती रही?" डा० कान्त के वाक्य में आश्चर्य का भाव था।

चम्पा नतमस्तक खड़ी पृथ्वी की ओर निहार रही थी। पैर के अँगूठे के नाखून को फर्स पर पड़ी कालीन में गड़ाते हुये उत्तर दिया "जी।"

"रात को जागना अच्छा नहीं होता, अगर कहीं तेरी तवियत खराब हो गई तो?"

"आप तो हैं।"

"मेरे होने से क्या होता है। मैं कोई तबियत को खराब होने से रोक थोड़े ही लूँगा।"

"खराब होने के बाद तो ठीक कर देंगे। उसी बहाने आपकी मीठी-मीठी दवा खाने को मिल जायगी।"

"दवा भी कहीं मीठी होती है। वह तो इतनी कड़ुई होती है कि तू खा भी न सकेगी।"

"कड़ुई नहीं, मीठी होती है।" सामने देखते हुये अपना अनुभव जोरदार

शब्दों में व्यक्त किया।"
"तू कैसे जानती है ?"
"भीखू दादा का बड़ा लड़का बन्शी एक दिन यहाँ आया था, वह बना रहा था।"
"तो क्या वह यहाँ आता है ?"
"हाँ।" कुछ रुककर घबड़ाहट के स्वर में चम्पा ने सफाई पेश की—"आप ही तो अपने काम से भेजते हैं।"
कुछ सोच कर डाक्टर कान्त ने कहा—"मैंने तो उसे किसी काम के लिये कभी नहीं भेजा।"
"वह तो यही कह रहे थे।" चम्पा का स्वर धीमा था।
"अच्छा, क्या काम बताया था उसने ?"
"यह मुझे नहीं बताया था।"
"तुझसे बातें तो उसने खूब की होंगी और यह नहीं बताया कि वह किस काम से यहाँ आता है ?"
चम्पा को मुँह से कुछ कहने का साहस न हुआ। उसने नकारात्मक सिर हिला दिया।
डा० कान्त ने चम्पा को एक बार नीचे से ऊपर तक देखने के उपरान्त छत की ओर देखते हुये कहा—"मैं सोचता हूं कि बन्शी को यहीं बुला लूँ।"
"तो फिर अस्पताल का काम कौन करेगा ?" चम्पा की प्रसन्नता निहित तत्परता व्यक्त हो गई।
उड़ती हुई दृष्टि से चम्पा की ओर देखकर डा० कान्त ने कहा—"वहाँ वह काम ही कौन करता है। यही झाड़-पोंछ किया करता है।"
"बस ?" इस एक ही शब्द में चम्पा की चरम जिज्ञासा व्यक्त हो गई।
"क्यों ?"
"वह तो कहते थे कि मरीजों को दवा देता हूं, आपके साथ मरीजों को देखने जाता हूं और वहाँ के सभी बड़े-बड़े काम उनके जिम्मे हैं।"

डा० कान्त बन्शी की चतुरता सुनकर मुस्कुरा दिये और मन्द स्वर में कहा—"कह तो वह ठीक रहा था, लेकिन उसका वहाँ मन नहीं लगता है, इसलिये सोचता हूं कि उसे यहाँ का कोई काम सौंप दूं ।" डा० कान्त का इतना कहना था कि फोन की घण्टी टन-टना उठी । चम्पा दौड़ कर फोन उठा लाई । फोन पर उन्हें ज्ञात हुआ कि एक बालक सख्त बीमार है । वह फौरन उठे और नित्य कर्म से निवृत्त होकर कपड़े बदलने लगे। चम्पा कोट लिये खड़ी थी । हैंगर से कोट लेते हुये डा० कान्त ने कहा—"तूने बीबी जी से यह कह दिया था कि मेरी तबियत ठीक नहीं है ?"

"जी, मैंने यह भी कह दिया था कि आप दोपहर तक लौट आयेंगे, वह कहीं न जाँय ।"

"फिर भी वह चली गईं ?"

"जी ।"

"और कौन था साथ में ?"

"वही सिनहा बाबू थे ।"

"हूँ ।" कह कर डा० कान्त ने आगे बढ़ते हुये कहा—"अच्छा अगर वह मेरे लौटने के पहिले ही आ जाँय तो कहीं मत जाने देना ।"

चम्पा के उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये हुये ही डा० कान्त चले गये । डा० कान्त की कार बँगले से बाहर निकल कर कुछ ही दूर जा पाई होगी कि शीला की कार ने भीतर प्रवेश किया । चम्पा अभी बाहर खड़ी थी । शीला को देखकर ज्योंही वह भीतर जाने लगी त्योंही शीला ने कार से नीचे पैर रखते हुये चम्पा को आवाज दी । चम्पा के बढ़ते हुये पैर रुक गये । शीला ने एक साँस में ही सीढ़ियों को पार करते हुये चम्पा के पास जाकर पूँछा—"साहब अस्पताल गये ?"

"जी हाँ ।"

चम्पा का उत्तर देना था कि शीला ने अन्दर प्रवेश किया । हाथ के बैग को हिलाते हुये शीला ने कहा—"देखो चम्पा, तुम जरा नास्ते की तैयारी करो, मैं अभी आती हूं ।" कहकर शीला ने सिनहा की ओर

देखा और एक मुस्कान के साथ भीतर चली गईं ।

थोड़ी ही देर में शीला नवीनता धारण करके आ गईं । सिनहा दैनिक समाचार पत्र पढ़ने का बहाना कर रहे थे । शीला पर एक दृष्टि डालते हुये उन्होंने कहा—"आपको भी न जाते देर न आते देर ।"

"आइये, जल्दी से नास्ता कर लें ।" शीला ने कहा ।

"एक तो वैसे ही हम लोगों को आधे घण्टे की देर हो गई है और फिर आप.........।"

"आइये तो, दो मिनट से अधिक थोड़े ही लगेंगे ।"

"चलिये ।"

दोनों लोग डाइनिंग टेबुल पर जा बैठे और नास्ता करने लगे । चम्पा ने एक ओर कोने में खड़े होकर कहा—"साहब की तबियत रात भर काफी खराब रही है । वह कह गये हैं कि आप उनके आने तक कहीं न जाँय ।"

चम्पा की बात सुनकर शीला के हाथ की चाय मुँह तक जाकर रुक गई और मेज पर प्याला रखते हुये उन्होंने पूँछा—"अब बताइये क्या होना चाहिये ?"

"मैं क्या बताऊँ, जब भाई साहब रोक गये हैं तो न चलिये ।" सिनहा ने कहा ।

"लेकिन वहाँ जाना भी तो आवश्यक है ।"

"वह तो है, परन्तु भाई साहब नाराज होंगे ।"

"उसकी चिन्ता आप न करिये । वह मेरे ऊपर कभी नाराज नहीं होते, मेरे किसी भी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करते और फिर उनकी अनुपस्थिति में मैं यहाँ रह कर करूँगी ही क्या ?"

"जैसी आपकी इच्छा ।"

"यों ही कुछ सिर-विर दर्द करने लगा होगा, क्योंकि यदि उनकी तबियत अधिक खराब होती तो वह अस्पताल न जाते और फिर मैं दोपहर

चलें।"

सिनहा भी उठ खड़े हुये। शीला के साथ वह बाहर आये। दोनों लोग गाड़ी में बैठ गये। सिनहा गाड़ी स्टार्ट करने वाले ही थे कि शीला ने चौंक कर कहा—"अभी एक मिनट में आई।" कह कर शीला तेजी से अन्दर चली गई।

चम्पा डाइनिंग टेबुल पर बिखरे बरतनों को एकत्र कर रही थी कि सहसा शीला ने पास जाकर धीमे स्वर में कहा—"अगर मुझे देर हो जाय और साहब पूछे तो कह देना अभी अकेले कहीं गई हैं, आती ही होंगी।" कह कर शीला सटाक से बाहर हो गई और कार चल दी।

२२

डा० कान्त मरीजों को देख तो रहे थे और यही चेष्टा कर रहे थे कि उनकी अस्वस्थता का भान किसी को न होने पावे, परंतु उनका शैथिल्य बढ़ता ही जा रहा था। इसी बीच में कई स्थानों से बुलावा भी आ चुका था, परन्तु अपने सहयोगी डा० से वह अपनी वास्तविक स्थिति बता कर न पहुंच सकने की असमर्थता व्यक्त करने को कह दिया था। जैसे-तैसे समस्त रोगियों को निपटाने के पश्चात डा० कान्त को छुट्टी मिली। वह कार में बैठे और सीधे बँगले को चल दिये।

कार के प्रवेश की ध्वनि ने सभी को सतर्क कर दिया। डा० कान्त के पैर शरीर का बोझा सम्हालने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर रहे थे। फिर भी किसी तरह सीढ़ियाँ चढ़ कर ड्राइंग रूम तक आ गये। आगे बढ़ने का वह साहस न कर सके और वहीं कोच पर बैठ गये। धीरे से उन्होंने चम्पा को कारा। म्पा विद्युत की भाँति सेवा में हाजिर

हो गई आकर। डा० कान्त ने उससे पानी लाने को कहा। पानी पीने के उपरान्त उन्होंने चैन की सांस लेते हुये पूँछा—"क्या तेरी बीबी जी अभी तक नहीं लौटीं ?"

"सुबह आपके जाते ही वह आ गईं थीं।"

"अकेली थीं या साथ में और कोई था ?"

"सिनहा साहब थे।"

"ओर अब कहाँ गई हैं ?"

"यह तो नहीं बता गईं हैं, लेकिन गईं अकेले ही हैं।" चम्पा के स्वर में घबराहट थी।

"ऐसा कहने को कह गई होंगी ?"

"जी......जी...वह अकेले ही गई हैं।"

"मेरे सवाल का जवाब दे। क्या तुझसे यह कह गई हैं कि 'अकेले' जाने को कहना ?"

"जी हाँ।" चम्पा नें सिर नीचा करके धीमे स्वर में कहा।

"हूं। तो वह गईं सिनहा के साथ हैं और तुमसे कह गई हैं कि कह देना अकेले गई हैं।" डा० कान्त का स्वर क्रोध पूर्ण था। नेत्र ज्वर एवं क्रोध के कारण रक्त वर्ण हो रहे थे। शरीर काँप रहा था। अधिकार पूर्ण स्वर में उन्होंने पूँछा—"तूने यह कह दिया था कि मैंने कहीं जाने को रोका है ?"

"जी हाँ। वह कह रही थी कि आपके आने के पहिले ही वह आ जायेंगी।"

"हूं।" कहकर वह उठे और जाकर बिस्तर पर लेट रहे।

डा० कान्त को शीला के इस आकस्मिक व्यवहार पर आश्चर्य हो रहा था। वह सोच रहे थे—'मेरे मना करने पर भी वह चली गई। कर्तव्य के प्रति इतनी उपेक्षा। स्वतन्त्रता उच्छृंखलता में परिवर्तित हो गई है।' पत्नी के विषय में विचारधारा आश्चर्य को क्रोध में परिणत कर रही थी। एक क्षण के लिये शीला का ग्रामीण बाला का स्वरूप नेत्रों

के समक्ष साकार हो उठता, रात-रात भर जाग कर सेवा में निरालस्य रत रहने वाली सेविका का चित्र दृष्टि के समक्ष चित्रित हो जाता, कभी गम्भीर विषयों पर घण्टों निरन्तर वाद-विवाद करने की मुद्रा दृष्टिगोचर होने लगती। जब शीला के प्रारम्भिक व्यवहार की वर्तमान व्यवहार से तुलना करते तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहता। मौन विचार विश्लेषण शक्ति व्यक्ति को अन्तर्मुखी बना देती है। अपने से सम्बन्धित किसी के विषय में विचार करते समय वह विचारक को अपने आचरण पर भी दृष्टिपात करने को बाध्य कर देती है। जब शीला के व्यवहार परिवर्तन का विश्लेषण करते तो स्वयं अपने को भी टटोलते और इस निष्कर्ष पर पहुंचते कि शीला के इस परिवर्तन स्वरूप के लिये वह भी कम उत्तरदायी नहीं है। उनकी उपेक्षा ही इसका कारण है, परन्तु जब उपेक्षा के कारण पर विचार करते तो देखते कि एक महान कर्तव्य के लिये छोटे कर्तव्य की उपेक्षा उन्होंने की है। मानव सेवा में निरन्तर संलग्न रहने के कारण ही शीला के प्रति अपने कर्तव्य को वह नहीं निभा सके हैं। इसमें वह अपने को अधिक दोषी न मानते।

मनुष्य का एक सामाजिक स्वरूप भी है। समाज से उसे जीवन पर्यन्त तक असंख्य आवश्यकताओं की वस्तुयें प्राप्त होती हैं। उस समाज के प्रति उपेक्षा का भाव रखना महान अधर्म है। इतने अल्प समय में जो उन्होंने ख्याति प्राप्त कर ली थी वह कम महत्व पूर्ण न थी। क्या गरीब क्या धनी सभी उनका सम्मान करते थे। इतने परिश्रम से अर्जित ख्याति को वह कैसे खो देते।

ज्यों ज्यों अस्पताल जाने का समय निकट आता जा रहा था त्यों-त्यों उनका शैथिल्य बढ़ता जा रहा था। निर्धारित समय से एक घण्टा देर हो जाने पर अस्पताल से फोन आया। डा० कान्त ने चोंगा उठा कर कान से लगाया तो सुनाई पड़ा—"काफी मरीज आ चुके हैं और आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"देखो, मैं शायद न आ सकूँगा। मेरी तबियत इस समय कुछ अधिक

खराब माळूम दे रही है। आप मरीजों को निपटा कर जरा इधर चली आइयेगा। वैसे तो कोई बात नहीं है फिर भी न जाने किस समय क्या आवश्यकता पड़ जाय।" डा० रञ्जना की स्वीकृति सुनने के पश्चात उन्होंने फोन रख दिया। चम्पा से पानी माँग कर पीने के उपरान्त वह पुन: लेट रहे। पूर्व विचार धारा पुन: प्रवाहित होने लगी, परंतु मस्तिष्क की पीड़ा और ज्वर की अधिकता के कारण विचार धारा विशृंखलित हो जाती थी। एक विचार अधिक देर तक मस्तिष्क में न रुक पा रहा था। शनैः शनैः घड़ी की सुई आगे बढ़ रही थी। अब तो फोन पर बात करने का भी साहस न हो पा रहा था। फोन पर फोन आ रहे थे, परन्तु चम्पा ही उनका उत्तर दे रही थीं।

दो पहर रात्रि व्यतीत होने के उपरान्त शीला की कार पोर्टिको में आकर रुकी। शीला उससे उतर कर खड़ी हो गई और सिनहा कार लेकर बँगले के बाहर हो गये। शीला कुछ क्षणों तक तो कार का जाना देखती रहीं परन्तु जब कार दृष्टि से ओझल हो गई तब वह मुड़ीं और सीढ़ियाँ चढ़ने लगीं। एक सीढ़ी चढ़तीं और वह झूम जातीं। पैर डग-मगा जाते। पैर रखती कहीं और वे पड़ते कहीं। किसी प्रकार डगमगाते हुए मुख्य द्वार से भीतर प्रवेश किया। ड्राइंग रूम का दूर रखा हुआ कोच शीला के निकट प्रतीत हुआ, इसलिये उसका सहारा लेकर ज्योंही बैठने की चेष्टा की त्योंही वह जा फर्स पर धडाम से गिर पड़ीं। गिरने का शब्द सुनते ही चम्पा दौड़ पड़ीं। उसने समझा कि डा० साहब गिर पड़े, परन्तु आकर देखा तो शीला फर्स पर पड़ी थीं। वह घबड़ा कर एकदम डा० कान्त के कमरे की ओर भागी और घबड़ाहट के स्वर में कहा—"साहब, बीबी जी गिर पड़ीं।"

"कहाँ।" कहने के साथ ही डा० कान्त उठ बैठे।

"बाहर, बैठके में।" कह कर चम्पा बैठके की ओर तेजी से भागी।

कान्त ने भी चम्पा का अनुसरण किया।

शीला मुँह के बल पड़ी थीं। डा० कान्त ने पत्नी को पकड़ कर घुमाया

तो शीला के मुँह से शराब की असह्य दुर्गन्ध निकली। यह जान कर कि शीला ने शराब पी रखी है उन्होंने उन्हें वैसा ही फर्श पर छोड़ दिया और तीव्र स्वर में पुकारा—"शीला।"

"ओह! तु...म ...आ .... गये ....सिन...हा ...बाबू। मैं ···· तु ···· म्हा ··· री ही ··· ।"

शीला का अटकता हुआ स्वर फूटा।

"शीला।" डा० कान्त ने पत्नी को पकड़ कर जोर से झकझोरा।

शीला ने नेत्र खोलने की चेष्टा की, लेकिन पलकें केवल हिल कर ही रह गईं। डा० कान्त आवेश में तो थे ही। उन्होंने जोर से एक थप्पड़ शीला के गाल पर मारा। शीला की आँखें खुल गईं परन्तु शीघ्र ही बन्द हो गईं और मुँह से निकला—"तुम ··· कौ ··· न ··· हो? मेरे सिनहा ··· बा ··· बू ··· को ··· ।"

इसके पूर्व कि शीला अपना वाक्य पूरा कर सकें डा० कान्त ने लगातार कई तमाँचे गालों पर जड़ दिये। यदि इसी बीच डा० रञ्जना ने डा० कान्त का हाँथ न पकड़ लिया होता तो सम्भवतः वह पत्नी को और मारते। शीला का नशा हिरन हो गया। उन्होंने आँखें खोल दीं। कभी पति की ओर देखतीं तो कभी बगल में खड़ी रञ्जना की ओर। रञ्जना ने डा० कान्त से पूँछा—"कौन हैं यह? क्या हो गया है इन्हें?"

डा० कान्त की साँस तेजी से चल रही थी। हाँफते हुये उन्होंने कहा—"इसी से पूँछो।"

शीला उठ कर खड़ी हो गई थीं। गालों पर हाँथ फेरते हुये विस्फरित नेत्रों से पति की ओर देख कर वह बोलीं—"तुमने मुझे मारा है?"

दाँत पीसते हुये डा० कान्त आगे बढ़ कर पुनः मारने का रञ्जना के कारण असफल प्रयास करते हुये बोले—"नीच कहीं की! मैं तुझे जान से मार डालूँगा।"

पहले तो शीला घबड़ा कर पीछे हट गईं परन्तु शीघ्र ही स्थिर होकर फुफकारती हुई बोलीं—"डाइन! तेरे ही कारण इन्होंने आज मेरे ऊपर हाँथ उठाया है। तू कौन है? निकल जा यहाँ से।" शीला का एक

हाथ द्वार की ओर उठ गया।

"जबान सम्हाल कर बोल।" डा० कान्त गरज उठे।

"अब मुझे आप बेवकूफ नहीं बना सकते। मैं सब समझ गई कि आपको मेरे साथ रहना क्यों नहीं अच्छा लगता था, लेकिन अब मैं नहीं चलने दूँगी तुम दोनों का यह नाटक।"

"दुष्टा अपनी ही भाँति सबको समझती है। निकल जा यहाँ से। मेरे यहाँ तुझ जैसी पापिन के लिये कोई स्थान नहीं और जा उसी के पास जिसका अभी नाम ले रही थी।"

"इसके कारण आप मुझे निकाल रहे हैं। मैं तो नहीं निकलूँगी, लेकिन इसे जरूर निकाल कर दम लूँगी।" कहकर शीला रञ्जना का हाथ पकड़ कर बाहर की ओर घसीटने लगीं। रञ्जना के हाथ का बैग फर्श पर गिर पड़ा। डा० कान्त के बीच का व्यवधान समाप्त हो गया। उन्होंने आगे बढ़कर रञ्जना का हाथ छुड़ा दिया और ताबड़-तोड़ कई तमाचे और घूँसे मारने के उपरान्त शीला को घसीटते हुये बाहर की ओर ले चले।

"रञ्जना ने व्यवधान बनते हुये कहा—"यह क्या कर रहे हैं डा० साहब ? यह आपकी पत्नी हैं।"

"पत्नी नहीं दुश्मन है। इस नीच के लिये अब यहाँ कोई गुन्जाइश नहीं।"

"आप थोड़ा समझ से तो काम लीजिये।"

"मैं इसका यह आचरण कई दिनों से देख रहा हूं।" शीला धीरे-धीरे घसिट रही थीं और डा० कान्त दोनों हाथों से पूरी ताकत के साथ पत्नी को बाहर कर रहे थे।

"लोग जब सुनेंगे तब क्या कहेंगे ?" रञ्जना ने मार्ग रोकते हुये कहा। शीला तिलमिला कर खड़ी हो गईं और गरज पड़ीं—"जले पर नमक छिड़क रही है डाइन।" कहकर शीला रञ्जना से चिपट गईं और दोनों के हाथ-पैर चलने लगे। शीला मारने की चेष्टा

कर रही थीं और रञ्जना अपना बचाव कर रहीं थी। डा० कान्त एक क्षण के लिये दूसरे कमरे में गये और बन्दूक उठा लाये। शीला की ओर बन्दूक तानते हुये उन्होंने कहा—"अब भी भला चाहो तो दूर हो जाओ मेरी आँखों से वरना गोली मार दूँगा।"

शीला सीना तान कर खड़ी हो गईं और बोलीं—"लो मारो गोली मैं नहीं हटने की यहाँ से।"

रञ्जना ने परिस्थिति की गम्भीरता को समझ लिया और दौड़ कर बन्दूक छीनने का उपक्रम करने लगीं। डा० कान्त ने बन्दूक छुड़ाते हुये कहा—"बन्दूक छोड़ दो डाक्टर! मैं आज इसका खून कर दूँगा।"

रञ्जना ने बन्दूक न छोड़ी और अत्यन्त विनीत स्वर में कहा—"ईश्वर के लिये इस समय आप ही चली जाइये।"

शीला इस वाक्य से और भी अधिक मर्माहत हो उठीं। उन्होंने दाँत पीसते हुये कहा—"हरामजादी कहीं कीं! मुझे ही मेरे......।" वाक्य पूरा होने के पूर्व ही डा० कान्त ने बन्दूक छोड़ दी और लपक कर पत्नी के मुँह पर बडी जोर से तमाचा मारा। शीला प्रहार न सह सकीं और फर्स पर गिर पड़ीं। डा० कान्त शीला पर झुक गये और लातों घूसों से अन्धाधुन्ध मारने लगे। शीला बचपन में सुनी हुई गालियों की बौछार कर रही थीं। ज्यों-ज्यों शीला रञ्जना को गाली दे रहीं थीं त्यों-त्यों डा० कान्त के प्रहार तीव्र होते जा रहे थे। रञ्जना ने बन्दूक छोड़ दी ओर शीला को बचाने तथा डा० कान्त को पकड़ने का प्रयास करने लगीं। डा० कान्त की मार में तो कमी आ गई परन्तु शीला की गालियों को जैसे और भी अधिक छूट मिल गई। डा० कान्त अब और न सह सके और पूरी ताकत के साथ शीला को पकड़ कर बाहर ढकेल दिया। शीला दरवाजे के बाहर जा गिरीं। इसके पूर्व कि डा० कान्त आगे बढ़कर पुनः धक्का दे सकें और वह सीढ़ियों के नीचे जा गिरे शीला उठकर खड़ी हो गईं और क्रोध उग-

लते हुये बोलीं—"मैं तो जा रही हूं, लेकिन इस चुड़ैल को भी चैन से न रहने दूँगी।" कहकर शीला खट-खट सीढ़ियाँ पार कर गईं और तेजी के साथ फाटक के बाहर हो गईं।

२३

जन शून्य मार्ग पर शीला आगे बढ़ रहीं थीं। मार्ग के किनारे-किनारे लगी हुई बत्तियों के अतिरिक्त कुछ भी न सूझता था। चलनेको तो व: चली जारही थीं, परन्तु यह निश्चय नहीं कर पाई थीं कि जायेगी कहाँ? थोड़ी दूर तक और चलने के उपरान्त चौराहा आ गया। यहाँ से चार रास्ते चार दिशाओं को जाते थे। शीला के पैर स्वत: रुक गये और शीला को विवश हो सोचना पड़ा कि किस मार्ग का अनुसरण करें परन्तु इसके पूर्व कि शीला के पैर किसी अनिश्चित दिशा की ओर बढ़ें, एक कार बगल में आकर रुक गई। कार के अन्दर से आवाज आई—"शीला बहिन जी।"

शीला ने कार के अन्दर देखने की चेष्टा की, परंतु कुछ भी न दिखाई दिया। पुन: अन्दर से ध्वनि निकली—"आप यहाँ इस समय पैदल कैसे?" इस प्रश्न के साथ ही कार का द्वार खुला और मिस कला बाहर निकल कर आ गईं।

शीला मौन थीं। उत्तर दें तो क्या दें? वह कुछ सोच ही न पा रही थीं। कला ने शीला का हाथ पकड़ते हुये पूँछा—"क्या बात है? आप बोल नहीं रही हैं?" कह कर कला ने शीला को गौर से देखा तो उस क्षीण प्रकाश में भी शीला के नेत्रों से झर-झर आँसू बह रहे थे। आँसुओं को देख कर कला ने साश्चर्य कहा—"अरे! आप

तो रो रही हैं। आइये, बैठिये, चलिये मेरे यहाँ।" कहने के पश्चात कला ने शीला को पकड़ कर कार के भीतर बैठा लिया और कार चल दी।

थोड़ी देर के बाद कार ने एक बँगले के अन्दर प्रवेश किया। शीला को कला अपने निजी कक्ष में ले गई और कोच पर बैठा कर बगल में बैठते हुये पूँछा—"हाँ, अब बताइये जरा बात क्या है ?"

कला के पूँछे गये वाक्य में निहित सहानुभूति को अनुभव कर शीला ने एक बार कला के चेहरे की ओर मुड़कर देखा और अपने चेहरे को दोनों हाथों से मूँद कर फफक कर रो पड़ीं। कला के हृदय में आत्मीयता ने उफान मारा। उन्होंने शीला के दोनों हाथ हटा कर प्रवाहित अश्रुओं को पोंछते हुये कहा—"क्या पागल हो गई हो ? कहीं इस तरह रोया जाता है ? आखिरकार हुआ क्या—कुछ बताओगी भी या यों ही रोती रहोगी।"

दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये शीला ने कहा—"क्या बताऊँ कला बहिन ! सब कुछ समाप्त हो गया।"

"मतलब ?"

"घर छोड़ आई हूं।"

"क्या, घर छोड़ आई हो ?" कला को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह सहसा पृथ्वी पर आ गई हों।

"हाँ।"

"लेकिन क्यों ?"

"एक औरत के कारण।"

"क्या कह रही हैं आप ? मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। जरा साफ-साफ बताइये। कला ने अपना चरम औत्सुक्य प्रकट किया।

शीला ने सम्पूर्ण घटना आद्योपान्त सुना दी। सुनने के पश्चात् कला ने दर्द भरे स्वर में कहा—"यह तो बहुत बुरा हुआ।"

"लेकिन इसमें मेरी क्या गलती ? ऐसे समय मैं कर ही क्या सकती

थी ?"

"परन्तु डा० साहब को तो मैं ऐसा न समझती थी।"

"ऐसा तो उन्हें मैं भी न समझती थी।"

"यह सब एक दिन में तो हुआ नहीं होगा। काफी दिन से चल रहा होगा यह और आप ऐसी हैं कि इसके पूर्व जान ही न सकीं ?"

"मैंने स्वप्न में नहीं सोचा था कि वह कभी ऐसा भी कर सकते हैं। मैं तो समझती थी कि दिन-रात मुझ से दूर रहने का कारण उनका कार्याधिक्य है, परन्तु अब मेरी समझ में आ रहा है कि इसका कारण वह औरत ही है।"

"मुझे आश्चर्य तो इस बात पर हो रहा है कि आप जैसी चतुर भी धोखा खा गईं।"

"धोखा ही न कहो इसे ! मैं जीवन की बाजी ही हार गई हूं।"

"ऐसा क्यों सोच रही हैं आप ! अभी से इतना निराश होने की आवश्यकता नहीं।"

"अपनी आँखों पर कैसे अविश्वास करूँ ? सब कुछ देख सुनकर भी अपने को अब धोखे में नहीं रख सकती।"

"सो तो ठीक है, परन्तु हिम्मत हारने से तो कुछ काम चलने का नहीं। किसी विषम परिस्थिति से भागने की अपेक्षा हमें उसका डटकर सामना करना चाहिये।"

"यही मैंने भी सोचा है।"

"क्या ?"

"मैं उस औरत को जान से मार डालूँगी।"

"यह तो आप इस समय आवेश में कह रही हैं।"

"आवेश में नहीं, मैंने खूब अच्छी तरह सोच लिया है। इसके अतिरिक्त मेरे लिये और कोई रास्ता भी तो नहीं है।"

"ऐसी बात नहीं है शीला जी। रास्ता वह अपनाइये जिससे आपका काम भी बन जाय और हानि भी न हो। उस औरत को मारने से

आपको क्या मिल जायगा ? हो सकता है उसके साथ ही आपको भी अपनी जान से हाथ धोना पड़े ।"

"सो तो होगा ही । मैं जानती हूं कि मुझे फाँसी होगी ।"

"लेकिन मैं आपको ऐसा करने की सलाह न दूँगी । ऐसा करने से आपकी गई हुई वस्तु तो आपको न मिल सकेगी ।"

"कौनसी वस्तु ?"

"डा० साहब ।"

"उनका तो मैं नाम भी नहीं लेना चाहती ।"

"क्यों ?"

"जो एक औरत के कारण दूसरी को धोखा दे सकता है, ऐसे धोखेबाज आदमी को मैं घृणा की दृष्टि से देखती हूं ।"

"हो सकता है कि यह घृणा की दृष्टि कुछ दिनों में प्यार की दृष्टि में बदल जाय ।"

"ऐसा कभी नहीं होने का । आज जो उन्होंने मेरा अपमान किया है—क्या मैं उसे जीवन पर्यन्त कभी भूल सकती हूं ?"

"प्यार में वह शक्ति है कि ऐसी एक क्या अनेक घटनाओं को भी भुला सकती है ।"

"उसी प्यार में भूलने का परिणाम तो भुगत रही हूं । एक बार दूध का जला इन्सान मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता है । यही घटना मुझे उनसे सतर्क रखने के लिये यथेष्ट है । मुझे बिल्कुल गँवार- देहातिन ही समझ रखा है । वह समझते हैं कि मैं कुछ समझती ही नहीं । अब तक वह मनमानी करते रहे । मैंने उनके किसी भी कार्य में हस्तक्षेप नहीं किया, लेकिन अब उन्हें पता चल जायगा कि मैं भी कुछ हूं ।"

"इस 'कुछ' का क्या आशय है ?"

"मेरी शक्ति को उन्होंने पहचाना नहीं है । मैं क्या कर सकती हूं—इसका उन्हें ज्ञान नहीं है । मुझे निरीह अबोध अबला समझ कर मुझ पर अभी तक अत्याचार करते रहे । मैंने सब कुछ मौन होकर सहा;

लेकिन अब ज्वालामुखी के फटने का समय आ गया है।"

"लेकिन इस समय आप साधन हीन अवस्था में हैं। इतनी बड़ी योजना कैसे कार्यान्वित कर सकेंगी ?"

"ऐसा तुम समझ सकती हो; लेकिन मैं सिनहा बाबू की सहायता से "क्या कर सकती हूं, तुम इसे नहीं जानतीं।"

"मैं तो जानती हूं, लेकिन आप धोखे में हैं।"

"क्या मतलब ?"

"आप जिसका इतना भरोसा किये बैठी हैं, सम्भवतः उसके स्वभाव से आप परिचित नहीं।"

"यह क्या कह रही हो तुम ? यह भी कहीं हो सकता है कि मैं उनके स्वभाव को न जानती होऊँ।"

"आप मुझ पर विश्वास करिये कि आप वास्तव में परिचित नहीं हैं। आप नहीं—यह आपका पैसा है जो उन्हें आपके प्रति इतना संवेदनशील, आज्ञाकारी तथा सहयोगी बनाये हुये है। जिस समय उन्हें यह पता लगेगा कि आप से कुछ मिलना असम्भव है, उस समय वह आपसे बात तक नहीं करेंगे।"

"इसका तात्पर्य है कि तुमने उन्हें पहचाना नहीं। उनके जैसा तो देवता पुरुष मेरे देखने में भी नहीं आया। दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट समझ कर उनसे जो भी सहायता हो सकती है वह सदैव करने को तैयार रहते हैं।"

"यह सब दिखावा मात्र है। यह सहयोग वहीं सम्भव है जहाँ उनका कोई बड़ा मतलब हल होता होगा।"

"देखिये कला जी ! आप हमारी मित्र हैं। आप सब कुछ कह सकती हैं, लेकिन सिनहा बाबू के लिये 'स्वार्थी' शब्द मैं नहीं सुन सकती।"

"अभी आप नाराज हो सकतीं हैं; बिगड़ सकती हैं और सिनहा साहब के प्रति अपनी आत्मीयता प्रकट कर सकतीं हैं, परन्तु जब उनके वास्तविक स्वरूप से आप परिचित होंगी तब देखूँगी आप क्या कहती हैं

उनके विषय में।"

शीला इतने में उठ खड़ी हुईं। कला ने साश्चर्य पूछा—"कहाँ चली?"

"सिनहा बाबू के यहाँ।"

"इस आधी रात में?"

"तो क्या हुआ?"

"आप भी कमाल करती हैं। यह भी किसी के यहाँ जाने का समय है?"

"आवश्यकता ग्रस्त प्राणी समय की प्रतीक्षा नहीं करता। मुझे सिनहा से वैसे ही मिलना था ओर अब तो उनके प्रति तुम्हारी धारणा सुन कर इसी समय मिलने को मन कर रहा है।"

"आधी रात तो बीत भी चुकी है। सुबह होते ही चली जाइयेगा।"

शीला ने कुछ सोचते हुये कहा—"रात भर मैं यहाँ रुकूँ?"

"क्यों, क्या कोई भय लग रहा है आपको यहाँ?"

"नहीं, नहीं, भय की कोई बात नहीं है। मैं सोच रही हूं कि कहीं कोई.........।"

"यहाँ कोई कुछ नहीं सोचेगा। मेरे पिता जी को छोड़कर और है ही कौन?"

"क्या माता जी नहीं है?"

"नहीं।"

"और कोई भाई-बहिन भी नहीं हैं?"

"मेरे बड़े भाई साहब हैं, लेकिन वह भी इस समय यहाँ नहीं हैं।"

"इतनी रात को कहाँ गये हैं?"

"वह यहाँ नहीं रहते। पिता जी ने उन्हें व्यापार की देख-भाल के लिये कलकत्ता भेज रखा है और वह वहीं रहते हैं।"

"क्या यहाँ कभी नहीं आते?"

"आते हैं, लेकिन बहुत कम।"

"और पिता जी क्या करते हैं?"

"उन्होंने कई मिलों के हिस्से खरीद रखे हैं। दिन-रात उन्हीं में व्यस्त

रहते हैं। कभी इस शहर में कभी उस शहर में। यहाँ बहुत ही कम रह पाते हैं।"

"तब तो अकेले रहना पड़ता होगा इतने बड़े बँगले में। तुम्हारा मन नहीं ऊबता ?"

"मन तो तब ऊबता है जब खाली हो।"

"तो क्या मन बहलाव का कोई साथी बना लिया है ?

"आपकी कल्पना के अनुकूल तो नहीं परन्तु हाँ (कमरे में लगे चित्रों की ओर देखते हुये) ये चित्र अवश्य हैं मेरे अकेले के साथी।"

"क्या मतलब ?"

"इन्हीं के निर्माण में मेरा अधिकांश समय व्यय हो जाता है।"

"तो क्या ये सारे चित्र तुम्हारे ही बनाये हुये हैं ?" शीला ने साश्चर्य पूँछा।

"हाँ।"

"तब तो तुम बहुत अच्छी कलाकार हो।" एक बड़े तैल चित्र को पास से देखते हुये शीला ने कहा—"यह तो बहुत ही सुन्दर है।"

कला भी शीला के बगल में जा पहुंची और कहा—"इसी पर तो मुझे अखिल भारतीय चित्र प्रतियोगिता में एक हजार का पुरस्कार मिला था।"

"अच्छा ! तो कहो इनसे अच्छी-खासी आमदनी भी हो जाती है।"

"हाँ, मुझे पिता जी से कुछ नहीं लेना पड़ता।"

"अपना सारा खर्चा इसी से निकाल लेती हो !"

"हाँ, एक—एक चित्र पाँच—पाँच सौ और एक—एक हजार तक का बिक जाता है।"

"मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुम आत्मनिर्भर हो।"

"आत्मनिर्भर तो हर प्राणी को होना चाहिये। आप तो जानती ही हैं कि इसी आत्मनिर्भरता के अभाव में पुरुष जाति ने स्त्री जाति पर क्या-क्या अत्याचार किये हैं और आज भी करता जा रहा है

न रखूँ ।"

कला ने शीला को पकड़कर बैठाते हुये कहा—"शान्ती से काम लीजिये। इस समय आवेश आपके लिये पराजय का कारण सिद्ध होगा।"

बगल में पड़े पलंग की ओर संकेत करते हुये कला ने कहा—"अब आप शेष रात आराम करिये। कल विचार करेंगे कि क्या करना चाहिये।"

शीला लेट रहीं लेकिन सो न सकीं।

२४

शीला के चले जाने के उपरान्त डा० कान्त अन्दर पहुंचे। यह सोचकर कि शीला चली गई उनका सारा क्रोध एक ही क्षण में न जाने कहाँ विलीन हो गया। डा० रञ्जना सामने सिर नीचा किये हुये खड़ीं थीं। कुछेक क्षणों तक दोनों लोग मौन खड़े रहे। किसी को बोलने का साहस न हुआ।

गरदन सीधी करते हुये डा० कान्त ने कहा—डाक्टर।"

"जी।" रञ्जना ने उसी स्थिति में उत्तर दिया।

"बैठ जाइये।"

रञ्जना ने डा० कान्त की आज्ञा का पालन किया।

डा० कान्त ने सामने की कोच पर बैठते हुये कहा—"आपको इस घटना को देखकर आश्चर्य हो रहा होगा।"

"मुझे बहुत अफसोस है।"

"किसलिये ?"

क्यों ?"

"यदि मैं न होती तो यह घटना न घटती।"

"तो क्या इस घटना का कारण आप अपने को समझ रही हैं ?"

"जी ! मेरे ही कारण तो यह सब हुआ है।"

'नहीं डाक्टर ! आप भूल रही हैं। जो होना होता है वह होकर ही रहता है। इसे तो एक न एक दिन होना ही था। कई दिनों से इसके आसार दिखाई दे रहे थे।"

"तो जान-बूझ कर भी आपने ऐसी परिस्थिति को रोकने की चेष्टा नहीं की ?"

"मुझे अवसर ही कहाँ मिला। मैं इधर कई दिनों से उससे मिलने की चेष्टा कर रहा था, लेकिन वह थी कि उसे होश ही न था। होश होता भी कैसे वह तो किसी दूसरी ही दुनियाँ की सैर कर रही थी।"

"दूसरी दुनियाँ से आपका तात्पर्य ?"

"आप तो जानती ही हैं कि मैं कितना व्यस्त रहता हूँ। रात-दिन दौड़-धूप करने पर भी कुछ न कुछ ऐसे मरीज छूट ही जाते हैं जिनके प्रति मैं पूर्ण न्याय नहीं कर पाता। वह दिन-रात अकेली यहाँ पड़ी रहती थी। मैं नहीं चाहता था कि वह यहाँ अकेले पड़े-पड़े ऊबा करे, इसलिये उसे मित्रों से मिलने-जुलने और उनके साथ उठने-बैठने की अनुमति दे दी। उसने मेरी इस ढील का अनुचित लाभ उठाया। कोई सिनहा साहब हैं। उनका शीला पर विशेष रंग जमा। उनके साथ क्लबों में जाना, रात-रात भर गायब रहना, शराब पीना तथा यह सुन कर भी कि मेरी तबियत ठीक नहीं है उपेक्षा करना शीला ने प्रारम्भ कर दिया। वह सोचती होगी कि मैं उसकी इन हरकतों से परिचित नहीं हूं, लेकिन मुझे नौकरों द्वारा शीला का एक-एक क्रिया-कलाप माळूम होता रहा है। उसकी स्वतन्त्रता किस सीमा तक बढ़ गई है इसका अन्दाज तो आपको उसके आज के शराबी रूप को देख कर लग ही गया होगा।"

"क्या वह शराब पिये हुये थीं ?" डा० रञ्जना ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ, आज वह बुरी तरह शराब पिये हुये थी। उसे होश ही कहाँ था जब वह आई थी। आपके आने तक तो मैं उसे होश दिला चुका था।"

"मुझे तो यह सुनकर आश्चर्य हो रहा है कि उन्होंने शराब पीनी प्रारंभ कर दी है।"

"मुझे भी उससे यह आशा नहीं थी कि वह इस सीमा तक बढ़ जायगी।"

"लेकिन आपने इतनी सी गल्ती के लिये बहुत बड़ी सजा दे डाली।"

"आज उसने जो कुछ बका है, उसके लिये तो मुझे जान से मार देना चाहिये था।"

"क्रोध में तो ऐसा होता ही है।"

"उसी क्रोध का परिणाम तो उसे भुगतना है।"

"लेकिन कहीं वह कुछ कर बैठीं तो ?"

"ऐसी औरत कुछ नहीं कर सकती। कहने को तो डा० कान्त कह गये, लेकिन तत्क्षण किसी भावी आशंका से उनका हृदय दहल उठा। फौरन ही उन्होंने कहा—"भावावेश में आकर कभी-कभी ऐसा भी कदम उठ जाता है जो सर्वथा अनुचित होता है।"

"मेरी समझ में तो किसी प्रकार आप उन्हें बुलवा लीजिये।"

"लेकिन पता नहीं वह कहाँ गई होगी।"

"गई कहाँ होंगी, अभी थोड़ी दूर ही जा पाई होगी।"

"तो फिर मैं ही जाता हूं।"

डा० कान्त ने कार निकाली और चल दिये शीला को लेने।

उस समय शीला कला के साथ बैठे कमरे में वार्तालाप कर रही थीं।

थोड़ी देर में डा० कान्त निराश लौट आये।

डा० रञ्जना बैठे प्रतीक्षा कर रही थीं। डा० कान्त के आते ही उन्होंने पूँछा—"मिलीं ?"

"नहीं, पता नहीं वह किधर निकल गई।

"यह तो बहुत बुरा हुआ। मेरी समझ में तो आप पुलिस को फोन कर दीजिये।"

"सुबह ही अखबारों में छप जायगा। इससे बडी बदनामी होगी।"

"और यदि वह न लौटीं तो क्या आप समझते हैं कि बात छिपी रह सकेगी ?"

"मुझे विश्वास है कि वह अवश्य लौट आयेगी।"

"लेकिन कब तक ?"

"थोड़ी देर में।"

"और अगर न लौटीं तो ?"

"तो फिर देखा जायगा।"

"क्या से क्या हो गया। कहाँ आपकी तबियत......(कुछ रुककर डा० कान्त की नब्ज पकड़ते हुये) आपको तो काफी बुखार है। चलिये, लेटिये चल कर।" हाथ पकड़ कर उठाते हुये डा० रञ्जना ने कहा।

डा० कान्त जाकर पलंग पर लेट रहे और आँखें बन्द कर लीं।

एक क्षण तक तो रञ्जना वहाँ खड़ी रहीं। और डा० कान्त की ओर देखती रहीं परन्तु यह सोच कर कि इस समय डा० कान्त को आराम की विशेष आवश्यकता है, वह बाहर आकर कोच पर बैठ गईं और नेत्र बन्द कर लिये।

डा० कान्त अधिक देर तक नेत्र बन्द किये न रह सके। उन्होंने नेत्र खोल कर देखा तो रञ्जना न दिखाई दीं। वह उठ कर बाहर आये और रञ्जना को सोता हुआ पाकर वह पुनः पलँग पर जा लेटे।

रञ्जना काफी देर तक बैठे घटना पर विचार करती रहीं। विचारों की शृंखला टूटने का नाम ही न ले रही थी। एक-आध बार बीच में नेत्र खोले तो सन्नाटा प्रतीत हुआ। नेत्र मूँदते ही उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगता जैसे शीला सामने खड़ी हैं और दोनों हाथों से उनका गला दबाकर मार डालना चाहती हैं। रञ्जना भयभीत हो उठीं। वह वहाँ

बैठे न रह सकीं। वहाँ से चुपचाप उठ कर वह कान्त के कमरे में गईं लेकिन कान्त शान्त लेटे थे। वह वहीं खड़ी हो गईं। चम्पा धीरे से उनके पास आई और पूछा—"क्या खोज रही हैं आप?"

"हुं।" रञ्जना जैसे सोते से जाग पड़ी हो।

"आपको कुछ चाहिये?"

"आँय, हाँ मुझे प्यास लगी है। मुझे पानी चाहिये।"

रञ्जना ने प्रकृतिस्थ होते हुये कहा।

"अभी लाई पानी।" कहकर चम्पा चली गई।

रञ्जना कोच पर आकर बैठ गईं। चम्पा ने पानी भरा गिलास रञ्जना को पकड़ा दिया। उन्होंने भी यह दिखाने के लिये कि अधिक प्यासी हैं पूरा गिलास एक ही बार में खाली कर दिया। चम्पा ने खाली गिलास को हाथ से पकड़ते हुये पूछा—"और लाऊँ?"

"नहीं।"

चम्पा जाने लगी तो रञ्जना ने कहा—"कोई नौकर जाग रहा है?"

"कोई क्या, सभी जाग रहे हैं, लेकिन मैं तो हाजिर हूं। बताइये क्या काम है?"

"मैं घर जाना चाहती हूं।"

"साहब को अकेले छोड़कर?"

"क्यों?"

"उनकी तबियत इधर कई दिनों से बराबर खराब है। आज तो शाम से उठ भी नहीं पाये थे। ऐसी हालत में बीबी जी भी नहीं हैं और आप भी......।"

"लेकिन अब तो वह आराम से सो रहे हैं। सुवह होते ही आ जाऊँगी।"

"काफी रात तो बीत चुकी है, अगर आप यहीं रुक रहें तो......।"

इसके पूर्व कि चम्पा अपना वाक्य पूरा कर पावे अन्दर से डा० कान्त ने पुकारा। रञ्जना ने मुड़ती हुई चम्पा को रोकते हुये कहा—"तुम रुको मैं जाती हूं।" कहकर रञ्जना ने भीतर प्रवेश किया।

रञ्जना को देख कर कान्त ने कहा—"ओह ! आप ?"

"जी हाँ।"

"अभी तक सोई नहीं क्या ?"

"जी, नींद नहीं आई।"

"कहीं आपकी भी तबियत न खराब हो जाय।"

"आप तो हैं इलाज करने के लिये।" रञ्जना मुस्करा दीं।

"लेकिन मुझे तो स्वयं इस समय इलाज की आवश्यकता है।"

"मैं किसलिये हूं ?"

"आपको बड़ा कष्ट दे रहा हूं।"

"इसमें कष्ट की कौन सी बात है। यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप......।"

"बीमार पड़े हैं।" रञ्जना के वाक्य को डा० कान्त ने पूरा कर दिया।

"नहीं, मुझे आपकी सेवा का अवसर मिला है।"

"कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि शीला आपकी तरह क्यों नहीं सोचती थी ?"

"यह तो मैं नहीं जानती, लेकिन आपकी सेवा करने का अवसर जिसे भी प्राप्त होगा वही अपने को सौभाग्यशाली समझेगा।"

सिर दर्द स फटा जा रहा था। डा० कान्त ने दर्द को अव्यक्त रखने की चेष्टा की परन्तु मुद्रा पर होने वाले असाधारण परिवर्तनों से रञ्जना ने जान लिया कि डा० कान्त किसी पीड़ा से व्यथित हैं। उन्होंने सहानुभूति पूर्ण स्वर में पास खिसकते हुये पूछा—"क्या सिर में दर्द हो रहा है।"

"हाँ।"

"लाइये, मैं दबा दू।" रञ्जना ने सिर की ओर हाथ बढ़ाया।

"आप।"

"क्यों, क्या मुझे सिर दबाना नहीं आता ?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।"

"तो फिर ?"

"आप जाकर आराम करिये......।"

"वाह ! आपको कष्ट है और मैं जाकर आराम करूँ। आप ही का तो कहना है कि जहाँ तक हो सके मरीज को आराम पहुंचाना एक डाक्टर का कर्तव्य है।"

"लेकिन मैं कोई ऐसा मरीज तो हूं नहीं जिसे आप जैसे डाक्टर की आवश्यकता हो ?"

"तो मैं वैसी डाक्टर भी नहीं हूं जिसकी आप जैसे मरीजों को आवश्यकता न हो।"

"आप का कष्ट मुझसे न देखा जायगा।"

"और आपका कष्ट मैं देख रही हूं।" कहकर ज्योंही डा० कान्त के मस्तक पर रञ्जना ने अपनी हथेली रखी त्योंहीं चौंक कर हटा ली। डा० कान्त को रञ्जना के सुकोमल हाथ का स्पर्श बहुत ही सुखकर लगा, परन्तु स्पर्श के सहसा हटते ही उन्होंने साश्चर्य पूँछा—"क्यों, क्या हो गया ?"

"आपका सिर तो तप्त तवे के समान जल रहा है।"

"ऐसा तो दोपहर से ही जल रहा है।"

"तो फिर आपने मुझे दोपहर को ही क्यों न बुला लिया ?"

"अस्पताल में भी तो हम दोनों में से एक का रहना जरूरी था।"

"लेकिन आप की देख-भाल भी तो आवश्यक थी।"

"एक आध दिन में ठीक हो जाऊँगा।"

"वह तो हो ही जायेंगे, लेकिन मर्ज के प्रति उपेक्षा भी तो ठीक नहीं है। कोई दवा ली है आपने ?"

"नहीं।"

रञ्जना दौड़कर बाहर गईं और अपना बैग उठा लाईं। बैग में थर्मामीटर निकाल कर उसे देखा और डा० कान्त के मुँह में दिया। एक मिनट तक रञ्जना मौन रहीं। थर्मामीटर निकाल कर बुखार देखते

हुये रञ्जना ने कहा—"१०२·५ तो आपको बुखार है और आप ऐसे हैं कि कुछ ध्यान ही नहीं दे रहे हैं।" कहकर दो गोली डा० कान्त के मुँह में डाल दीं और ऊपर से थोड़ा पानी पिला दिया।

डा० कान्त ने दवा के साथ पानी घुटकते हुये कहा—"अगर मैंने ध्यान दिया होता तो तुम्हारे हाथ से दवा खाने का सौभाग्य कैसे प्राप्त होता ?"

डा० कान्त रञ्जना के लिये 'आप सम्बोधन से तुम पर उतर आये, लेकिन किसी ने भी ध्यान न दिया।

रञ्जना ने मस्तक पर हल्के-हल्के हाथ फेरते हुये कहा—"कुछ आराम मिल रहा है ?"

"तुम आराम की पूँछ रही हो और मैं यह सोच रहा हूं कि सारा दर्द चला कहाँ गया। पता नहीं कौन सा जादू है तुम्हारे इन हाथों में है कि जिसे छू लेती हो वही ठीक हो जाता है।"

"आपकी तरह।"

"मेरे हाथों में ऐसी शक्ति होती तो अब तक ठीक हो गया होता।"

"डाक्टर को अपनी दवा नहीं लगती।"

"ऐसा तो लोगों का भ्रम है। रुग्णावस्था में रोगी अपना मानसिक विश्वास खो बैठता है, चाहे वह डा० स्वयं ही क्यों न हो और डा० स्वयं को अत्यधिक स्नेह करने के कारण उस अवस्था में यह सोचता है कि हो सकता हो रोग पहचानने में या दवा के चुनाव में गल्ती हो रही हो, इसीलिये प्रायः डा० स्वयं बीमार होने में दूसरों से ही चिकित्सा कराते हैं। और फिर दवा के साथ सहानुभूति की भी तो आवश्यकता होती है जो डा० स्वयं अपने को नहीं दे सकता। देखो न, तुम्हारी सहानुभूति ने मेरे सिर के दर्द को समाप्त कर दिया न।"

"बुखार भी तो कुछ हल्का होता हुआ मालूम हो रहा है।"

"वह तो होगा ही। जिसकी चिकित्सा तुम स्वयं अपने हाथों से कर रही हो उसके पास सिर दर्द और बुखार क्या यदि कोई बड़ा मर्ज होता

तो वह भी न रुकता।"

"बस, बस, रहने दीजिये बहुत हो चुकी तारीफ।"

"यदि वास्तविकता की तारीफ न की जायेगी तो डा० को प्रोत्साहन कहाँ से मिलेगा ?"

"आपकी सेवा भावना से। मरीजों के प्रति आपकी सहानुभूति सेवा-भावना तथा आत्मीयता देख कर कौन प्रोत्साहित नहीं होगा ?"

"क्या कर पाता हूँ मैं—कुछ भी तो नहीं। बस चले तो रोगी को तनिक भी कष्ट न पहुँचने दूँ।"

"आपके विषय में कहते तो लोग यही हैं कि आप रोगी के पास पहुँचे कि रोग भागा।"

"होना तो यही चाहिये, लेकिन यह अतिशयोक्ति है।"

"अतिशयोक्ति में भी कुछ न कुछ सत्य की मात्रा तो निहित रहती ही है।"

डा० कान्त ने रंजना की ओर देखा और मुस्करा दिये। वह भी अपनी मुस्कराहट को बिखरने से न रोक सकीं। रंजना के हाँथ अपने कार्य में व्यस्त थे। वार्तालाप में दोनों को विशेष आनन्द आ रहा था। कुछ समय पूर्व होने वाली घटना को वे लोग इस प्रकार भूल गये थे जैसे हुई ही न हो। रंजना डा० कान्त के व्यक्तित्व से प्रभावित तो पहले से ही थीं; परन्तु इतना सामीप्य कभी न मिल पाया था। बहुत दिनों की अतृप्त आकांक्षा की पूर्ति का अवसर सेविका के रूप में उन्हें मिला था। इस रूप में वह इतनी खोई हुई थीं कि समय का ध्यान ही न रहा। समय का ध्यान तो तब आया जब चम्पा ने चाय की सूचना दी। रंजना के हाथ रुक गये। उन्होंने उठ कर बाहर देखा तो सबेरा हो चुका था। भीतर आकर डा० कान्त की ओर मुस्कराती दृष्टि से देख कर कहा—"सारी रात बीत गई और पता ही न लगा।"

"मैं भी न जान सका कि रात कहाँ चली गई। अब आप फौरन नास्ता कर लीजिये। घर के लोग फिक्र कर रहे होंगे।"

"फिक्र क्यों करेंगे ? मैंने कह जो दिया था यहाँ आने को ।"

"लेकिन यह थोड़े ही कहा होगा कि रात भर वापस नहीं लौटोगी ?"

"हाँ, यह तो नहीं कहा था ।"

"तो फिर चिन्ता करना स्वाभाविक ही है ।" चाय की ओर संकेत करते हुये डा० कान्त ने कहा—"लीजिये चाय पीजिये ।"

"और आप ?"

"मैं जरा रुक कर पियूँगा ।"

"क्यों ?"

"मुझे कुछ इच्छा नहीं है ।"

"वाह ! यह कैसे हो सकता है ? आपको तो इस समय चाय अवश्य लेनी चाहिये ।"

"जब आप नहीं मानती हैं तो लेनी ही पड़ेगी ।" कहते हुये डा० कान्त ने प्याला उठाने की चेष्टा की ।

"रुकिये, वह नहीं । मैं बना कर देती हूँ ।" डा० कान्त को रोकते हुये रंजना ने कहा ।

"क्यों ?"

"इस समय आपको अधिक दूध वाली चाय की आवश्यकता है ।"

रंजना को कप में दूध डालते हुये देख कर डा० कान्त ने कहा—"अरे बस, बस, बस ।" रंजना के चेहरे की ओर देख कर—"इतना दूध ?"

"जी हाँ, आपको इस समय इससे भी अधिक दूध की आवश्यकता है ।"

"तो फिर चाय का नाम क्यों कर रही हैं; दूध ही पिला दीजिये न ।" चाय के पानी की पतली धार को गिरते हुये देख कर डा० कान्त ने कहा ।

रंजना ने कुछ ध्यान न दिया और प्याला उठा कर देते हुये कहा—"लीजिये ।"

डा० कान्त ने प्याला पकड़ लिया । रंजना की ओर देखते हुये उन्होंने एक चुस्की ली । रंजना मुस्करा दीं । वह भी मुस्करा दिये । दोनों कप

और हाथ के बीच से एक दूसरे को देखते हुये चाय पी रहे थे। इसी बीच चम्पा ने परदे के बाहर से पूँछा—"और कुछ चाहिये ?"

"नहीं, लेकिन यहाँ आओ।"

चम्पा को भीतर आया हुआ देख कर रंजना ने कहा—"इसे उठा ले जाओ।"

"क्यों ! कुछ खाइयेगा नहीं ?"

"इस समय आपको केवल दूध की आवश्यकता है।"

"अरे ! मैं अपने लिये नहीं, तुम्हारे लिये कह रहा हूँ।"

"जी हाँ, मैं समझती हूँ कि आप मेरे लिये कह रहे हैं, लेकिन मैं इस समय मरीज का साथ देना चाहती हूँ।"

"लेकिन आप भूँखी होंगी ?"

"जी, मुझे भूख नहीं है।" चम्पा की ओर देख कर अधिकार पूर्ण स्वर में कहा—"ले क्यों नहीं जाती ?"

डा० कान्त कुछ न कह सके। चम्पा ने ट्रे उठाई और बाहर हो गई। रंजना ने खाली प्याला मेज पर रखते हुये कहा—"अब आप दिन भर आराम करिये, कहीं जाइयेगा नहीं।"

"बाहर नहीं निकलूँगा तो काम कैसे चलेगा ?"

"कौन सा काम ?"

"रोगियों का।"

"रोगियों को रोगी की आवश्यकता नहीं है।"

"अब भी मुझे रोगी ही समझ रही हो ? देखो न, बुखार तो बिल्कुल ही उतर गया है।"

"लेकिन अभी आपको आराम की आवश्यकता है।"

"लेकिन मैं तो अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ।"

"जी हाँ, आप पूर्ण स्वस्थ हैं या आधे—इसे मैं भली भाँति जानती हूँ। आप चुपचाप आज दिन भर लेटे रहिये।" पैरों के नीचे पड़ी चादर ओढ़ाते हुये रंजना ने कहा।

"लेकिन वहाँ आने वाले मरीजों का क्या होगा ? मैं कल शाम को भी नहीं जा सका और आज भी ... ... ।"
"नहीं जा सकेंगे ।" रंजना ने डा० कान्त के वाक्य को पूरा कर दिया।
"लेकिन ... ... ।"
"लेकिन, वेकिन कुछ नहीं । आज आप कहीं नहीं जा सकते ।" आज्ञा के स्वर में रंजना ने उठते हुये कहा—"और मैं दोपहर तक आऊँगी। मुझे आप इसी तरह लेटे हुये मिळेंगे ।"
"तुम तो मुझे बिना मर्ज के मरीज बनाये जा रही हो ।"
"तो फिर सेवा का अवसर कैसे मिलेगा ।" कह कर मुस्कान बिखेरते हुये रंजना कक्ष के बाहर हो गईं ।

२५

शीला रात भर न सो सकीं । सुबह होते ही वह बँगले से निकल पड़ीं। यद्यपि रास्ता अपरिचित था, फिर भी पूँछते-पूँछते वह सिनहा के बँगले पर जा पहुँचीं । फाटक बन्द था । बाहर से ही दृष्टि डालने पर एक नौकर लान में कुछ करता हुआ दिखाई दिया । शीला ने उसे पुकारा। वह पास आया । शीला ने उससे पूँछा—"सिनहा साहब हैं अन्दर ?" फाटक खोलते हुये नौकर ने कहा—"हमें नहीं माळूम । आप उस चौकीदार से पूँछ लीजिये ।"
शीला ने किसी से कुछ न पूँछा और अन्दर घुसती चली गईं । नौकरानी ड्राइंग रूम की सफाई कर रही थी । उस पर दृष्टि पड़ते ही शीला ने पूँछा—"सिनहा साहब किस कमरे में हैं ?"
"साहब हियाँ कहाँ हवैं ? उइतौ रात कै अइवै नाही करेन ।"
"तुझे ठीक तरह से माळूम ?"

"सबै कमरा बुहार डारेन, हमका तो कहूँ न दिखाइ परे।"

शीला एक क्षण के लिये किंकर्तव्य विमूढ़ हो गईं। उनकी समझ में ही न आ रहा था कि क्या करें और कहाँ जायँ कि इतने में ही पीछे से आवाज आई—"हल्लो भाभी! आज सुबह-सुबह कैसे?"

"आपसे ही मिलने आई हूँ।" शीला ने घूम कर सिनहा की ओर देखते हुये कहा।

"कहिये कुशल तो है?" सतर्क होकर सिनहा पूँछा।

"मैं घर छोड़ आई हूँ।"

शीला की बात सुन कर सिनहा ने अविश्वास प्रकट करते हुये कहा—"क्यों हँसी कर रही हो भाभी?"

"हँसी नहीं, सत्य कह रही हूँ।" शीला ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

सिनहा जैसे आसमान से जमीन पर गिर पड़े।

"शायद आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है?"

"आप जानते हैं कि झूँठ से मुझे कितनी घृणा है ... ...।" कह कर शीला ने सम्पूर्ण घटना सुना दी। सुनने के पश्चात् आश्चर्य प्रगट करते हुये सिनहा ने कहा—"लेकिन भाई साहब को मैं ऐसा नहीं समझता था।"

"भाई साहब ऐसे थोड़े ही थे, उन्हें तो ऐसा उस चुड़ैल ने बना दिया है।"

"क्या नाम है उसका?"

"नाम तो मैं नहीं जानती उसका।"

"इसके पहिले और कभी देखा है उसे?"

"नहीं।"

"भाई साहब का इतने दिनों से उसका ऐसा सम्बन्ध है और आपको कुछ पता ही नहीं?"

"मैं ऐसा कभी सोच ही नहीं सकती थी। मैं क्या जानती थी कि वह मरीजों के बहाने दिन-रात मुझ से दूर रह कर उसके साथ रंगरेलियाँ मनाया करतें हैं। अगर मुझे जरा भी शक हो जाता तो क्या मजाल

"जरा धीरे से बोलिये। आप एक सभ्य व्यक्ति के यहाँ बैठी हैं। कुछ तो शिष्टाचार का ध्यान रखिये।"

आँखों को सकुचित करते हुयें शीला ने कहा—"आप अपने को सभ्य कहते हैं?"

"मैं क्या सारी दुनियाँ कहती है। मैं पढ़ा-लिखा हूँ, स्वस्थ हूँ, देखने-सुनने में बुरा नहीं हूँ और बँगला, कार आदि सभी कुछ तो है। सभ्य कहलाने के लिये इस जमाने में और क्या चाहिये?"

"कला ठीक कहती थी।" शीला ने धीरे से सिर हिलाते हुये कहा।

"ओह! तो शायद आप कला से मिल कर आ रही हैं। कला ने मेरे विरुद्ध आपसे बहुत गलत-सलत बातें कही होंगी।"

"गलत-सलत नहीं, उसने आपके बारे में जो कुछ भी कहा है, आप उससे भी बढ़ कर हैं।"

"उसका कारण आप हैं। जिस तरह उस औरत ने भाई साहब को आपसे छीन लिया उसी तरह आपने मुझे कला से.........।"

"बस बहुत हो चुका! अब आप मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिये।" शीला ने क्रोध का घूँट पीते हुये कहा।

"फरमाइये?"

"आप मेरी सहायता करने को तैयार हैं या नहीं?"

मैं आपको निराश नहीं करना चाहता, लेकिन इससे अधिक नहीं?" सौ रुपये का नोट जेब से निकाल कर शीला को दिखाते हुये सिनहा ने कहा।

नोट देखते ही शीला के सिर से पैर तक आग लग गई। भीतर ही भीतर सुलगते हुये कहा—"यही दम भरा करते थे सेवा करने का?"

"आप सेवा का अवसर ही कहाँ देती हैं?"

"क्या मतलब?"

'अनजान मत बनो शीला।' उठकर शीला के बगलमें बैठते हुये सिनहा ने कहा—"अगर डा० साहब और उस स्त्री से बदला लेना चाहती हो

तो मेरी.........।"

"खबरदार जो आगे जबान से कुछ कहा।" सिनहा के वाक्य के पूरा होने के पहले ही शीला ने खड़े होकर डाँटा।

"ओ हो! रस्सी जल गई मगर ऐंठन अभी तक बाकी है।" कहते हुये सिनहा उठ कर खड़े हो गये और शीला का हाथ पकड़ अपनी ओर खींचा।

बल पूर्वक शीला ने अपना हाथ छुड़ाते हुये कहा—"नीच, पापी, बदमाश! शरम नहीं आती तुझे।" कहकर शीला तीर की भाँति कमरे से बाहर हो गईं और सड़क पर जा पहुँचीं।

२६

कला अपने कक्ष में बैठे एक अर्धनिर्मित चित्र पर तूलिका चला रही थीं। यह उनका प्रति दिन का कार्य था। निरालस्यभाव से आवश्यक से आवश्यक कार्य छोड़कर भी वह नियमित रूप से अपनी साधना में न चूकती थीं। शीला ने भागते हुये कमरे में प्रवेश किया और सीधे जाकर कोच पर गिर पड़ीं। शीला के सहसा प्रवेश से कला चौंक पड़ीं। कला हाथ की तूलिका एक ओर रखकर शीला के पास आईं और झुक कर पूँछा—"कहाँ गायब हो गई थीं सुबह-सुबह?"

शीला ने हाथ से चुप रहने का संकेत किया।

"आप तो बुरी तरह हाँफ रही हैं।"

"हाँ।" बड़ी मुश्किल से शीला के मुँह से निकला।

"परन्तु क्यों?"

"पानी।"

कला ने पानी लाकर दिया। एक घूँट पीने केपश्चात शीला ने कला को सामने बैठने का संकेत किया।

कला बैठ गईं।

शीला ने पुनः एक घूँट पानी पीते हुये कहा—"आपकी बात सच निकली।"

"कौनसी बात ?"

"सिनहा के विषय में।"

"तो फिर मेरा अन्दाज सही था। मैं जानती थी कि आप सिनहा साहब के ही यहाँ गई होंगी।"

"उसे सिनहा साहब क्यों कहती हो ? उसे तो गुण्डा, बदमाश जो कुछ भी कहा जाय कम है।"

"आखिरकार बातें क्या हुईं ?"

"मैंने कल की घटना उसे सुनाने के पश्चात् सहायता करने को कहा तो उसने सौ रुपये का एक नोट दिखाते हुये कहा—"इससे अधिक सहायता मैं नहीं कर सकता।"

मैंने जब और उसे अजमाना चाहा तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं किसी तरह उसके फँदे से अपनी जान बचा कर भाग आई हूँ।"

"यह अपना सौभाग्य समझो कि उसके चक्कर में नहीं फँसी वरना वह आपको कहीं का न रखता।"

"आज तक मैं उसे एक सज्जन व्यक्ति समझे हुये थी, लेकिन वह अन्दर से कितना पतित है—यह आज जान पाई।"

"मैंने तो आपसे पहले ही उनके विषय में बता दिया था।"

"लेकिन उसने तो मुझे कहीं का न रखा।"

"क्यों, क्या हो गया ?"

"उसी के भरोसे मैंने घर छोड़ा और अब मैं कुछ भी नहीं कर सकती।"

"आप निराश क्यों होती है ? कुछ न कुछ रास्ता निकल ही आयेगा।

मुझसे जो कुछ भी हो सकेगा मैं आपकी सहायता करूँगी। आप घब-ड़ाइये नहीं, धैर्य से काम लीजिये।''

''मुझे तो कोई रास्ता नजर नहीं आता है।

''आप इस वक्त बेहद परेशान हैं। चलिये कुछ खा पी लीजिये चलकर, फिर शान्त चित्त से विचार करेंगे बैठ कर।''

''मुझे भूख नहीं है।''

''है क्यों नहीं ? चलिये, उठिये।''

शीला का हाथ पकड़कर कला स्थानागार तक ले गईं और उन्हें अन्दर करती हुई बोलीं—''जल्दी से हाथ मुँह धोकर साड़ी बदल लो।''

कला के पिता ने किसी कार्यवश उधर से निकलते हुये कला के आदेश का अन्तिम भाग सुनकर पूँछा—''किससे साड़ी बदलने को कह रही हो ?''

''शीला जी से।''

''जिनके विषय में सुबह मुझे बता रही थीं ?''

''हाँ।''

''खाना खाने के बाद मुझसे मिलाना जरा।''

''जी।''

कला के पिता चले गये।

कला तब तक वहीं खड़ी रहीं जब तक शीला स्नानागार से बाहर न निकल आईं।

शीला और कला दोनों ही एक साथ भोजन करने बैठीं। भोजन करने के बाद कला शीला को लेकर अपने पिता के कमरे में जा पहुँची। पैरों की आहट से अपने कमरे में किसी को आया हुआ समझ उन्होंने चश्में के भीतर से ही झाँकते हुये कहा—''आओ शीला बेटी बैठो।''

शीला ने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और आदेशानुसार आचरण किया।

कला के पिता ने पूँछा—''क्या यह सच है कि तुम घर छोड़ आई हो ?''

"हाँ।" शीला ने सिर नीचा किये ही उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"वह मुझे नहीं रखना चाहते हैं।"

"डा० कान्त तो अत्यन्त सज्जन व्यक्ति हैं। उन्होंने अपनी पत्नी को घर से निकाला—यह सुन कर मुझे आश्चर्य हो रहा है।"

"इसका कारण है।"

"क्या ?"

"दूसरी स्त्री।"

"यह तुम क्या कह रही हो ?"

"आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है ? मैं जो कुछ कह रही हूँ सत्य है।"

"हो सकता है कि तुम्हें धोखा हुआ हो।"

"प्रत्यक्ष नेत्रों से देखी हुई घटना को यदि धोखा कहा जा सकता हैं तो अवश्य मुझे धोखा हुआ है।"

"देखने मात्र से तो किसी घटना के कारण को नहीं जाना जा सकता। उसके लिये तो स्वस्थ मस्तिष्क की आवश्यकता होती है।"

"मेरे शरीर पर बने हुये मार के निशान मेरे भ्रम निवारण के लिये यथेष्ट हैं।"

"तो क्या उन्होंने तुम्हें मारा भी है ?"

"ऐसा वैसा नहीं मारा है। मुझे बाहर घसीट-घसीट कर मारा है। यदि मैं भाग न आती तो गोली मार देते वे मुझे।"

"तब तो इसका कोई गम्भीर कारण अवश्य होगा।"

"बता तो दिया आपको, इससे गम्भीर कारण और क्या हो सकता है ?"

"लेकिन तुम्हें उस स्त्री में ऐसी कौन सी विशेषता दिखाई दी जिसके कारण उन्होंने तुम्हारे साथ ऐसा अनुचित व्यवहार किया। तुम लिखी-लिखी मालूम देती हो, स्वस्थ हो, सुन्दर हो और व्यवहार कुशल भी हो फिर कौन सी कमी है जिसने उन्हें उसकी ओर आकर्षित किया ?"

"वैसे मुझे तो उस स्त्री में कोई विशेषता नहीं दिखाई दी, लेकिन वह

क्यों उसकी ओर आकर्षित हुये—इसका उत्तर तो वही दे सकते हैं।"
कला के पिता जी कुछ क्षणों तक कुछ विचार करने के उपरान्त बोले—"देखो शीला ! तुम मेरी बेटी कला की सहेली हो, इसलिये मैं भी तुम्हें बेटी की ही दृष्टि से देखता हूँ। मैं एक पिता की हैसियत से तुम्हारा शुभचिंतक हूँ। मैं नहीं चाहता कि तुम सिनहा जैसे धूर्त भेड़ियों की शिकार बनो। अपना घर छोड़ने के अतिरिक्त मनुष्य को दर—दर ठोकर खाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त होता। और फिर तुम स्त्री जाति ठहरीं। स्त्री प्रकृति से कोमल होती है। उसमें पुरुष जैसी संघर्षों से लडने की क्षमता नहीं होती। और अगर मैं यह स्वीकार भी कर लूँ कि तुम समस्त विघ्न बाधाओं से लड़ने की शक्ति रखती हो तो यह संसार ऐसा है कि तुम जैसी निराश्रित स्त्री को चैन से नहीं बैठने देगा।"
शीला बैठी चुपचाप एक-एक शब्द सुन रही थीं।
कला के पिता ने आगे कहना प्रारम्भ किया—"प्रत्येक स्त्री पुरुष को एक दूसरे के सहयोग की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की उपेक्षा करने वाले का जीवन महान कष्टकारक होता है। तुमने अभी अपने जीवन का प्रभात ही देखा है। तुम्हारे सामने अभी बहुत लम्बा जीवन पड़ा है। अकेले इस जीवन-नौका को कैसे खे सकोगी ?"
वह एक क्षण के लिये रुके और आत्मविश्वास के साथ बोले—"मैं भली भाँति जानता हूँ, कि डा० साहब ऐसे व्यक्ति नहीं हैं। यदि उन्होंने ऐसा किया भी है तो भावावेश में कर गये होंगे। आखिरकार वह भी मनुष्य हैं। गलती हर व्यक्ति से होती है। आवेश की अवस्था में मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है। उचित-अनुचित का उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहता। ऐसी अवस्था में भीषण सेभीषण अपराध हो जाते हैं, परन्तु कुछ समय पश्चात जब वह शान्त० मस्तिष्क से अपने आचरण का विश्लेषण करता है तो अपने को दोषी पाकर आत्मग्लानि से भर जाता है। उस समय उसे कितनी वेदना

होती है, इसका अनुभव तुम नहीं कर सकतीं। वह विवेकी पुरुष हैं, देश-विदेश घूमे हैं, जगह-जगह का अनुभव है उन्हें। हजारों तरह के प्राणियों से उनका साक्षात्कार हुआ है। उन्होंने अवश्य अपनी भूल अनुभव की होगी। अब मेरी इच्छा तो यही है कि तुम सीधे अपने घर जाओ। वह अवश्य तुम्हें अपनायेंगे।"

कला के पिता ने जैसे शीला के नेत्र खोल दिये। उन्हें पति की सरल, स्वाभाविक एवं सौजन्यपूर्ण मुद्रा समक्ष दिखाई देने लगी। पति का एक-एक आचरण चित्रित हो उठा। अपरिचित व्यक्ति के मुँह से अपने पति की प्रशंसा सुनकर शीला के हृदय में पति-प्रेम की तरंगे हिलोर लेने लगीं। वह भूल गई अपने साथ किये गये दुर्व्यवहार को।

शीला को विचार मग्न देखकर कला के पिता ने कहा—"अगर अकेले जाने का साहस न होता हो तो मैं साथ चलूँ।"

शीला चौंक पड़ी—नहीं, आपको कष्ट उठाने की जरूरत नहीं, मैं अकेले ही चली जाऊँगी।"

"बेटी ! इसमें कष्ट की कौन सी बात है ? अगर एक उजड़ा हुआ घर बस जाय तो इससे अच्छा कार्य और कौन सा हो सकता है।"

"नहीं, मैं अकेले ही जा रही हूँ।" शीला ने उठते हुये कहा।

"लेकिन धूप तो काफी तेज है बाहर। कला जाओ शीला को कार से भेज आओ।"

"लेकिन पिता जी इतनी जल्दी क्या पड़ी है? शाम तक चली जायेगी। जरा आराम तो कर लेने दीजिये।"

"अब यह इनकी इच्छा पर निर्भर है।" कह कर वह अपने कागज पत्र उलटने-पुलटने लगे।

कला शीला को लेकर अन्य कक्ष में चली गई।

अनेकानेक संकल्पों-विकल्पों के अन्तर्द्वन्द में दिन तो किसी प्रकार कट गया, परन्तु संध्या के कुछ क्षण काटने शीला के लिये कठिन हो गये। बार-बार वह घड़ी की ओर दृष्टि ले जातीं और फिर गहन होती हुई कालिमा पर दृष्टिपात करतीं, परन्तु उन्हें ऐसा प्रतीत होता जैसे यह संध्या द्रोपदी का चीर बन गई हो। यह तो मानव मन की विचित्रता है कि जिस किसी वस्तु पर वह ध्यान एकाग्र करता है वही दीर्घ प्रतीत होती है। उपेक्षित वस्तु की समाप्ति का ज्ञान उसके अन्त होने पर ही होता है। यह मनुष्य का भ्रममात्र है। समय की गति एक है। संध्या की सघन कालिमा के साथ ही शीला बँगले से निकल पड़ीं। यद्यपि कला ने बहुत चाहा कि उन्हें वह कार द्वारा पहुँचा दें, परन्तु शीला न मानीं और पैदल ही चल दीं। शनैः शनैः दूरी कम होती गई और अपना बँगला आ गया। शीला फाटक के पास पहुंचने ही वाली थीं कि अन्दर से कार आती हुई प्रतीत हुई। शीला ने ध्यान से देखा तो उसमें डा० कान्त और वही स्त्री दिखाई पड़े। वह देखते ही एक क्षण के लिये ठिठक गईं, परन्तु कुछ सोचकर आगे बढ़ीं। फाटक पर खड़े रक्षक ने आगे बढ़कर बड़े उत्साहपूर्वक स्वागत किया—"आप बीबी जी!" शीला बिना ध्यान दिये ही आगे बढ़ती गईं। ड्राइंग रूम में भीतर प्रवेश किया। चारो ओर दृष्टि डाली, परन्तु कोई भी परिवर्तन परिलक्षित न हुआ। प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर वैसी ही रखी थी जैसी वह छोड़ गई थीं। दीवाल पर लगे पति के बड़े तैल चित्र पर घूमती हुई उनकी दृष्टि रुक गई। शीला का आगमन आग की तरह फैल गया। सभी नौकर शीला के देखने को उत्सुक थे, परन्तु उनके समक्ष जाने का साहस किसी को न हो रहा था। चम्पा मुँह लगी होने के कारण भीतर जाकर चुपचाप पीछे खड़ी हो गई, परन्तु उसका आगमन शीला से छिपा न रह सका। शीला ने मुड़कर देखा तो चम्पा को

सिर झुकाये खड़ा पाया। वह उसके पास गईं और सिर पर हाथ फेरते हुये पूछा—"तू चुपचाप क्यों खड़ी है?"

चम्पा फिर भी वैसी खड़ी रही। उसकी ठोढ़ी को हाथ से ऊपर की ओर उठाया और चेहरे की ओर देखते हुये शीला ने कहा—"अरे यह क्या! तू तो रो रही है?"

"आप हम सबको छोड़कर कहाँ चली गई थीं?"

"कहीं तो नहीं, तेरे सामने ही तो खड़ी हूँ।"

"कल से न जाने कैसा-कैसा लग रहा है।"

"कैसा लग रहा है?"

"क्या बताऊँ, कैसा लग रहा है। आपके बिना कुछ नहीं अच्छा लगता।"

"सिर्फ तुझे या और किसी को भी?"

"सभी को।"

"सभी को?"

चम्पा समझ गई कि सभी से उनका तात्पर्य डाक्टर साहब से है। उसने उदासीनता का अभिनय करते हुये कहा—"साहब तो कल से उनके अलावा किसी से बोले ही नहीं है।"

"उनके— कौन?"

"अरे वही डाक्टर जो कल आपके सामने ही आ गई थीं।"

"क्या वह डाक्टर हैं?"

"हाँ रामू आज बता रहा था कि वह साहब के अस्पताल में ही बैठती हैं।"

"क्या वह आज दिन में यहीं रही हैं?"

"दिन में ही नहीं रात में भी रही हैं। साहब की तबियत ठीक नहीं थी। उन्होंने उनका बुखार देखा, दवा दी और काफ़ी देर तक सिर दबाती रहीं।"

"कहाँ बैठ कर दबा रही थीं उनका सिर?"

"पलंग पर ही बैठी थीं।"
"कुछ बातें भी हुई थीं ?"
"बातें तो मैं न सुन सकी थी, परन्तु सुबह जब मैं चाय लेकर गई तब दोनों लोग खुश थे।"
शीला के मन में क्रोधाग्नि भभक उठी। पति से क्षमा माँगने की भावना न जाने कहाँ विलीन हो गई और उसके स्थान पर प्रतिशोध की भावना पुनः प्रज्वलित हो उठी। दाँत पीसती हुई शीला बोलीं—"हूँ ! तो यह बात है।" कहकर शीला फौरन लौट पड़ीं और तेजी के साथ बँगले के बाहर हो गईं।
चम्पा खड़ी उनका अप्रत्याशित जाना देखती रह गई।
शीला के जाने के थोड़ी देर बाद डा० कान्त की कार ने भीतर प्रवेश किया। कार पोर्टिको में आकर रुक गई। डा० रञ्जना ने भी डा० कान्त के साथ ड्राइंग रूम में प्रवेश किया। निराशा पूर्ण स्वर में डा० कान्त ने कोच पर बैठते हुये कहा—"अब आप ही बताइये कहाँ ढूँढ़ा जाय उसे ?"
इसके पूर्व कि रञ्जना कुछ उत्तर दें चम्पा परदा हटा कर आ खड़ी हुई। चम्पा पर दृष्टि पड़ते ही डा० कान्त ने पूँछा—"क्या है ?"
"बीबी जी आई थीं।"
"कब ?" डा० कान्त का चरम औत्सुक्य व्यक्त हो गया।
"आपके जाने के बाद ही।"
"कहाँ हैं वह ?"
"अभी थोड़ी देर हुये चली गईं।"
"कुछ कह गई हैं ?"
"बात तो काफी देर तक मुझसे करती रहीं, परन्तु यकायक न जाने उन्हें क्या हो गया और बिना कुछ कहे चली गईं।"
"किस तरफ गई हैं ?"
"दाहिनी ओर।"

रञ्जना की ओर देखते हुये डा० कान्त ने कहा—"आप ज़रा यहीं बैठिये मैं अभी देख कर आता हूँ।"

"जाइये।"

डा० कान्त ने कार स्टार्ट की और दाहिनी ओर जाती हुई सड़क पर कार दौड़ाने लगे।

रञ्जना ने चम्पा को पास बुला कर पूँछा—"क्या-क्या बातें हुई थीं तेरी उनके साथ?"

"आपके बारे में ही पूछती रही थीं।"

"क्या—क्या पूँछा था उन्होंने मेरे बारे में?"

"उन्होंने पूँछा था कि आप दिन में यहाँ रही थीं या नहीं।"

"तो तूने क्या कहा था?"

"मैंने कह दिया दिन में ही नहीं रात को भी रही थीं।"

"और क्या कहा था तूने?" रञ्जना का हृदय आशंका से भर गया था।

"मैंने कह दिया कि आप साहब का सिर दबाती रही हैं।" चम्पा ने डरते हुये कहा।

"तो फिर उन्होंने क्या कहा?"

"उन्होंने कुछ नहीं कहा और दाँत पीसती हुई तेजी के साथ चली गईं।"

डा० रञ्जना की बेचैनी बढ़ गई। उन्हें समझते देर न लगी कि शीला क्यों आकर चली गईं। जिस बात का उन्हें भय था वही होकर रही। आखिरकार शीला को भ्रम हो ही गया। भ्रम निवारण के लिये रञ्जना का मन अशान्त हो उठा। डा० कान्त के लौटने की प्रतीक्षा बड़ी व्यग्रता से वह करने लगीं।

चम्पा अब भी वहीं अपराधी की भाँति सिर नीचा किए हुये खड़ी थी। अपना ध्यान उसकी ओर आकर्षित होते ही उन्होंने पूँछा—"कुछ बता गई हैं कि वह कहाँ रहीं कल से आज तक?"

"जी नहीं।" चम्पा का उत्तर बड़ा ठण्डा था।

रञ्जना मौन हो गई ।

थोड़ी देर में डा० कान्त के प्रवेश करते ही रञ्जना ने अपनी उत्सुकता व्यक्त की—"मिलीं ?"

"नहीं ।" डा० कान्त ने बैठते हुये अपनी निराशा व्यक्त की ।

"मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि वह यहाँ आकर चली क्यों गई ?"

"इसका कारण मैं हूँ ।"

डा० कान्त के आते ही चम्पा वहाँ से चली गई थी ।

"तुम तो कल से अपने को हर बात का कारण बता रही हो ।"

"बता नहीं रही हूँ बल्कि हूँ ।"

"कैसे ?"

"वह यही जान कर तो यहाँ से चली गई हैं कि मैं यहाँ रात को रह कर आपका सिर दबाती रही हूँ ।"

"उसे कैसे मालूम यह सब ?"

"चम्पा के द्वारा उन्हें मालूम हुआ है ।"

"लेकिन इसमें बुरा मानने की कौनसी बात है ? डाक्टर और नर्स तो मरीज की आवश्यकता पड़ने पर सेवा करते ही हैं ।"

"आप नहीं समझ सकते । मेरा आचरण बुरा तो तब न होता जब वह मुझे डाक्टर और आपको मरीज समझतीं ।"

"उसकी समझ पर तो पत्थर पड़े हैं । न जाने आज कल क्या हो गया है उसें ? व्यर्थ की शंका करके अपना जीवन नष्ट किये डाल रही है ।"

"मेरा विचार है कि सम्भवतः वह एक बार फिर यहाँ आयेंगी ।"

"और उसी तरह वापस चली जायेगी ।"

"नहीं, अब ऐसा नहीं होने पायेगा ।"

"कैसे ?"

"मैं यहाँ का आना-जाना बन्द कर दूँगी, बस ।"

"नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता । मैं कभी भी तुम्हारा व्यर्थ में

कलंकित होना सहन नहीं कर सकता।"

"तो क्या आप अपना पारिवारिक जीवन दुखी बनाना चाहते हैं?"

"अभी कौन सुखी है?"

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है डाक्टर साहब! अगर मेरे कलंकित होने से आपका पारिवारिक जीवन सुखी हो सकता है तो मैं सहर्ष यह दोष अपने सिर मढ़ने को तैयार हूँ।"

"लेकिन यह क्यों भूल जाती हो कि साथ में मैं भी कलंकित होऊँगा।"

"आप पुरुष हैं। पुरुष जाति के लिये कलंक जैसी चीज का निर्माण हुआ ही नहीं है।"

"वाह यह कैसे हो सकता है! क्या अदालत स्त्री के समान पुरुष को सजा नहीं देती है?"

"देती है; परन्तु स्त्री जाति का जीवन न्याय व्यवस्था की अपेक्षा सामाजिक व्यवस्था द्वारा अधिक संचालित होता है।"

"मुझे ऐसी सामाजिक व्यवस्थाओं पर कोई आस्था नहीं जो स्त्री-पुरुष में भेद रखती हो। व्यवस्था तो वही अच्छी होती है जो स्त्री-पुरुष दोनों के लिये समान हो। व्यवस्थाओं का निर्माण मनुष्य अपनी सुख-सुविधा के लिये करता है। जब ये कष्टकारक एवं प्रगति के मार्ग में बाधा स्वरूप प्रतीत होने लगें तो इन्हें समूल उखाड़ फेंकना ही श्रेयष्कर होता है। मुझे ऐसी व्यवस्थाओं एवं नियमों से घृणा है जिनमें समय, देश तथा पात्रानुकूल परिवर्तन नहीं होता है।"

"यह परिवर्तन तो समाज के अन्तर्गत निवास करने वाले प्राणियों पर निर्भर है। वे चाहें तो परिवर्तन क्या उसे समाप्त भी कर सकते हैं, लेकिन मोहवश वे एसा नहीं कर पाते।"

"मैं ऐसे प्राणियों को सामाजिक नहीं मानता, बल्कि वे समाज के लिये अभिशाप हैं। मुझे सामाजिक बन्धनों से उसी दिन घृणा हो गई थी जिस दिन उसने शीला को ठुकराने को कहा था। मैं नहीं परवाह करता ऐसे समाज की।"

"लेकिन आप जैसे साहसी और स्वतन्त्र विचारक हैं ही कितने लोग ?"

"मेरे जैसे लोगों की संख्या चाहे कितनी ही कम हो, लेकिन मुझे आश्चर्य तो इस बात पर हो रहा है कि तुम जैसी समर्थ नारी भी यदि सामाजिक अत्याचारों को शिक्षा स्वीकार कर लेगी तो बेचारी उन बे-जबान और निरीह अबलाओं का क्या होगा जो अत्याचार की चक्की में पिस रही हैं ?"

"सामर्थ्य विरोध प्रदर्शन के लिये ही तो नहीं होती।"

"तो फिर क्या अत्याचार सहने के लिये होती है ?"

"जी नहीं। सामर्थ्य तो सहन शक्ति का दूसरा नाम है। मनुष्य को विरोध करना चाहिये, लेकिन संहारात्मक नहीं। आप जिस परम्परा का विरोध करने के लिये मुझे प्रेरित कर रहे हैं वह विनाशकारी अधिक है।"

"कैसे ?"

"आप चाहते हैं कि मैं यहाँ निरन्तर आती जाती रहूँ। मेरा यह आना जाना आपकी पत्नी को असह्य है। मेरे और आपके बीच के अनुचित सम्बन्ध की कल्पना ने ही यह परिस्थिति पैदा कर दी है कि एक सम्भ्रान्त परिवार की महिला होकर भी न जाने कहाँ मारी-मारी घूम रही हैं। अगर मैं आपके आदेशानुसार यहाँ आती रही हो तो आपका पारिवारिक जीवन विनष्ट हुये बिना न रहेगा।"

"मैं तुम्हारी बात का विरोध नहीं करता डाक्टर, लेकिन आपका आना जाना बन्द करने से उसकी अनुचित धारणा और अधिक पुष्ट होगी जो सम्भवत: जीवन पर्यन्त निर्मूल नहीं होगी। मैं नहीं चाहता कि उसके मानसिक विकार के समक्ष हम लोग झुकें।"

"झुकना तो मैं भी नहीं चाहती, लेकिन आपको इस समय एक सेविका की आवश्यकता है, आपकी तबियत ठीक नहीं रहती और पत्नी का अभाव आपको अवश्य खटकता होगा।"

"बिछुड़ जाने पर अभाव तो छोटी से छोटी वस्तु का खटकता है

और फिर पत्नी तो बहुत महत्वपूर्ण जीवन का अंग है, परन्तु तुम्हें बता ही चुका हूँ कि चम्पा द्वारा यह जानने पर भी कि मेरी तबियत ठीक नहीं है, शीला ने अपने कार्यक्रम में कोई परिवर्तन न किया और मैं प्रतीक्षा करता रहा। ऐसी स्त्री से मैं क्या आशा करूँ। यदि तुम भी दूर हो गईं तो मैं बिल्कुल ही बेसहारा हो जाऊँगा। अभी मेरी तबियत ठीक नहीं है, बुखार बना ही रहता है, कमजोरी भी काफी अनुभव करता हूँ, इस समय मुझे उसकी अपेक्षा तुम्हारी अधिक आवश्यकता है।"

"मैं नहीं चाहती कि कुछ दिन पश्चात् हम लोगों के सम्बन्ध पर और लोग हँसें।"

"क्यों, लोग क्यों हँसेंगे ?"

"भविष्य के गर्भ की बात नहीं समझी जा सकती। आगे चल कर पता नहीं हम लोगों के सम्बन्धों का क्या स्वरूप हो।"

"जो भी स्वरूप होगा मैं निभाने को तैयार हूँ। हम लोग समझदार हैं, भरसक चेष्टा करेंगे कि हम लोगों के सम्बन्ध आज की भाँति सदैव मृदुल बने रहें।"

"सो तो रहेंगे ही, लेकिन............।"

"लेकिन क्या ?"

"............"

"बोलो न डाक्टर, चुप क्यों हो गईं ?"

"कुछ नहीं डाक्टर साहब, मैं जरा अपने को टटोल रही थी कि आने वाली भावी विषम परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता है या नहीं।"

"भावी परिस्थितियों के लिये अभी से भयभीत होने की क्या आवश्यकता ? जब आयेगी तब देखा जायगा।"

"आप जैसा ही साहस तो अपने में नहीं पा रही हूँ।"

"हर स्त्री अपने को शक्तिहीन अनुभव करती है, परन्तु अवसर पड़ने

पर वह पुरुष से भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध होती है। संकटों का सामना करने की क्षमता जितनी स्त्रियों में होती है उतनी पुरुषों में नहीं।"

"क्यों ?"

"प्रतिकूल परिस्थितियों से टक्कर लेने के लिये त्याग की आवश्यकता होती है, और स्त्रियाँ त्याग की साक्षात प्रतिमा होती हैं।"

"यह तो समय आने पर देखा जायगा कि मैं त्याग और शक्ति की प्रतिमा हूँ या मिट्टी की।"

"मिट्टी की प्रतिमा तो हर प्राणी है, लेकिन उसके अन्दर जो नारीत्व स्थापित है उससे तो इन्कार नहीं कर सकतीं।"

"इन्कार तो मैं आपकी किसी बात से नहीं करती, आपकी हर आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।"

"तो फिर तुम्हारा आना जाना बन्द नहीं होगा न ?"

"जैसा आप चाहेंगे।"

"खूब बहुत खूब ! यही तो मैं सुनना चाहता था तुम्हारे मुँह से। अब जो कुछ भी होगा उससे मैं निपट लूँगा।" कह कर डा० कान्त ने ज्यों ही आराम से बैठने के लिये गरदन को सीधी करके कोच की पीठ टिकाई त्यों ही दृष्टि घड़ी पर पड़ी। घड़ी की ओर देखते हुये डा० कान्त ने कहा—"घड़ी में तो बारह बज रहे हैं।"

"ओह तब तो गजब हो गया। माता जी बहुत चिंतित हो रही होंगी।"

"तो क्या तुम्हारे यहाँ होने की उन्हें सूचना नहीं है ?"

"नहीं, आज मैं नहीं कह आई थी।"

"तो फिर ?"

"मेरा वहाँ पहुँचना बहुत आवश्यक है।"

"लेकिन रात काफी हो चुकी है।"

"तो क्या हुआ ? आप कोई नौकर मेरे साथ कर दीजिये, मैं चली जाऊँगी।"

"चलो मैं ही चलता हूँ साथ।" कुछ सोच कर डा० कान्त ने कहा।
"आप ! नहीं आपकी तबियत ठीक नहीं है। आप रहने दीजिये।"
"देखिये, समय खराब हैं। इधर सन्नाटा भी काफी रहता है। मैं आपको असुरक्षित ढंग से नहीं भेज सकता।"
रञ्जना मौन होकर विचार करने लगीं। डा० कान्त ने मौन भंग करते हुये कहा—"सोच क्या रही हो, अभी दस मिनट में पहुँचा कर लौट आऊँगा।"
"जी नहीं रहने दीजिये। मैं आपको ऐसी हालत में कष्ट नहीं देना चाहती। मैं नहीं जाऊँगी।"
"यह तो और भी अच्छा है।"
"अच्छा अब आराम करिये। अभी आपको आराम की सख्त जरूरत है।"
"और तुम ?"
"मैं यहीं इसी कोच पर लेट रहूँगी।"
'नहीं, उस कमरे में आप जाइये।" एक कमरे की ओर संकेत करते हुये डा० कान्त ने कहा।
रञ्जना उठ कर सीधे निर्देशित कमरे के अन्दर चली गईं।

२८

शीला लौट कर कला के यहाँ पहुँचीं। कला किसी पुस्तक के पन्ने पलट रही थीं। शीला को सामने द्वार से भीतर घुसता हुआ देख कर पूँछा—"अरे तुम तो वापस आ गईं ?"
"हाँ, मैं वापस लौट आई।" शीला ने बैठते हुये कहा।

"लेकिन क्यों ?"
"क्यों क्या, वहाँ एक ही औरत रह सकती है। या तो वह रहेगी या मैं।"
"डा० साहब मिले थे ?"
"हाँ, मैं फाटक पर पहुँचने ही वाली थी कि वह उसके साथ कार में बैठे हुये बाहर निकले और चले गये।"
"और तुमने उन्हें अपने आगमन से परिचित नहीं कराया ?"
"उन्हें उससे फुरसत मिले तब न। रात भर वहीं रही है वह।"
"यह कैसे मालूम हुआ ?"
"चम्पा के द्वारा।"
"यह चम्पा कौन है ?"
"नौकरानी।"
"क्या बताया उसने ?"
"वह रात भर वहीं उन्हीं के कमरे में रही है।"
"यह तो बहुत बुरा हुआ। अब तो उन्हें काफी स्वतन्त्रता मिल गई।"
"कला बेटी !" इसी बीच में कला के पिता राय साहब की आवाज आई।
"जी, पिता जी।" कला ने ऊंचे स्वर में कहा।
"अरे, जरा यहाँ आकर तो देखो—कौन आया है।"
"आई पिता जी !" कह कर कला बाहर आ गई।
"ओह ! भाई साहब आप !" कला का आश्चर्य प्रकट हो गया।
"हाँ, बेटी अभी-अभी तो चले आ रहे हैं, रास्ते में मैं मिल गया।"
"लेकिन आपने पहले से सूचना क्यों नहीं भेजी थी ? मैं स्टेशन पर आ जाती लेने।"
"एक सरकारी काम ही ऐसा आ पड़ा कि तुम्हें सूचित करने का मौका ही नहीं मिला।"
"अच्छा क्या लाये हैं मेरे लिये ?" कला ने भाई कौशल के चेहरे की

ओर देखते हुये पूँछा।

"कह तो दिया कि मौका ही नहीं मिला।"

"हर बार आप यही बहाना करते हैं। जाइये, मैं नहीं बोलती आपसे।"

"रूठ गईं बस!" जेब से एक फोटू निकाल कर दिखाते हुये कहा—"लो, यह तुम्हारे लिये लाया हूँ।"

कला ने फोटू हाथ में लेते हुये कहा—"यह क्या, यह तो फोटू है किसी का।"

"हाँ, ये मेरे मित्र हैं। आई. ए. एस. हैं। इनके पिता जी भी काफी सम्पत्ति छोड़ गये।"

"हाँ बेटी, मैं भी इनके पिता को जानता हूँ। मेरे काफी मिलने वालों में से थे।"

"लेकिन मेरा इन सब बातों से क्या सम्बन्ध?"

"अभी तो कोई सम्बन्ध नहीं है, लेकिन होने वाला है।" कौशल ने कहा।

"तो यह कहिये कि मेरी स्वतन्त्रता छीनने की तैयारी की जा रही है। मुझे नहीं देखनी है कि किसी की फोटू–वोटू।" कह कर कला ने फोटू फेंक दी और कमरे के बाहर जाने लगीं।

"देखो बेटी! अब तुम समझदार हो गई हो। जरा बुद्धि से काम लो। आखिरकार एक न एक दिन तो ब्याह होना ही है।"

"जी, नहीं, एक न एक दिन नहीं; कभी नहीं होना है।"

"देखो कला! अब तुम्हारी जिद नहीं चलने की।" राय साहब के स्वर में जरा तेजी थी।

कला ने पिता के उस परिवर्तित रुख को भाँप लिया और धीमे स्वर में कहा—"मैं जिद्द कहाँ कर रही हूँ, मैं तो केवल शादी न करने की बात कह रही हूँ।"

"यह जिद्द नहीं तो और क्या है?"

"आप क्यों मुझे जीवन भर के लिये किसी की दासी बनाना चाहते हैं?"

"अरे कला ! वह बहुत ही स्वतन्त्र विचारों के व्यक्ति हैं। वहाँ तुम्हारी स्वतन्त्रता में कोई कमी नहीं आने पायेगी।"

"यह तो आप इस समय मुझे समझाने के लिये कह रहे हैं; लेकिन मैंने शीला जी के प्रति किये गये पति द्वारा अत्याचार को देखा है। डा० कान्त जैसे स्वतन्त्र विचार वाले भी जब अपनी पत्नी के साथ ऐसा व्यवहार कर सकते हैं तो सभी कर सकते हैं।"

"शीला बेटी गई अपने यहाँ ?" रायसाहब ने पूछा।

"हाँ गई थीं, लेकिन वापस आ गई हैं।"

"क्यों ?"

"पति के आचरण को देखकर।"

"क्या देखा उन्होंने ?"

"उसी स्त्री के साथ मौज लेते हुये।"

"लेकिन लौट क्यों आईं ?"

"तो क्या फिर लात, घूसे और गालियाँ खाती ?"

"मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर यह सब क्यों हो रहा है ?"

"आप तो अपनी ही तरह सारी दुनियाँ को समझते हैं।"

"सारी दुनियाँ न सही मेरी तरह, लेकिन कुछ लोग तो हैं ही मेरे जैसे और डा० कान्त को भी मैं उन्हीं में से एक समझता हूँ।"

"बाहर से वह बड़े सरल और स्वतन्त्र विचारों वाले प्रतीत होते हैं, लेकिन अन्दर उनके क्या है इसे तो आप नहीं जानते।"

रायसाहब ने कुछ सोच कर कहा—"अच्छा ! सुबह मैं स्वयं शीला बेटी के साथ डा० कान्त से मिलने जाऊँगा।" रायसाहब ने वाक्य समाप्त ही किया था कि फोन की घंटी बज उठी। बगल में रखे हुये चोंगे को उठा कर कान से लगाया। एक क्षण सुनने के उपरान्त वह चौंक पड़े—"क्या कहा......कैसे......हाँ......पुलिस की मदद क्यों नहीं ली......यह तो बड़ा गजब हो गया......अभी रवाना होता हूँ।" राय-

साहब ने फोन रखते हुये कहा—"कलकते के मिल में मजदूरों ने आग लगा दी है।"

"आग लगा दी है।" कला चौंक पड़ीं।

"लेकिन मैं तो ठीक हालत में छोड़ कर आया था!" कौशल बोल पड़े।

"आजकल मजदूर किस समय क्या कर बैठें कुछ कहा नहीं जा सकता।"

सभी लोगों के घबड़ाहट पूर्ण स्वर सुनकर शीला अन्य कक्ष में बैठी न रह सकीं और आकर पूँछा—"क्या हो गया है?"

"कलकत्ते के मिल में आग लग गई है बेटी! मैं इसी गाड़ी से जा रहा हूँ। तुम जब तक मैं न लौट आऊँ तब तक यहीं रहना—कहीं जाना नहीं।"

"जी।" शीला का स्वर फूट पड़ा।

कौशल शीला की ओर देख रहे थे। शीला ने भी सर्व प्रथम कक्ष में घुसते हुये कौशल को देखा था, परन्तु शीघ्र ही दृष्टि हटा ली थी। लगातार कुछ क्षणों तक शीला की ओर देखने के उपरान्त कौशल ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की—"क्या शीला जी आप ही हैं?"

"हाँ।" कला ने उत्तर दिया।

शीला ने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। कौशल ने भी हाथ जोड़ दिये।

"अच्छा, तुम लोग जरा मेरी तैयारी करवाओ जल्दी से। गाड़ी छूटने में केवल एक ही घंटा रह गया है।" कुछ कागज-पत्र समेटते हुये रायसाहब ने कहा। कुछ ही देर में सारा सामान बँध कर तैयार हो गया और रायसाहब ने चलते हुये कहा—"कला! शीला बेटी को कोई तकलीफ न होने पावे। जरा ध्यान रखना।"

"आप बेफिक्र रहिये।" कला की अपेक्षा कौशल ने उत्तर दिया।

कला और शीला दोनों ही कौशल की ओर देखती रह गईं। तीनों एक साथ मुस्करा दिये।

रायसाहब की कार फाटक के बाहर हो गई।

२९

रात भर घर से बाहर रहने के बाद प्रातः जब रञ्जना लौटीं तब माँ को द्वार पर बैठे प्रतीक्षा करते पाया। माँ को देखकर रञ्जना ने कहा–
"माँ ! यहाँ दरवाजे पर क्यों बैठी हो ?"
"अगर तू रात-रात भर घर के बाहर रह सकती है तो क्या मैं बाहर दरवाजे पर भी नहीं बैठ सकती ?"
माँ के वाक्य में निहित व्यंग्य को रञ्जना को समझते देर न लगी। चेहरे पर मुस्कान लाते हुये रञ्जना ने कहा—"मुझ से रूठ गई हो माँ ?"
"मैं कौन होती हूँ तुझसे रूठने वाली ?"
"माँ।"
"मैं तेरी माँ-वाँ कोई नहीं।" कहते ही रञ्जना की माँ की आँखों में आँसू छलछला आये।
रञ्जना ने माँ को दुःखी देखकर उठाया और अन्दर ले चलीं। बगल में बैठते हुये रञ्जना ने कहा—"माँ मुझसे गल्ती हुई जो मैं तुम्हें बता नहीं गई।"
"तू रोज यही कहती है।"
"नहीं माँ, दरअसल बात.........।"
"मैं कुछ नहीं सुनना चाहती। रञ्जना की बात काट कर माँ ने कहा।
"माँ ! सुन तो लो।"
"कहाँ तक सुनू; किसकी—किसकी सुनूँ ? तेरी सुनूँ या और लोगों की सुनूँ।"
"और लोगों का मतलब ?"
"तू सोचती है कि जो आज कल तू दिन-दिन, रात—रात भर घर से बाहर रहती है—अच्छा करती है ?"
"तो माँ इसमें बुराई ही क्या है ?"

"तू अभी बच्ची है। समाज को नहीं जानती। तेरी स्वच्छन्दता लोगों को खटकने लगी है। लोग—बाग तेरे विषय में न जानें कैसी—कैसी बातें करने लगे हैं।"

"किसी ने तुम से कुछ कहा माँ ?"

"मुझसे तो अभी तक किसी को कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ी है; लेकिन क्या मेरे कान तक खबरें नहीं पहुँचती। अभी कल ही शाम को रज्जन अपनी बहिन को डाँटता हुआ कह रहा था—"तुम पर भी रञ्जना को देखकर रंग चढ़ा रहा है। वह अगर दिन-रात घर के बाहर रहती है तो रहे, लेकिन तू ने अगर घर से बाहर पाँव निकाला तो पाँव तोड़कर रख दूँगा।" अब बोल बेटी ! तू ही बता, क्या तेरे विषय में ये बातें मुझसे सुनी जाती हैं ?"

"जैसा वह स्वयं नीच है वैसा ही दूसरों को भी समझता है।" रंजना का आवेशपूर्ण स्वर फूट पड़ा।

"उसे कौन नहीं जानता कि वह बदमाश है, नीच है दुष्ट है, लेकिन उसके कथन में निहित सत्य की तो उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

"तुम भी मुझे सन्देह की दृष्टि से देखने लगीं ?" रञ्जना ने माँ की ओर घूरते हुये कहा।

"सन्देह की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक शुभचिंतक की दृष्टि से तो तुझे देखने का मुझे अधिकार है ही जिसे कि मैं अपने जीवन का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व समझती हूँ।" रञ्जना के सिर पर हाँथ फेरते हुये माँ ने कहा—"उनकी तू एकमात्र निशानी मेरे पास है। अगर वह होते तो मुझे कोई चिन्ता न होती। उनकी अनुपस्थिति में मैं ही तेरी माँ और बाप हूँ। मैं नहीं चाहती कि मेरे रहते तुम कोई ऐसा कदम उठाओ जिससे उनकी आत्मा को ठेस पहुँचे।"

"माँ क्या तुम्हें अपनी बेटी पर विश्वास नहीं ?"

"माँ अगर अपनी बेटी पर विश्वास न करेगी तो फिर किस पर करेगी,

लेकिन बेटी ! यही विश्वास कभी-कभी ऐसा विष बन जाता है जो प्राण लेकर ही रहता है। तू पढ़ लिखकर डाक्टर बन गई है, बहुत समझदार हो गई है और आदमियों के बराबर कमाने भी लग गई है। अब मेरी इच्छा है कि किसी सुयोग्य को अपना जीवन साथी चुन ले।"

"माँ ! यह काम जितना सरल लड़की के संरक्षकों के लिये होता है उतना स्वयं लड़की के लिये नहीं। इसमें तो समय......।"

"मैंने तुझे कितने लड़के बताये, किन—किन लोगों ने तुझे मुझसे माँगा, लेकिन तू तैयार हो तब न। जब तेरी इच्छा स्वयं चुनाव करने की है तो कर ले, लेकिन शीघ्र कर ताकि मैं मरने के पहिले तेरी माँग में सिन्दूर देख सकूँ। पके आम की तरह हूँ, पता नहीं कब टपक पड़ूँ।"

"ऐसा क्यों कहती हो माँ ?"

"न कहने से भावी तो नहीं टल सकती। जो होना है वह तो होकर ही रहेगा।"

"वह तो होगा ही माँ, लेकिन न जाने क्यों मुझे आपकी ये बातें सुन कर आज कल डर लगने लगा है।" कह कर रञ्जना ने माँ की गोद में अपना मुँह छिपा लिया।

"अरे तो इतनी जल्दी थोड़े ही तुझे छोड़े जा रही हूँ।"

"नहीं माँ ! मैं तुम्हें कभी कहीं न जाने दूँगी।"

"जो आया है उसे तो एक न एक दिन इस असार संसार से बिदा लेनी ही पड़ेगी। किसी के रोकने से कोई रुका है आज तक ?"

"कोई रुका हो या न रुका हो, लेकिन तुम्हें मैं अवश्य रोक लूँगी।"

"बेटी ! अभी तेरी डाक्टरी ने मौत पर विजय नही पाई है। जिस दिन तेरा चिकित्सा विज्ञान इतनी उन्नति कर जायेगा, उस दिन यह संसार रहने योग्य न रहेगा।"

"क्यों माँ ?" रञ्जना ने माँ की गोंद में लेटे ही लेटे प्रश्न किया।

"बेटी ! अभी मनुष्य को मौत का भय लगा रहता है, इसीलिये उसे इस संसार से मोह है। जहाँ भय है वहीं मोह है। जिस दिन यह भय

"तो आपके कहने का तात्पर्य है कि कल्पना ही जीवन है।"

"मैं क्या बड़े-बड़े ग्रन्थकार भी यही कहते हैं।"

"आजकल किस ग्रन्थ का अध्ययन कर रही हो माँ ?"

श्री मद्भागवत महापुराण का।"

"जब पूँछती हूँ तब तुम इसी ग्रन्थ का नाम लेती हो। क्या मिलता है बार-बार इसके पढ़ने में ?"

"संतोष और संतोष वह परम सुख है जिसकी खोज में मानव निरन्तर प्रयास किया करता है।"

"परन्तु आप तो सदैव चिन्तित बनी रहती हैं ?"

"ठीक कहती है तू, लेकिन यह भी कभी जानने की चेष्टा की है कि मेरी चिन्ता का कारण कौन है ?"

"कौन ?"

"तू।"

"आप तो सदैव मुझे ही अपनी चिन्ता का कारण बताती हैं।"

"तेरे सिवा और कौन बैठा है मेरा अब इस संसार में ? तू मेरी चिंता का कारण नहीं होगी तो क्या पड़ोस वाले होंगे ?"

"लेकिन आज कल तो मेरी अपेक्षा पड़ोस वाले ही अधिक आपकी चिंता के कारण बने हुये हैं।"

"वह भी तेरे ही कारण।"

"तुम तो हर तरह से हमें ही दोषी सिद्ध कर देती हो।" तुनुक कर रञ्जना माँ की गोद से उठकर बैठ गई।

"यही तो ढंग है तुझे निर्दोष बनाने का।"

"तो फिर अपनी तरह मुझे भी निर्दोष सन्यासिनी बनाना चाहती हो।"

"सन्यासिनी तो नहीं, लेकिन निर्दोष गृहिणी के रूप में अवश्य देखना चाहती हूँ।"

"तुम तो मुझे पत्नी या सुगृहणी के रूप में ही देखना चाहती हो। कभी मेरा डाक्टर का रूप भी अच्छा लगा है तुम्हें ?"

"तुझे इसी रूप में देखने की साध लिये तो तेरे पिता जी चल बसे।" दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये माँ ने सहा—"अब क्या चाहती है कि मैं भी तेरे पिता जी की ही भाँति तुझे सुगृहणी के रूप में देखने की अभिलाषा लिये उन्हीं के पास चली जाऊँ ?"

"नहीं माँ ! तुम्हारी अभिलाषा शीघ्र ही पूरी होगी।" माँ के आँसू पोंछते हुये रञ्जना ने कहा।

"सच बेटी !" माँ के अश्रु पूरित नेत्र प्रसन्नता से चमक उठे—"आज तूने प्रथम बार अपने मुँह से मेरी कामना पूर्ति का आश्वासन दिया है।"

"अच्छा माँ ! अब मैं अस्पताल जा रही हूँ।" घड़ी की ओर देख कर उठते हुये रञ्जना ने कहा।

"और भोजन ?"

"अभी भूँख नहीं है। दोपहर को खा लूँगी आकर।" कहकर रञ्जना द्वार की ओर बढ़ गई।

"लेकिन आना अवश्य, मैं तेरी प्रतीक्षा करूँगी।"

"अवश्य।" दूर से आता हुआ रञ्जना का स्वर माँ को सुनाई दिया।

३०

कला एम० ए० की छात्रा थीं। एम० ए० की कक्षायें प्रातः ही लगती थीं, इस लिये कला शीला को सोता हुआ ही छोड़कर कालेज चली गई थीं। रात्रि में अधिक देर तक जागने के कारण शीला की नींद जरा देर से खुली। जागने पर देखा कि कला का बिस्तर खाली है। उठकर इधर-उधर देखा तो भी कला न दिखाई दीं। खोजते-खोजते वह कौशल के कमरे में जा पहुँची। कौशल आराम कुर्सी पर बैठे रेडियो सुन रहे थे। शीला को देखते ही कहा—"आइये, आइये।" कह कर कौशल उठ खड़े हुये।

"जी ! मैं कला को ढूँढ़ रही थी।"
"कला तो कालेज गई होगी।"
"किसलिये ?"
"पढ़ने। क्या आपको नहीं मालूम ?"
"जी नहीं।"
"क्या आप उसके साथ नहीं पढ़ती हैं ?"
"जी नहीं।"
"आइये, बैठ जाइये आकर।"
"जी, मैं अभी सोकर उठी हूँ, गुसलखाने जाऊँगी।" कह कर शीला लौट पड़ीं।
"अच्छा तो उसके बाद यहाँ आ रही हैं न ?"
"जी।" शीला ने कुछ ठिठक कर कहा—"हाँ, आजाऊँगी।"
कौशल पुनः बैठ कर रेडियो सुनने लगे, लेकिन सोच शीला के ही विषय में रहे थे। थोड़ी देर में शीला ने कक्ष में प्रवेश किया।
कौशल ने उठ कर उनका स्वागत किया और सामने बैठने का संकेत करते हुये कहा—"तशरीफ रखिये।"
शीला संकोच सहित बैठ गईं।
कौशल ने भी बैठते हुये प्रश्न किया—"आप तो कला की सहेली हैं न।"
"जी।"
"आपको मैंने पहले कभी नहीं देखा यहाँ आते हुये ?"
"अभी कुछ ही दिन पूर्व एक दिन कला मेरे यहाँ आई थीं तभी से जान-पहचान हो गई।"
"किस सिलसिले में ?"
"यों ही एक महिला सुधार संघ खोलने की योजना पर विचार विमर्श करने के लिये।"
"यह तो बड़ा अच्छा विचार है आप लोगों का। वह तो शुरू से ही इन विचारों की प्रशंसक रही है। और जब आप जैसी समान विचारों

वाली महिला का साथ हो गया है तो वह जरूर कुछ न कुछ करके रहेगी।"

"जी।"

"वैसे तो आप किसी पास के ही शहर की रहने वाली होंगी ?"

"जी, मैं इसी नगर में रहती हूँ।"

"कहाँ ?"

"सिविल लाइन्स में।"

"तो आपका बँगला सिविल लाइन्स में है ?"

"जी हाँ।"

"वहाँ तो मेरे बहुत जान-पहचान के लोग रहते हैं। क्या नाम है आपके पिता जी का ?"

"मेरे पिता जी यहाँ नहीं, गाँव में रहते हैं।"

"और माता जी ?"

"वह इस संसार से विदा हो चुकी हैं।"

"तो किसी बड़े भाई के साथ रहती होंगी आप ?"

"जी नहीं, मेरा कोई भाई नहीं है।"

"तो क्या आप अकेले रहती हैं ?"

"जी, अकेले नहीं।"

"तो फिर कौन है यहाँ ?"

"एक क्षण सोचने के उपरान्त शीला ने झिझक के साथ कहा—"मेरा व्याह हो चुका है।"

"ओह !" कहकर कौशल जोर से हँस पड़े। हँसी में मस्त हो झूलने लगे। हास्य पर शनैः शनैः नियन्त्रण पाते हुये कौशल ने आगे कहा—"इधर तो मेरा ध्यान ही नहीं गया कि आप विवाहित हैं। मैंने समझा था कि कला विवाह के विरुद्ध है, उसकी सहेली होने के नाते आप भी इसी विचार की होंगी वरना आवश्यकता ही न पड़ती इतनी सब बातें पूँछने की। खैर ! यह भी अच्छा ही हुआ। इसी बहाने आपके पारि-

वारिक जीवन के विषय में कुछ विशेष जानकारी हो गई।" गम्भीर होकर कौशल ने पूँछा—"हाँ तो आपके पति महोदय क्या करते हैं यहाँ ?"

"डाक्टर हैं।"

"क्या नाम है उनका ?"

"........................."

"ओह ! मैं तो भूल ही गया आप नाम कैसे ले सकती हैं। भारतीय नारी जो टहरीं। लेकिन जब आपके पति डाक्टर हैं तो फिर पिता जी आपको डा० कान्त के पास ले जाने को क्यों कह रहे थे ?"

"यही नाम है उनका।"

"तो आप डा० कान्त की पत्नी हैं ?"

"जी।"

"तो फिर यह रहस्य क्या है कि मेरे पिता जी आपको आपके पति के पास ले जायेंगे।"

"जी हाँ, कुछ पारस्परिक विरोध चल रहा है।"

"पति-पत्नी में विरोध कैसा ? इस सम्बन्ध में तो विरोध का एक ही कारण होता है.........।"

"क्या ?" बीच ही में शीला ने प्रश्न कर दिया।

"या तो पति दूसरी स्त्री रख ले या पत्नी दूसरा पुरुष चुन ले। क्या ऐसा ही कुछ हुआ है ?"

"जी।"

"आप तो ऐसी दीखती नहीं हैं और डा० कान्त की सज्जनता में सन्देह किया नहीं जा सकता है।"

"सज्जनता की आड़ में ही तो ऐसे काम किये जाते हैं।"

"तो क्या डा० साहब ने किसी दूसरी स्त्री को रख लिया है ?"

"जी हाँ।"

"आपने कोई विरोध नहीं किया ?"

"विरोध करने के लिये शक्ति चाहिये। हम निरीह प्राणी क्या कर सकती हैं ?"

"आप अपने को निरीह क्यों समझती हैं ?"

"क्यों न समझूँ, जिन पर विश्वास किया था वे भी ऐन मौके पर धोखा दे गये।"

"कौन धोखा दे गया ?"

"एक सिनहा साहब हैं.........।"

"पूरा नाम क्या है उनका ?"

"विनोद कुमार सिनहा।"

"क्या आप उन्हें जानती हैं ?"

"जानती ही नहीं, बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। बहुत ही धूर्त चार सौ बीस है वह।"

"उन्हें तो मैं भी जानता हूँ, लेकिन मैंने तो उन्हें ऐसा कभी नहीं पाया। क्या चार सौ बीस की है उन्होंने आपके साथ ?"

"जब तक मेरी स्थिति अच्छी रही तब तक मेरे बँगले के दिन-रात चक्कर लगाता रहा। एक क्लब की योजना बनाई, उसके लिये वह मुझसे बहुत सा रुपया ले चुका है। मुझे उसका बहुत विश्वास था। प्रत्येक स्थिति में वह मेरी सहायता करने का आश्वासन दिया करता था, परन्तु जैसे यह घटना-हुई, मैं सहायतार्थ उसके पास गई, सहायता के नाम पर सौ रुपये का नोट उसने मुझे दिखाया और ऐसा आचरण करने की चेष्टा की जैसा मैं उससे कभी आशा नहीं करती थी।"

"यदि उन्होंने ऐसा किया है तो आज ही मैं उन्हें आपके सामने पकड़ लाऊँगा।"

"मुझे उसकी शकल से नफरत है। उस जैसा नीच पुरुष संसार में दूसरा हो ही नहीं सकता।" आवेश के कारण शीला का स्वर तीव्र हो गया था।

"अरे, किसे नीच बनाये डाल रही हो ?" कहते हुये कला ने कक्ष में

प्रवेश किया।

कौशल एक क्षण के लिये सकपका गये, परन्तु शीघ्र ही प्रकृतिस्थ होते हुये बोले—"आज जल्दी लौट आईं तुम कालेज से ?"

"क्यों, जल्दी कहाँ लौट आई ? दस तो बज रहा है।"

शीला की बात सुन कर कौशल चौंक पड़े "ओह ! दस बज गया। मुझे तो दस बजे एक बहुत जरूरी काम से जाना है।"

"किसी दोस्त से मिलने का वायदा किया होगा।" कला ने बैठते हुये कहा।

"तू तो हमेशा मुझे आवारा ही समझती है।" उठते हुये कौशल ने कहा।

"राय साहब का लड़का भला कहीं आवारा हो सकता है। वह तो पैदाइसी लाठ साहब होता है, क्यों शीला जी ?"

"जी।" कहकर शीला ने हल्के से मुस्करा दिया।

"अच्छा ! लौटकर तेरी खबर लूँगा।" कहकर कौशल चले गये।

कला ने शीला की ओर देखते हुये कहा—"भाई साहब से तो खूब बातें हुई होंगी ?"

"हाँ, कुछ खास नहीं।"

"मतलब।"

"यों ही मेरे विषय में पूँछते रहे।"

"क्या-क्या बताया है उन्हें ?"

"यही सिनहा-विनहा के बारे में बता रही थी।"

"तो 'नीच' शब्द का प्रयोग सम्भवतः सिनहा के लिये किया जा रहा था ?"

"हाँ।"

"भाई साहब तो नाराज नहीं हुये ?"

"क्यों, नाराज क्यों होने लगे ?"

'अरे ! वह सिनहा के बड़े पक्के दोस्तों में से हैं। सिनहा के विरुद्ध कभी

वह किसी के मुँह से एक भी बात बरदाश्त नहीं कर सकते।"

"लेकिन मैंने तो सिनहा को बहुत बुरा-भला कहा है।"

"और ताज्जुब है कि भाई साहब सुनते रहे। सिनहा के विरुद्ध मैंने जब कभी कुछ भी कहा है, मुझ से बिगड़ गये हैं। एक—आध बार तो हफ्तों इसी कारण हमारा उनकी बोल—चाल तक बन्द रही।"

"अगर मुझे मालूम होता तो मैं कभी अपशब्दों का प्रयोग न करती, परन्तु न जाने क्यों उसकी याद आते ही बरबस अपशब्द मुँह से निकलने लगते हैं।"

"अच्छा, खैर छोड़ो इन बातों को! पहले यह बताओ कि कुछ नास्ता वास्ता किया है आपने अभी तक या नहीं?"

"मौका ही नहीं मिला। भाई साहब से ही बातें होती रहीं।"

"आपने भी हद कर दी। दस बज चुके हैं और आपने अभी तक कुछ खाया—पिया भी नहीं।" कला ने उठते हुये कहा—"चलिये, उठिये जल्दी से।"

शीला उठकर कला के साथ अन्य कक्ष में जा पहुँची।

३१

पिछले कई दिनों से रोगियों के देखने का कार्य कुछ अव्यवस्थित रूप में चल रहा था। उपेक्षित रोगियों को डा० कान्त बड़े ही ध्यान से देख रहे थे। प्रत्येक रोगी काफ़ी समय ले रहा था। रञ्जना भी आकर अपने कमरे में बैठकर रोगियों को देखने में व्यस्त हो गई। दोपहर तक यह कार्य चलता रहा। वैसे तो रञ्जना को मरीजों से जल्दी ही फुरसत मिल गई थी, परन्तु डा० कान्त को व्यस्त देखकर वह बैठी उनकी प्रतीक्षा करती रहीं। लगभग एक घण्टे पश्चात् डा० कान्त को रोगियों

ने छोड़ा। डा० कान्त को फुरसत में देखकर डा० रञ्जना अपनी कुर्सी से उठीं और डा० कान्त के समक्ष पड़ी खाली कुर्सी पर बैठते हुये कहा-

''तबियत तो ठीक है अब आपकी ?''

''ओह आप गईं ! मैं तो बुलवाने वाला था।''

''मैं जानती थी कि आपको मेरी आवश्यकता है, इसीलिये स्वत: चली आई।''

''यह कैसे कहूँ कि मुझे आपकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु जानना मुझे यह था कि आज सुबह जब आप घर पहुँची होंगी तो माता जी काफी नाराज हुई होंगी।''

''बस पूँछिये मत। आज जैसी नाराजगी तो मैंने उनकी कभी देखी ही नहीं।''

''क्या बहुत नाराज हो रही थीं ?''

''वैसे तो चाहे कम होतीं, लेकिन पड़ोस के लोगों ने उनका दिमाग खराब कर रखा है।''

''आपने कभी जिक्र नहीं किया इसका। क्या खराबी आ गई है उनके दिमाग में ?''

''जैसी खराबी आप सोच रहे हैं, वैसी कुछ नहीं है। दरअसल बात यह है कि मेरे पड़ोसी आज कल मेरे विषय में बहुत चिन्ता करने लगे हैं।''

''आपके विषय में ?''

''जी हाँ। बेकार लोगों का खुराफाती दिमाग मेरे ही विषय में कुछ न कुछ कहा करता है। वैसे तो उन लोगों की सीधे माता जी से कहने की हिम्मत नहीं पड़ी है, परन्तु किसी के माध्यम से बोली बोला करते हैं जो माता जी के कानों तक पहुँचे बिना नहीं रहतीं।''

''क्या कहते हैं ?''

''उन्हें मेरा घर से बाहर रहना सहन नहीं। इधर मेरा अधिक समय आपके साथ बीतने लगा है, वे लोग इसे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं।''

''ओह ! मैं समझ गया। तब तो माता जी का मस्तिष्क वास्तव में

उन लोगों ने खराब कर रखा होगा। चलिये मैं माता जी से मिल कर उनका सन्देह दूर कर दूँ।"

"आप मेरे यहाँ चलियेगा ?" रञ्जना ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"क्यों, क्या हुआ ? मैं तो दिन-रात घरों-घरों घूमा ही करता हूँ।"

"लेकिन......... ।"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, उठिये चलिये।" कहकर डा० कान्त उठ खड़े हुये।

रञ्जना आगे कुछ भी न कह सकीं और डा० कान्त का अनुसरण करने लगीं।

रञ्जना के पिता साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। साधारण सरकारी पद पर कार्य करते थे, परन्तु अपनी एकमात्र सन्तान रञ्जना को डा० बनाने की बड़ी अभिलाषा थी उनकी। अपनी उस अभिलाषा की पूर्ति के लिये उन्होंने प्रारम्भ से ही रञ्जना की शिक्षा-दीक्षा की सुन्दर से सुन्दर व्यवस्था करने में कोई कसर न उठा रखी थी। रञ्जना की देख रेख वह स्वयं करते और जहाँ तक सम्भव हो सकता उसकी आवश्यकताओं को पूरी करने की कोशिश करते। आखिरकार वह दिन आ ही गया जिस दिन रंजना को मेडिकल कालेज में ले लिया गया। वह चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन करने लगीं। परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। रंजना प्रति वर्ष सफलता के शिखर पर चढ़ती चली गईं। अन्तिम वर्ष शेष रह गया था कि रंजना के पिता हृदय की गति बन्द हो जाने के कारण चल बसे और रंजना को पूर्ण डाक्टर के रूप में न देख सके। पिता के मरने से पारिवारिक स्थिति को काफी धक्का लगा, परन्तु रंजना की माँ बड़ी ही कुशल गृहणी थीं, उन्होंने बिगड़ी हुई परिस्थिति को सम्हाल लिया। रंजना की पढ़ाई में कोई भी व्यवधान न उपस्थित होने पाया। वह ज्यों की त्यों चलती रही। गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी रंजना को सफलता मिली। माँ के हर्ष की सीमा न रही। पुत्री को हृदय से लगाते हुये उन्होंने कहा—"यदि तेरे

पिता आज जीवित होते तो कितना खुश होते।"
"माँ !" रंजना का करुण स्वर माँ को सुनाई पड़ा।
"क्या है बेटी ?" माँ ने पुत्री की ओर देखकर कहा—"तू तो रो रही है। यह तो खुश होने का अवसर है। जो सफलता तूने पाई है क्या उसे मोहल्ले का कोई लड़का या लड़की पा सका है ? आ पहले तेरा मुँह मीठा करा दूँ।" कहकर माँ ने बेटी का मुँह मीठा कराया।
सुख-दुख के मिलन का अद्भुत क्षण था वह।
डा० बनने के पश्चात रंजना के समक्ष पारिवारिक भरण-पोषण की भयानक समस्या थी। पास में इतना प्रचुर धन नहीं था जिससे अपना दवाखाना खोला जा सकता। काफी विचार विमर्श के पश्चात रंजना ने माँ द्वारा नौकरी न करने की समस्या पर विजय प्राप्त की, परन्तु माँ कहीं बाहर भेजने को किसी भी कीमत पर तैयार न थीं। परिणामतः रंजना ने स्थानीय नौकरी खोजनी प्रारम्भ की।
डा० कान्त की चिकित्सा दिन पर दिन उन्नति करती जा रही थी। उन्हें एक महिला डाक्टर की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उन्होंने स्थानीय के अतिरिक्त अन्य कई समाचार पत्रों में महिला डा० की आवश्यकता का विज्ञापन निकलवाया। रञ्जना ने वह विज्ञापन पढ़ा और डा० कान्त से मिलने का निश्चय किया। डा० कान्त को एक परिश्रमी महिला डाक्टर की आवश्यकता थी। रञ्जना भी परिश्रम से डरने वाली थी नहीं, परिणामतः डा० रञ्जना डा० कान्त के अस्पताल में काम करने लगीं। रञ्जना ने डा० कान्त की चिकित्सा पद्धति का बहुत कुछ अनुकरण कर लिया और अपने को उनके अनुकूल बनाने की भरसक चेष्टा की। डा० कान्त डा० रञ्जना की लगन और कार्य पद्धति से बहुत प्रसन्न थे। तब से रञ्जना डा० कान्त के साथ ही कार्य कर रही थीं।
रञ्जना का मकान तो अपना था, परन्तु वह इतनी तंग गली के अन्दर था कि मोटर दरवाजे तक न जा सकती थी। गली के सिरे पर ही

डा० कान्त ने मोटर रोक दी और पैदल चल पड़े। रञ्जना आगे थीं और डा० कान्त पीछे। रञ्जना ने भीतर प्रवेश करते ही माँ को आवाज दी। माँ ने भीतर से ही कहा—"आ गई बेटी ?"

"हाँ माँ ! डा० साहब भी आये हैं।"

"कौन डा० साहब ?" कहते हुये माँ ने कक्ष में प्रवेश किया। और डाक्टर कान्त को देख कर अपनी धोती सम्हालती हुई बोलीं—"ओह ! आप।"

"जी हाँ माता जी। बहुत दिनों से आपसे मिलने का मन कर रहा था, लेकिन फुरसत ही नहीं मिल रही थी।" कुर्सी पर बैठते हुये डाक्टर कान्त ने कहा।

"बेटी ! तुमने कभी बात नहीं चलाई ?"

"जब मुझे मालूम हो तब बात चलाती या अपने मन से ही ?"

"मैं समझे थी कि कदाचित तुम्हें मालूम हो।"

"नहीं, माता जी ! मैंने ऐसी इच्छा कभी व्यक्त नहीं की।"

"खैर ! कोई बात नहीं। यह तो आपका ही घर है जब इच्छा हो चले आया करो। इसमें कहने—सुनने की बात ही क्या है।" रञ्जना अभी तक खड़ी थीं। उनकी ओर संकेत करती हुई माँ बोली—"तुम भी बैठ जाओ न। मैं अभी आई।" कहकर माँ कमरे के बाहर जाने को हुईं, परन्तु रञ्जना ने उन्हें रोकते हुये कहा—"आप यहीं बैठिये, मैं जा रही हूँ अन्दर।"

"तुम्हें कुछ पता भी है ?"

"मैं सब खोज लूँगी।"

"यह किसकी खोज-बीन प्रारम्भ हो गई ?" डा० कान्त ने पूँछा।

"यहाँ कौन बैठा है जिसकी खोजबीन होगी।"

"बात तो कुछ आप लोगों में ऐसी ही हो रही है।"

"क्या बताऊँ डाक्टर साहब यह दिन भर तो आपके साथ काम करती है और घर पर मुझे भी कुछ नहीं करने देती।"

"इसी स्वभाव के कारण तो इन्हें इतनी सफलता प्राप्त हुई है।"
"यह तो डाक्टर साहब के साथ काम करने का प्रभाव है।"
"नहीं, माता जी! ऐसी बात नहीं है। और भी तो अस्पताल में बहुत से लोग हैं; लेकिन मरीज उनसे इतना संतुष्ट नहीं रहते जितना आपकी बेटी डा० रञ्जना से।"

वह जब किसी के मुँह से अपनी बेटी के लिये 'डाक्टर' सम्बोधन सुनतीं तो मन ही मन फूली न समातीं। डा० कान्त के मुँह से 'डाक्टर रञ्जना सुनकर उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही, परन्तु प्रसन्नता अव्यक्त रखते हुये पूँछा—"क्या आप भी रञ्जना को डाक्टर ही ही कहते हैं?"
"क्यों, क्या वह डाक्टर नहीं हैं?"
"डाक्टर तो है वह, परन्तु आपके लिये थोड़े ही है।"
"तो फिर मेरे लिये क्या है?"
माता जी एक क्षण के लिये विचार मग्न हो गईं। सोचते हुये उन्होंने कहा—"वह तो आपके यहाँ नौकर है।"
"तो आपका तात्पर्य है कि मैं उन्हें नौकरानी समझूँ?"
"व्यवहार तो यही कहता है।"
"और जो अपने को नौकर समझ कर काम न करता हो, उसे?"
"यह तो अपनी इच्छा पर निर्भर है।"
"तो फिर मैं डा० रञ्जना को अपना सहयोगी समझता हूँ। रोगियों के देखने के काम में वह मेरा इतना हाथ बटाती हैं कि अब मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है कि उनके बिना मेरा काम चल ही नहीं सकता।"
"ऐसी स्थिति न आने दीजियेगा डाक्टर साहब!"
"क्यों?"
"उसका क्या ठीक, पता नहीं कहाँ जाना पड़े।"
"क्यों, उन्हें कहाँ जाना है?"
"अपने घर।"

"बेटी क्यों नहीं है, लेकिन डाक्टर साहब माँ का घर बेटी का अपना घर नहीं होता। दो साल हो गये लड़का खोजते-खोजते, लेकिन कोई उपयुक्त पात्र उसके लिये मिल ही नहीं रहा है।"

"क्या वह ब्याह करने के लिये तैयार हैं ?"

"उसके तैयार होने या न होने से क्या होता है। बिना व्याह के इस समाज में गुजर ही कहाँ।"

"लेकिन माता जी मैं ब्याह को इतना महत्व नहीं देता।"

"यह तो जीवन का एक कर्तव्य है। इसे तो करना ही पड़ेगा।"

"आपकी बात को मैं अस्वीकार नहीं करता, लेकिन इससे भी महान कर्तव्य जीवन में अनेक हैं जिनका किया जाना ब्याह करने से अधिक हितकर एवं महत्वपूर्ण होता है।"

"अधूरा व्यक्तित्व किसी भी कार्य को भली भाँति नहीं कर पाता।"

"अधूरे व्यक्तित्व से आपका तात्पर्य ?"

"स्त्री-पुरुष दोनों ही एक दूसरे के अभाव में अधूरे हैं।"

"माता जी ! आप अधिक अवस्था प्राप्त हैं। आपका ज्ञान और अनुभव दोनों ही मुझसे बढ़-चढ़कर हैं, परन्तु पूर्ण व्यक्तित्व द्वारा किये जाने वाले जिन कार्यों की ओर आपका संकेत है, आज का युग उन्हें अधिक महत्व नहीं देता। आज मानवता विनाश की कगार पर खड़ी है। किसी भी दिन धक्का लग सकता है और सम्पूर्ण सृष्टि नष्ट-भ्रष्ट हो सकती है। ऐसी विनाशोन्मुखी मानवता की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। चारो ओर अत्याचार एवं भ्रष्टाचार से पीड़ित कराहती हुई जनता का स्वर सुनाई दे रहा है। उन्हें कष्ट एवं पीड़ा से मुक्त करने के लिये आज संवेदनशील हृदयों की आवश्यकता है। आज आवश्यकता इस बात की नहीं है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष विवाह बन्धन में बँधकर अपना व्यक्तित्व पूर्ण बनाये और पारिवारिक सीमाओं में बँध कर अपना कर्म क्षेत्र सीमित कर ले। पारिवारिक बन्धनों में बँधे हुये किसी भी प्राणी से मानव-सेवा की आशा नहीं की जा सकती जिसकी कि आज नितान्त

आवश्यकता है ।"

"डा० साहब ! आज आपके विचारों ने मेरी आँखें खोल दीं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है आपके ऐसे विचार सुन कर, लेकिन आप पुरुष हैं। आपके विचारों में पुरुषत्व की दृढ़ता है। आप में संकट कालीन परिस्थितियों से टक्कर लेने की क्षमता है, परन्तु क्या कभी आपने नारी जाति की दुर्बलताओं की ओर भी दृष्टिपात किया है ?"

"अपने को दुर्बल समझने की इसी धारणा ने उसे दुर्बल बना रखा है। जितनी वह शक्तिशालिनी है उतनी शक्ति पुरुष के पास कहाँ। यदि वह नारी की भाँति ही शक्तिशाली होता तो क्या नारी की शक्ति के रूप में उपासना करता ? शक्तिशाली होने या शक्तिहीन होने का मापदण्ड शरीर था। शारीरिक शक्ति का आज के युग में विशेष महत्व नहीं है और सम्भवतः कभी नहीं रहा है। प्राचीन भारत में आन्तरिक शक्ति को वास्तविक शक्ति माना जाता था और आन्तरिक शक्ति दया, सेवा, त्याग, सहिष्णुता तथा प्रेम आदि का समन्वित रूप है। क्या इस शक्ति का नारी में अभाव है ? क्या वह इससे अलंकृत नहीं ? क्या इनकी शक्ति को कोई शारीरिक शक्ति पराजित कर सकी है ?" कह कर डा० कान्त रञ्जना की माँ के मुँह की ओर देखने लगे। वह शान्त बैठी सुन रही थीं। एक क्षण तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त जब डा० कान्त को कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने अपनी स्थिति का विश्लेषण करते हुये कहा—"क्षमा करियेगा माता जी ! मैं आवेश में आकर न जाने क्या-क्या कह गया।"

"नहीं बेटा ! तुम्हारा आवेश विचार शून्य नहीं था।"

बार-बार डा० कान्त के मुँह से माता जी-माता जी सुनकर वह भूल गईं कि वह डा० कान्त से बातें कर रही हैं, इसीलिये वह 'बेटा' सम्बोधित कर गईं, परन्तु डा० कान्त ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया और कहा—"ये भी कोई विचार हैं। जो समझ में आया बक गया। विचार

सुनकर मैं आश्चर्य में पड़ जाता हूँ और रञ्जना के भाग्य से ईर्षा करने लगता हूँ जिसे आप जैसी माँ ने जन्म दिया।"

"और रञ्जना भीतर जाकर लौटी ही नहीं। जरा, देखूँ तो क्या कर रही है।" कह कर ज्यों ही वह उठने को हुई त्यों ही रञ्जना ने मुस्कराते हुये भीतर प्रवेश किया और हाथ की समस्त खाद्य सामग्री मेज पर रख दी। रञ्जना को देख कर माँ ने कहा—"क्या करती रही इतनी देर तक ?"

"कुछ नहीं।"

"तो फिर यहाँ क्यों नहीं आई ?"

"मैं आप लोगों के बाद-विवाद में नही पड़ना चाहती थी।"

"अनुपस्थित रहकर तुम बड़े बहुमूल्य विचारों से बञ्चित रह गईं।"

"जी नहीं, मैं दरवाजे के पीछे से सब सुनती रही हूँ।"

"लेकिन चोरी से किसी की बात सुनना अच्छा नहीं होता डाक्टर!" डा० कान्त ने कहा।

रञ्जना का चेहरा रक्ताभ हो उठा। लज्जा की लालिमा कपोलों पर दौड़ गई। सिर झुकाये वह मेज पर खाद्य सामग्री व्यवस्थित ढंग से लगाती रहीं। डा० कान्त ने अपने वाक्य के अनौचित्य को समझ लिया लिया और अपराध पूर्ण स्वर में बोले—"मैं न जानता था कि आप मेरी हँसी की बात का इतना बुरा मान जायेंगी कि बोलेंगीं भी नहीं।"

माँ की व्यावहारिक बुद्धि ने उत्तर दिया—"यह भी कोई बुरा मानने की बात है। क्यों बेटी! क्या बुरा मान गई ?"

रञ्जना ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "नहीं।" मेज पर लगी सामग्री की ओर संकेत करते हुये रञ्जना ने कहा—"लीजिये।"

"इसकी क्या आवश्यकता थी ? डा० कान्त कहकर शान्त हो गये।

"मुझे अधिक शिष्टाचार पसन्द नहीं। लीजिये प्रारम्भ करिये।" माँ ने कहा।

"और आप लोग ?"

"आप खाइये ।"
"यह कैसे हो सकता है ? यदि आप मुझे शिष्टाचार प्रदर्शन से रोकती हैं तो फिर आप लोगों को संकोच क्यों ?"
"बच कर जा कहाँ सकते हैं हम लोग ? लो बेटी आओ तुम भी शुरू करो ।"
"जी माँ ! आप खाइये, मुझे भूख नहीं है ।"
"तुम भी डा० साहब की ही तरह हो गईं क्या ?"
"डाक्टर जो ठहरीं ।" डा० कान्त ने कहा ।
"होना भी चाहिये । तुम्हारी चिकित्सा पद्धति अनुकरणीय जो है ।"
"तब तो अब अवश्य आ जायेंगी, क्योंकि मैंने भी एक बार अनिच्छा व्यक्त की थी ।"
"हाँ. आयेगी, क्यों नहीं ?"
रञ्जना ने भी अपनी कुर्सी पास खिसका ली ।
काफी देर तक सभी लोग भोजन करते रहे । गम्भीर एवं हास्यपूर्ण सभी प्रकार की बातें होती रहीं । खाने के बाद डा० कान्त ने उठते हुये कहा—"अब मुझे आज्ञा दीजिये । अभी बँगले भी जाना है ।"
"अब फिर कब आइयेगा ?"
"जब डाक्टर चाहेंगी ।" कह कर डा० कान्त मुस्करा दिये ।
"तो क्या मेरे या अपने चाहने से नहीं आइयेगा ?"
प्रश्न साधारण था, परन्तु उसका अर्थ इतना गम्भीर हो जायगा—इसे डा० कान्त ने न समझा था । उसे विशेष महत्व न देने की भावना से डा० कान्त ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया—"आऊँगा क्यों नहीं, अवश्य आऊँगा । आप कहेंगी तो आऊँगा और न कहेंगी तब भी । अच्छा, अब मैं चला ।" रञ्जना की ओर मुड़कर—"आप तो सीधे अस्पताल ही पहुँच रही हैं न शाम को ?"
"जैसा आप कहें ।"
डा० कान्त ने एक क्षण सोच कर कहा—"मेरी तो इच्छा थी कि कहीं

खोज की जाती उसकी।"

"किसकी?" माँ ने प्रश्न किया।

"क्या आपको नहीं मालूम?"

"किसके विषय में?"

"मेरी पत्नी के विषय में।"

"क्या हो गया? मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम।"

"डा० ने आपको कुछ भी नहीं बताया?"

"नहीं तो।"

"वास्तव में बात यह है कि............।" डा० कान्त ने सम्पूर्ण घटना सुना दी।

सुनने के पश्चात माँ ने कहा—"ऐसा तो कदापि न होना चाहिये।"

"खैर! अब तो हो ही गया है। उसी की सहायतार्थ कभी-कभी डा० को मेरे यहाँ रुक जाना पड़ता है।"

"कोई बात नहीं। ऐसे अवसर पर यह काम न आयेगी तो कौन आयेगा।"

"तो फिर अगर आज्ञा हो तो अभी जाकर कहीं खोजें उसे?"

"क्यों नहीं, जाइये और जल्दी से जल्दी उन्हें खोजिये।"

"आओ डाक्टर चलें।"

रञ्जना ने माँ की ओर एक बार देखा। दोनों की दृष्टि मिल गई। माँ ने रञ्जना के संकोच-भाव को समाप्त करते हुये कहा—"जाओ बेटी, डा० साहब का इस कार्य में जितना हो सके हाथ बटाओ।"

डा० कान्त के साथ रञ्जना चल पड़ीं।

३२

कौशल सीधे सिनहा के बँगले पर जा धमके। सिनहा कहीं से आकर वस्त्र परिवर्तन कर रहे थे कि कौशल के आने का समाचार प्राप्त हुआ। वैसे ही वह दौड़ पड़े और बाहर आकर कहा—"आओ यार कौशल। कब आये ?"

"कल रात को।" आगे बढ़ते हुये कौशल ने कहा।

"और मुझे कोई सूचना नहीं ?"

"तुम्हें क्या किसी को भी सूचित न कर सका।"

"कम से कम सूचित तो कर दिया करो। वहाँ से न सही तो कम से कम स्टेशन से ही ले आया करूँ।"

"अमाँ यार। इतना ज्यादा काम रहता है कि फुरसत ही नहीं मिलती।"

"तब तो जिंदगी बड़ी नीरस हो गई होगी।"

"यहाँ जो तुम्हारे साथ मजा आता था वह वहाँ कहाँ ? खैर छोड़ो इन सब बातों को। पहले यह बताओ कि मेरी गैरहाजिरी कोई में नया शिकार हाँथ लगा या नहीं ?"

"आज कल दिन बुरे चल रहे हैं। तुम नये शिकार की बात पूँछते हो, पुराने भी हाथ बेहाथ हो रहे हैं।"

"तो शायद शीला का नाम तो तुम्हारे लिये अपरिचित ही होगा।"

"हाँ, मैं तो नहीं जानता इस नाम की किसी को।"

"क्यों उड़ रहे हो यार ! हमीं ने सिखाया था खञ्जर चलाना और हमारा ही सिर है उड़ाने के काबिल।"

"मतलब ?"

"मतलब यह है कि तुम मुझे बेवकूफ नहीं बना सकते। मुझे तुम्हारी [illegible] -[illegible]हरकत मालूम है। क्या डा० कान्त की स्त्री शीला से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं रहा ?" कौशल का स्वर तीव्र था।

"ओह ! तो आप उसकी बात कर रहे हैं ।"

"जी हाँ ।"

"वह तो इतनी होशियार निकली कि कुछ पूँछिये मत ।"

"क्यों, होशियार वह निकली या तुम ?"

"कहाँ हाथ आ सकी वह मेरे ?"

"उसकी दौलत तो आ सकी तुम्हारे हाँथ ?"

"हाँ, यों ही थोड़ी बहुत ।"

"मैंने तो सुना है कि तीस-चालीस हजार पर हाँथ साफ कर चुके हो।"

"नहीं यार ! तुम्हें किसी ने गलत खबर दी है ।"

"मुझे किसी ने नहीं खुद शीला ने बताया है ।"

"तुम्हें कहाँ मिली वह ?" सिनहा ने आश्चर्यान्वित होकर प्रश्न किया ।

"मेरे घर पर ।"

"आपके घर पर ?"

"तुम्हें इसमें आश्चर्य क्यों हो रहा है । जो तुम्हारे यहाँ आ सकता है वह क्या मेरे यहाँ नहीं ? फर्क सिर्फ इतना ही है कि लोग मेरे यहाँ से होकर तुम्हारे पास आते थे और तुम्हारे यहाँ से होकर मेरे पास आने लगे हैं ।"

"उसके चक्कर में न फँसियेगा । वह बहुत होशियार औरत है । मेरे यहाँ रहना चाहती थी ।"

"तो रख लेते । इसमें हर्ज क्या था ?"

"वाह ! मरा कौआ कौन बाँधे अपने यहाँ । उसको रख लेने से और लोग न भड़कने लगते ?"

"तो यह कहो कि आज कल गहरे पानी में हो ।"

"कहाँ यार ! चारो ओर रेगिस्तान ही रेगिस्तान नजर आ रहा है।"

"तो क्या क्लब में भी कुछ नहीं है ?"

"क्लब के सब पुराने हो चुके हैं और नया कोई आता दिखाई नहीं

दे रहा है ।"
"मैं तो सोच रहा था कि मैं ही रेत में अपनी नाव घसीट रहा हूँ । तुम भी मेरे जैसे ही निकले । अच्छा ! मेहता के क्या हाल-चाल है ?"
"वहीं हैं जो पुराने थे ।"
"उनके भी बुरे दिन चल रहे हैं क्या ?"
"बुरे तो नहीं, लेकिन कोई खास अच्छे भी नहीं कहे जा सकते ।"
"और दूसरे लोगों का रोजगार कैसा चल रहा है ?"
"अब तुमसे क्या छिपाना है । दरअसल बात यह है कि उस शीला के पीछे मुझे इतना वक्त बरबाद करना पड़ा कि किसी से मिलने-जुलने तक की फुरसत न मिली । आज ही तो मुक्त हो पाया हूँ उससे ।"
"लेकिन वह तो तुम्हारी जान की भूखी मालूम देती है ।"
"अभी उसने दुनियाँ देखी ही कहाँ है ? पक्की देहातिन है ।"
"और अगर कहीं तुम्हारी चालबाज़ी डा० कान्त को उसने बता दी तो ?"
"तो क्या समझते हो कि उन्हें मालूम नहीं ? उन्हें सब कुछ मालूम है ।"
"फिर भी उन्होंने उसे इतनी आजादी दे रखी थी ?"
"यह तो जानते ही हो कि वह शहर के सबसे बड़े डाक्टर हैं । दिन-रात मरीजों के ही चक्कर में फँसे रहते हैं । उन्हें इतनी फुरसत ही कहाँ कि वह इन झँझटों में पड़ें और फिर वह औरत भी तो कम होशियार नहीं है ।"
"कभी तुम उसे पक्की देहातिन कहते हो कभी होशियार बताते हो—कुछ समझ में नहीं आता कि वह क्या है ?"
"वह ऐसी ही है । जल्दी से किसी की भी समझ में नहीं आ सकती वह । हाँ, जितना मैं समझ सका हूँ उसे वह रुपये पैसे के मामले में तो बुद्धू है । इसके अलावा और बातों में बड़ी होशियार है ।"

"और बातों से मतलब ?"
"पक्की भारतीय नारी है। पतिव्रता है। कोई भी चाल चलने नहीं देती अपने ऊपर।"
"खैर! देखूँगा, इस समय तो वह मेरे यहाँ है।"
"फिर भी जरा बच के रहना।"
"फिकर न करो।"
"अगर कोई जरूरत पड़े तो मुझे फोन कर देना।"
"ऐसी नौबत ही नहीं आने पायेगी। कह कर कौशल ने उठते हुये कहा—"अच्छा! अब चलता हूँ, कई लोगों से मिलना है अभी।"
"वाह यार! इतने दिनों बाद तो मिले हो। ऐसे ही चले जाओगे ?"
"मतलब ?"
"कुछ पीना-वीना नहीं चाहते हो क्या ?"
"अब इस समय दोपहर को, नहीं। शाम को वहीं कलब में मिलेंगे।" कह कर कौशल चल दिये।

३३

संध्या समय भोजन करने के पश्चात कला ने घड़ी की ओर देखते हुये शीला से कहा—"तुम भी साड़ी-वाड़ी बदल डालो।"
"क्यों ?"
"अरे बदल तो। लो इसे पहन लो।" अलमारी से निकाल कर एक साड़ी देते हुये कला ने कहा।
"आखिर कुछ बताओगी भी ?"
"एक प्रोफेसर साहब हैं, उनके यहाँ अभी चलना है।"

"किसलिये ?"
"आज उनका जन्म दिन है। खूब गाना-बजाना होगा। अच्छा-खासा मनोरंजन रहेगा।"
"मैं नहीं जाने की उनके यहाँ।" कह कर शीला ने हाँथ की साड़ी एक ओर रख दी और सोफे पर बैठ गई।
"क्यों, क्यों नहीं चलोगी ?"
"मेरा मन नहीं करता चलने को।"
"आखिरकार यहाँ पड़े-पड़े करोगी क्या ?"
"मुझे एकान्त अच्छा लगता है। भीड़—भाड़ में मेरा दम घुटने लगेगा।"
"तो फिर लो मैं भी नहीं जातीं।" कह कर कला बैठ गई।
"नहीं, तुम जाजो, अगर नहीं जाओगी तो वह बुरा मान जायेंगे।"
"बुरा मान जाय तो मान जाय, मैं तुम्हारे बगैर नहीं जाने की।"
"देखो कला ! इससे मुझे दुख होगा। मैं नहीं चाहती कि तुम मेरे कारण न जाओ।"
"तो फिर साथ चलती क्यों नहीं ?"
"अगर और कहीं एकान्त में चलने को कहतीं तो मैं अवश्य चलती, लेकिन मुझे इस समय गाना-बजाना कुछ भी अच्छा नहीं लगता और यहाँ तक कि तुम्हारे अलावा मैं किसी का मुँह भी नहीं देखना चाहती।"
"क्यों ?"
"मुझे चारो ओर धोखा, छल, कपट और स्वार्थ ही स्वार्थ दिखाई दे रहा है। मैं ऐसी दुनियाँ से दूर रहना चाहती हूँ। मुझे इस एकान्त कमरे में बड़ा सुख मिल रहा है। क्या इस सुख से वञ्चित करके मुझे तुम वहाँ घुटने के लिये ले चलना चाहती हो ?" कहते ही शीला के नेत्र डबडबा आये।
"ऐसा क्यों सोचती हो शीला बहिन ! मैं तो इसलिये चलने को क

रही थी कि कुछ देर के लिये आप अपना दुःख भूल सकेंगी।"

शीला के गालों पर लुढ़कते हुये बड़े-बड़े आँसुओं को पोंछते हुये कला ने कहा।

"वहाँ मैं अपना दुःख भूल नहीं सकूँगी, बल्कि उसे और आहुति मिलेगी।"

शीला की बात सुन कर कला विचारमग्न हो गई। कला को विचारों में खोया हुआ देख कर शीला ने कहा—"क्या सोच रही हो कला?"

"कुछ नहीं।" कला ने चौंकते हुये कहा।

"ऐसा कैसे हो सकता है? तुम्हारी गम्भीरता प्रमाण के लिये यथेष्ठ है।"

"मैं बड़ी दुविधा में पड़ी हूँ।"

"किस दुविधा में?"

"जाऊँ या न जाऊँ।"

"जाओगी कैसे नहीं।" शीला का स्वर अधिकार पूर्ण था।

"लेकिन तुम्हें छोड़ कर कैसे जा सकूँगी?"

"शीला ने कला को पकड़ कर उठाया और द्वार की ओर ले जाते हुये कहा—"ऐसे।"

"अगर इसी तरह मुझे वहाँ तक पहुँचा दो तो............।"

"यानी मैं भी साथ पहुँच जाऊँ।"

"मैं पहुँचने को नहीं पहुँचाने को कह रही हूँ।"

"अच्छा! अब जाओ, नहीं तो देर हो जायेगी।"

"आपको अकेला छोड़ने का जी नहीं चाहता।"

"लेकिन मेरा तो जी चाहता है अकेले रहने को।"

"अच्छा! तो आप यहीं रहियेगा, कहीं जाइयेगा नहीं।" कह कर कला आगे बढ़ गई शीला कुछ देर तो वहीं खड़ी रहीं और कला को जाते हुये देखती रहीं, परन्तु जब कला दृष्टि से ओझल हो गई तो वह आकर बिस्तर पर लेट रहीं। लेटते ही अनेकानेक विचारों ने

मस्तिष्क पर अपना अधिकार जमा लिया। विचार आते और चले जाते लेकिन कड़ी टूटने का नाम ही न लेती। उत्तरोत्तर बढ़ती हुई विचारों की गहनता ने शीला को व्यथित कर दिया। वह उठीं और एक गिलास पानी पिया और बाहर ही ड्राइंग रूम में बैठकर कला के दिये हुये अलबम को देखने लगीं। यद्यपि वह अलबम एक बार देख चुकी थीं, फिर भी चित्र अरुचिकर नहीं प्रतीत हो रहे थे। इसी बीच किसी के आने की आहट प्रतीत हुई। सामने की ओर देखा तो कौशल आते हुये दिखाई दिये। शीला ने अलबम बन्द करके यथास्थान रख दिया और उठकर अपने कमरे की ओर जाने ही वाली थीं कि कौशल का स्वर सुनाई दिया—"कहाँ जा रही हैं आप ?"
"अपने कमरे में।"
"यह भी तो आपका ही कमरा है, बैठिये न।" कौशल भीतर प्रविष्ठ हो चुके थे। उनके नेत्र रक्त वर्ण थे। चाल अटपटी और स्वर अटकता सा था। शीला ने समझ लिया कि कौशल शराब पीकर आये हैं, अतएव उन्होंने कहा—"मैं सोने जा रही हूँ, मुझे नींद लगी है।"
"क्या नींद मुझसे भी अधिक प्यारी है ? आज नींद की जगह मैं ही सही।"
शीला के कान खड़े हो गये। परिस्थिति गम्भीर प्रतीत हुई, इसलिये वह बाहर की ओर बढ़ीं।
"आप तो जा रही हैं, जरा सुनिये तो....।" कहते हुये लपक कर कौशल ने शीला को पकड़ लिया।
शीला ने अपने को छुड़ाते हुये कहा—"यह आप क्या कर रहे हैं ?"
"कुछ नहीं-कुछ नहीं, सिर्फ आपको रोक रहा हूँ।"
"किसलिये ?"
"कुछ कहने के लिये कुछ सुनने के लिये।"
"लेकिन मैं कुछ भी कहना सुनना चाहती।"
"क्या मैं सिनहा से भी गया-बीता हूँ। वह साला...... ।"

"खबरदार ! जो आगे जबान खोली ।" शीला ने जोर से डाँटा ।

"ओह हो ! इतना प्यार करती हो उसे कि उसके खिलाफ...... ।"

"कौशल बाबू ।" शीला का तीव्र स्वर गूंज उठा ।

,'जोर से बोल कर मुझे डराना चाहती हो, लेकिन मैं डरने वाला नहीं, तुम्हारी जैसी एक नहीं हजारों.........।"

"आप चुप नहीं रहेंगे ? मैं शोर करती हूँ ।"

"कौन बैठा है यहाँ तुम्हारा शोर सुनने वाला ? किसे बुलाओगी सहायता के लिये ? देखें कौन आता है तुम्हारा हमदर्द ? कहकर कौशल ने शीला को अंक मे समेटने की चेष्टा की ।

शीला ने अपने को छुड़ा कर कौशल को ऐसा धक्का दिया कि वह फर्स पर गिर पड़े और शीला भागीं लेकिन साड़ी का छोर कौशल के ही हाथ में होने के कारण वह भाग न सकीं । कौशल ने साड़ी पकड़ कर अपनी ओर शीला को घसीटते हुये कहा—"कहाँ भाग कर जाओगी ? मेरे चंगुल में फँसी हुई चिड़िया का निकल भागना जरा मुश्किल है ।" इसके पूर्व कि कौशल पुनः शीला को अपनी बलिष्ट भुजाओं में जकड़ सकें शीला ने दोनों हाथों से कौशल का गला इतनी जोर से पकड़ कर दबाया कि कौशल का शरीर ढीला पड़ गया और गों-गों की आवाज निकलने लगी । कौशल के विस्फरित भयानक नेत्रों को देखकर शीला डर गई और एकदम छोड़ दिया । कौशल खड़े न रह सके और वैसे ही धड़ाम से फर्स पर गिर पड़े । शीला ने फर्स पर पड़े कौशल के शरीर को एक बार देखा और तेजी के साथ भागती हुई फाटक के बाहर हो गई ।

कला रात के समय काफी देर से लौटीं । बाहर नौकर बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे । कला को आता हुआ देखकर सभी उठ खड़े हुये । कला ने सभी को एक ही स्थान पर एकत्र देखकर ठिठकते हुये कहा—"तुम सब लोग यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"आप का इन्तजार ।"

"क्यों ?"

"बाबू जी को न जाने क्या हो गया है । वह बड़ी देर से फर्स पर पड़े हैं ।" एक नौकर ने कहा ।

"ज्यादा पी रखी होगी ।" कहकर कला तेजी से आगे बढ़ गईं । ड्राइंग रूम में जाकर देखा और आवाज दी, लेकिन कौशल टस से मस न हुये । कला ने पकड़ कर उन्हें हिलाया तो निर्जीव सा शरीर हिला-डुला और फिर ज्यों का त्यों हो गया । कला ने जोर से पुकारा और जगाने की अनेक चेष्टायें कीं, लेकिन सभी व्यर्थ सिद्ध हुईं । वह उठ कर खड़ी हुईं और डाक्टर को टेलीफोन किया । थोड़ी ही देर में डाक्टर की ओर से आने का आश्वासन पाकर वह शीला के कमरे में गईं तो बिस्तर खाली पाया । इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई फिर भी शीला की उपस्थिति का कोई भी आभास न प्राप्त हो सका । अन्य कमरों में भी जा-जा कर देखा तो भी शीला न दिखाई दीं । शीला की अनुपस्थिति से कला का हृदय सशंकित हो उठा । उन्होंने नौकरानी से पूछा । उसने उत्तर दिया मैं नहीं जानती । कला बड़े असमंजस में पड़ी सोचती रहीं कि इतनी रात गये वह कहाँ जा सकती हैं । फिर विचार आया कि सम्भव है अपने यहाँ चली गई हों । कला ने शीला के विषय में जानने के लिये ज्यों ही फोन उठाया त्यों ही डाक्टर ने भीतर प्रवेश किया । डा० को आया हुआ देखकर कला ने फोन वहीं रख दिया और कौशल की ओर संकेत करके बोलीं—"देखिये डाक्टर साहब ये काफी

समय से ऐसे ही पड़े हैं। मैंने इन्हें बहुत उठाने की कोशिश की, लेकिन ये न तो आँखें खोलते हैं और न कुछ कहते ही हैं।"

डाक्टर ने झुक कर कौशल के चेहरे की ओर देखा तो गले में अंगुलियों के नीले-नीले निशान ओर सूजन दिखाई दी। डाक्टर ने कला की ओर देखते हुये कहा—"किसी ने इनका गला दबाया है ?"

कला सुनकर सन्न रह गई और साश्चर्य बोलीं—"यहाँ डाक्टर साहब इनका गला कौन दबा सकता है ?"

"देखिये न, गले पर उंगलियों के निशान बने हैं।" खड़े होते हुये डाक्टर ने कहा—"आप इन्हें जल्दी से जल्दी अस्पताल ले जाइये। शायद बच जाँय।"

कला के होश फाख्ता हो गये। अपने को अकेली समझ कर घबड़ा उठीं, लेकिन तुरन्त नौकरों की सहायता से कौशल को कार में लिटाया और अस्पताल ले चलीं। अस्पताल में रात भर निरन्तर उपचार होने के बाद कौशल ने सुबह आँख खोलीं। कला की प्रसन्नता की सीमा न रही। तत्क्षण दृष्टि मिलाते हुये उन्होंने पूँछा—"कल क्या हो गया था ?"

"शीला कहाँ हैं ?" बड़े ही मन्द स्वर में कष्ट पूर्वक कौशल ने कहा।

"उनका तो पता ही नहीं।"

"उसकी तलाश करवाओ।"

"कुछ बताइयेगा भी कि हुआ क्या ? डाक्टरों का कहना है कि किसी ने आपका गला दबाया है ?"

"हाँ, शीला ने।"

"क्या, शीला ने ?"

"हाँ।"

"लेकिन, क्यों ?"

"मैं जब रात में लौटा तो तुम कहीं चली गई थीं। ड्राइंग रूम में वह बैठीं तुम्हारा एलबम देख रही थीं। मैंने तुम्हारे बारे में उनसे जानना

"परिचय नहीं था।" मुस्करा कर डा० क़ान्त ने वाक्य पूरा कर दिया।
"जी-जी, मेरा उस समय आपकी ओर ध्यान ही नहीं गया।"
"खैर ! कोई बात नहीं। यही कौन कम है कि इसी समय ध्यान आ गया मेरा।" कुछ रुक कर डा० कान्त ने पूँछा—"और हाँ, आप यहाँ अकेली ही दिखाई दे रही हैं।"
"पिता जी आज कल बाहर गये हुये हैं।"
"क्या नाम है आपके पिता जी का ?"
"बंशीधर राय।"
"तो रायसाहब आपके पिता हैं !" डा० कान्त ने आश्चर्य व्यक्त किया—"उन्हें तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"
"और वह भी आपको अच्छी तरह जानते हैं। वह तो आपके पास शीला जी के साथ आना चाहते थे लेकिन कलकत्ते के मिल में मजदूरों ने आग लगा दी और सहसा उन्हें वहाँ जाना पड़ा।"
"लेकिन इस समय वह कहाँ गई होगी ?"
"मैं कुछ नहीं कह सकती। मैं तो स्वयं उनसे मिलना चाहती हूँ। कल से ही मैं आश्चर्य में हूँ कि यह सब कैसे हो गया !"
"आपके भाई ने तो बता दिया है।"
"लेकिन मुझे उनकी बात कुछ सन्देह जनक प्रतीत हो रही है।"
"आप कुछ अन्दाजा भी नहीं लगा सकती हैं कि वह कहाँ गई होंगी ?"
,'मेरी समझ में ही नहीं आ रहा है कि वह गई कहाँ होंगी।"
"आपकी ही तरह शायद किसी.......।"
"ऐसा तो और कोई है ही नहीं जिसके यहाँ वह जा सकें।"
"कितनी बेवकूफ औरत है। मारी-मारी घूम रही है और घर नहीं आती।"
"आपने उनके लिये घर में जगह ही कहाँ रखी है ?"
"क्यों ?"
"उनकी जगह तो किसी और ने ले रखी है।"

"उसकी इसी गलतफहमी ने तो उसकी यह दशा कर रखी है।"
"तो क्या जो वह कह रही थीं, सब झूठ है ?"
"अब मैं क्या कहूँ आपसे ? ये हैं डा० रञ्जना। मेरे साथ ही प्रैक्टिस करती हैं। एक दिन मेरी तबियत काफी खराब थी। उसकी अनुपस्थिति में ये मेरी देख-भाल करती रहीं। बस ! तब से उसका दिमाग खराब है।"
"तब तो बहुत बुरा हुआ। मैं तो उनकी बात का विश्वास कर बैठी थी। यद्यपि पिता जी उनकी इस बात पर अन्त तक अविश्वास ही प्रकट करते रहे फिर भी उनके कहने का ढंग कुछ ऐसा होता था कि कोई भी अविश्वास न कर पाता था।"
"मुझे ऐसा मालूम दे रहा है कि वह मुझे बदनाम किये बिना न रहेगी।"
"हाँ, इस समय वह प्रतिशोध की भावना से आन्दोलित हैं, पता नहीं किस समय क्या कर बैठें।"
"अच्छा, अब मैं चलता हूँ। यदि आवश्यकता समझियेगा तो फोन से सूचित कर दीजियेगा।"
"जी, अच्छा।" कहकर कला ने हाथ जोड दिये।
डा० कान्त भी हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हुये चल दिये। रञ्जना भी साथ चल दीं।

३५

शीला भागती रहीं। जहाँ रुकती वहीं से भागना पड़ता, रुक कहीं न रातीं। वह भाग रहीं थी उनके साथ दिन और रात भी भाग रहे थे। तीन दिन तक लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान को भागती फिरती रहीं। भूँख की ज्वाला को पानी से बुझाने के लिये जैसे ही वह नल

की ओर बढ़ीं वैसे ही आवाज सुनाई दी—"बेटी इधर से नहीं, उस तरफ से जाओ। इधर काई जमी हुई है, पैर फिसल जायगा, गिर पड़ोगी।"

शीला ने वाक्य समाप्त होने के पूर्व ही एक दो पग आगे बढ़ कर ज्यों ही मुड़ कर देखना चाहा त्यों ही पैर ऐसा फिसला कि लाख चेष्टा करने पर भी वह अपने को संभाल न सकीं और वहीं गिर पड़ीं। उठने की सामर्थ्य शरीर में थी नहीं। क्षुधा ने शरीर को शक्तिहीन बना दिया था। गिरते ही शीला के नेत्रों के सामने अँधेरा छा गया था।

शीला की आँखें जब खुलीं तो अपने को चारपाई पर लेटे पाया। बगल में बैठे हुये एक वृद्ध ने अपनी दीर्घ श्वेत दाढ़ी हिलाते हुये कहा—

"कहीं चोट तो नहीं आई है बेटी।"

शीला उसकी बात का उत्तर देने की अपेक्षा अपलक नेत्रों से उसकी ओर देखती रह गईं।

"लो यह दूध पी लो। इसमें फिटकरी मिली है। अगर कहीं चोट लगी भी होगी तो ठीक हो जायगी।" दूध भरा गिलास शीला की ओर बढ़ाते हुये उस वृद्ध ने कहा।

शीला ने उसके मुँह से अपनी दृष्टि हटा कर गिलास की ओर देखा और फिर उसके मुँह की ओर देखने लगीं।

"लो, पी लो बेटी, घबड़ाओ नहीं। भगवान चाहेगा तो अभी उठ बैठोगी।"

शीला ने गिलास ले लिया और एक साँस में ही आँख मूँद कर पी गईं। रिक्त गिलास में झाँकते हुये शीला को देख कर उस वृद्ध ने पूँछा—"और पियोगी दूध ?"

शीला ने स्वीकारात्मक सिर हिला दिया। वह वृद्ध गिलास लेकर बाहर चला गया। शीला ने अपने को अकेले पाकर चारो ओर दृष्टि डाली और अपनी ग्रामीण गृहस्थी का स्मरण हो आया उन्हें। बापू का चित्र दृष्टि के समक्ष साकार हो उठा। उनके निर्देशात्मक वाक्य सुनाई पड़ने लगे। शनैः शनैः शीला के नेत्र मुँद गये और गत जीवन के दृश्य चल-

चित्र की भाँति गुजरने लगे।
"क्या सो गईं बेटी ?" वृद्ध ने अन्दर प्रवेश करके शीला को देख कर पूछा।
शीला ने नेत्र खोल दिये।
"लो, यह दूध।"
शीला ने पुनः उस गिलास को खाली करते हुये कहा—"बड़ा कष्ट दे रही हूँ बाबा आपको।"
"इसमें बेटी कष्ट की कौन बात है।" रिक्त गिलास हाथ में लेते हुये उसने कहा—"यह तो मेरा धर्म है। गिरे हुओं को उठाने से बढ़ कर इस संसार में और कौन काम है।"
कष्ट को पीते हुये शीला उठ बैठीं और साहस एकत्र कर खड़े होते हुये कहा—"अच्छा बाबा।"
"जाओगी बेटी ?"
"हाँ बाबा।"
"कहाँ ?"
"   "
"चुप क्यों हो गईं ? ठीक है सोचती होगी कि अगर घर का पता बता दूँगी तो कहीं यह बूढ़ा आ न धमके किसी दिन।"
"नहीं, बाबा यह बात नहीं है। मैं खुद नहीं सोच पा रही हूँ कि कहाँ जाऊँ ?"
"क्यों, क्या तुम्हारा अपना कोई घर नहीं है ?"
"नहीं।"
"तो फिर रहती कहाँ हो ?"
"रहने को कहाँ मिलता है, इधर-उधर टक्कर खाती फिरती हूँ।" कहते ही शीला के नेत्र सजल हो उठे।
"बैठ जाओ बेटी ! बड़ी दुःखी मालूम दे रही हो।"
शीला के नेत्रों से झर-झर आँसू झरने लगे।

"रो मत बेटी रो मत ! अगर तेरा कोई घर नहीं है तो इसे ही अपना घर समझो और यहीं रहो। जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं तब तक तुम्हें कहीं भटकने की जरूरत नहीं।"

शीला को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। वह वृद्ध की ओर कृतज्ञता पूर्ण दृष्टि से देखने लगीं। वृद्ध की आत्मा बोल पड़ी—"बेटी मनुष्य को हिम्मत कभी नहीं हारना चाहिये। अच्छे-बुरे दिन सभी की जिंदगी में आते हैं। अगर आज बुरे दिन हैं तो कभी अच्छे भी आवेंगे।" उस वृद्ध ने उठते हुये कहा—"अच्छा बेटी ! अब तुम यहीं रहना, कहीं जाना नहीं।"

"कहाँ जा रहे हैं आप ?"

"काम पर जा रहा हूँ बेटी। शाम तक जरूर लौट आऊँगा।"

"अच्छा जाइये। जरा जल्दी ही आने की कोशिश करियेगा।"

शीला वृद्ध का जाना देखती रहीं। काफी देर तक वहीं खड़े रहने के पश्चात शीला पुनः आकर लेट रहीं। लेटते ही गत जीवन की अनेक घटनायें एक-एक करके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगीं। शीला सोचते सोचते सो गईं। कई दिन से सो न सकने के कारण काफी देर तक वह सोती रहीं। जब आँख खुली तो दिन ढल चुका था। सूर्य अस्ताचल को जा रहे थे। शीला के मस्तिष्क में यकायक कोई विचार आया, वह उठीं और बगल की कोठरी की ओर चल दीं।

एक पहर रात बीतने पर जब वह वृद्ध लौटे तो शीला को द्वार पर खड़े देखकर कहा—"तुम यहाँ खड़ी क्या कर रही हो ?"

"आपकी प्रतीक्षा।" कह कर शीला वृद्ध के पीछे-पीछे अन्दर चली गईं।

वृद्ध ने कपड़े उतारते हुये कहा—"बड़ी भूख लगी होगी।"

"किसे ?"

"तुम्हें।"

"और आपको ?"

"भूख किसे नहीं लगती।"
"तो फिर चलिये, खाना तैयार है।"
"तुमने क्यों इतनी तकलीफ उठाई। मैं आकर बना लेता।"
"यह कैसे हो सकता है कि मेरे रहते आप भोजन बनायें। बाहर का काम आपका और घर का काम मेरा।" कहकर शीला भीतर चली गईं और भोजन की तैयारी करने लगीं।
वृद्ध ने रोटी का कौर तोड़ते हुये कहा—"बहुत दिन बाद खाने का आनन्द आया है आज !"
"मुझे खाना बनाना कहाँ आता है।"
"इससे भी अच्छा कहीं खाना बन सकता है ?"
"बन क्यों नहीं सकता। कल बनाकर खिलाऊँगी आपको।"
"लेकिन तुम तो अभी कह रही थीं कि तुम्हें खाना बनाना नहीं आता ?"
शीला ने इस पराजय में भी विजय का गर्व अनुभव किया और गालों पर लाली दौड़ गई।
वृद्ध ने मुस्कराते हुये कहा—"झूठ भला कहीं छिपता है।"
"मैंने तो यों ही कह दिया। मुझे कुछ आता भी है।"
"यह तो कल बतायेगा कि तुम्हें क्या आता है।" शीला को रोटी थाली में रखते हुये देखकर वृद्ध ने कहा—"अब बस ! बहुत खा चुका। रोज से ज्यादा खा गया हूँ।"
"यह तो आप मेरे सन्तोष के लिये कह रहे हैं। अभी आपने खाया ही क्या है ?"
"इतनी देर से तो खा रहा हूँ। सारी रोटियाँ तो खा डालीं।"
"आप शायद संकोच कर रहे हैं।"
"अपने घर में ?"
शीला को तत्क्षण अपनी स्थिति का भान हो गया। वह वृद्ध के स्थान पर पति को समझ बैठी थीं। उन्होंने मुस्कराते हुये कहा—"कहीं आप

भूखे न रह जायँ।"
"तुम्हारे रहते भला मैं भूखा रह जाऊँ!" कहकर वह खड़े हो गये। शीला ने भी उसके पश्चात भोजन किया और दोनों बात-चीत करते-करते सो गये।

३६

',डा० कान्त ने समवेदना प्रकट करते हुये कहा—"डाक्टर, जो होना था सो हो गया कब तक इसी तरह आँसू बहाती रहोगी?"
आँसू पोंछते हुये रञ्जना ने कहा—"आप जानते ही हैं डाक्टर कि पिता जी की मृत्यु के पश्चात माँ के अतिरिक्त मेरा था ही कौन? उन्हीं का एक सहारा था और वह भी...........।"
वाक्य पूरा होने के पूर्व ही रञ्जना ने अपना सिर घुटनों में छिपा लिया और सिसकने लगीं।
एक दिन रञ्जना की माँ का पैर जीने से उतरते हुये फिसल गया। वह लुढ़कती हुई नीचे आ गिरीं। सिर फट गया उनका। घर में कोई था नहीं जो उस समय उनकी सहायता करता। रञ्जना अस्पताल में थी। वह न उठ सकीं और न किसी को पुकार ही सकीं। रञ्जना जब दोपहर को लौटीं तो माँ को रक्त से लथपथ मरा पाया।
डा० कान्त ने रञ्जना के सिर पर हाथ फेरते हुये सहानुभूति पूर्ण स्वर में कहा—"आप अपने को अकेला क्यों समझती हैं। माँ को तो एक न एक दिन जाना था ही।"
"यह तो ठीक है डाक्टर, लेकिन माता-पिता दोनों की ही अभिलाषायें मैं पूरी न कर सकी और वे लोग अतृप्त आकांक्षा लिये इस संसार से

चल बसे।"

"परन्तु इन सब बातों के सोचने से सिवा मन दुखी करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होने का।"

"सो तो है ही लेकिन मन नहीं मानता।"

"मन कैसे मानेगा ? दो रोज से अकेले यहाँ बैठे रोया करती हो उनकी बातें याद करके। जरा बाहर निकलो, तबियत हल्की हो जायगी।"

"लेकिन बाहर निकलने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। क्या मुँह लेकर जाऊँ बाहर ? पास-पड़ोस के लोग क्या कहेंगे ?"

"ऐसी भी हालत में पास-पड़ोस के लोग कुछ कहेंगे ?"

"यही तो उन्हें मौका मिला है कहने का।"

"अगर यहाँ के लोग ऐसे हैं तो तुम्हें शीघ्र से शीघ्र यह मकान छोड़ देना चाहिये।"

"मैं भी नहीं रहना चाहती अब इस मकान में। लेकिन सोचती हूँ जाऊँगी कहाँ ?"

"मेरे यहाँ।"

"आपके यहाँ ?"

"हाँ, मेरे यहाँ रहो चल कर। अब तुम्हारा अकेले ऐसे पड़ोसियों के बीच रहना ठीक नहीं।"

"लेकिन यह मकान ?"

"इसकी चिंता तुम क्यों करती हो ? मैं धीरे-धीरे सब इन्तजाम कर दूँगा।"

रञ्जना मौन होकर कुछ सोचने लगी। डा० कान्त ने उन्हें विचाराधीन देखकर कहा—"सोच क्या रही हो ? उठो, जल्दी से हाथ-मुँह धो डालो और चलो मेरे साथ।"

रञ्जना फिर भी गुमसुम बैठी रहीं।

"जाती क्यों नहीं, व्यर्थ में समय नष्ट कर रही हो।"

डा० कान्त का आग्रह रञ्जना न टाल सकीं और उठ कर अन्दर चली

गईं। थोड़ी देर में रञ्जना हाथ-मुँह धोकर और साड़ी बदल कर आ गईं। डा० कान्त तो पहले से ही तैयार बैठे थे। रञ्जना को साथ लेकर कार में आ बैठे और कार चल दी।

धीरे-धीरे रञ्जना का सारा सामान डा० कान्त के बँगले में आ गया। कुछ दिन बाद रञ्जना का मकान भी बिक गया। अब रञ्जना पूर्ण रूप से डा० कान्त के यहाँ ही रहने लगीं।

मानव के पास ईश्वर प्रदत्त एक बहुमूल्य वस्तु है—विस्मृति। मनुष्य शनैः शनैः दुख-सुख सभी कुछ भूल जाता है। यदि विस्मरण शक्ति का अभाव होता मानव में तो उसका जीवन नर्क बन गया होता। जीवन की अनेक कटु घटनायें सदैव उसके आनन्द के क्षणों को विषाक्त बनाये रहतीं, परन्तु ऐसा न हो सका। रञ्जना धीरे-धीरे माँ की मृत्यु के कारण उत्पन्न शोक को भूलती गईं। अभाव दुःख की अनुभूति का कारण होता है। डा० कान्त के द्वारा रञ्जना की माँ के अभाव की बहुत कुछ पूर्ति हो गई। वह डा० कान्त के साथ काफी उठती-बैठतीं, हँसती-बोलतीं। जहाँ कहीं भी डा० कान्त जाते रञ्जना साथ होतीं। रञ्जना के आने के उपरान्त भी कुछ दिन तो डा० कान्त शीला की खोज करते रहे और शीला का अभाव उन्हें खटकता रहा, परन्तु रंजना के सहवास नें शीला की स्मृति को भी डा० कान्त के मस्तिष्क से धूमिल करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि मस्तिष्क शीला को भूलने में समर्थ हुआ था, परन्तु डा० कान्त का हृदय अब भी कभी-कभी शीला के लिये बेचैन हो उठता था। ऐसे क्षणों में रञ्जना शीला के अभाव की पूर्ति करने का भरसक प्रयास करतीं और यदा-कदा उन्हें सफलता भी मिल जाती।

"तो फिर क्या हो ? तुम्हीं किसी और का इन्तजाम कर दो।"

"मेरी समझ में तो तुम उसे अस्पताल में भरती कर दो। वहाँ उसे कष्ट भी कम होगा और कोई खतरा भी नहीं रहेगा।"

"लेकिन तुम जानती हो मैं गरीब आदमी हूँ, वहाँ का खर्चा कैसे बर-दास्त कर सकूँगा ?"

"अरे ! यह क्या कह रहे हो तुम ? वहाँ तो खर्चा यहाँ से भी कम होता है। सारा इन्तजाम वहाँ सरकार की तरफ से होता है।"

"मगर मुझे तुम पर ज्यादा भरोसा था।"

"तुम किसी बात की फिकर न करो। वहाँ कुछ गड़बड़ नहीं होने पायेगा।"

"मगर भरती तुम्हीं करवा आओ।"

"अच्छा !" कह कर वह स्त्री अन्दर जाने लगी।

"तो क्या अभी ?"

"हाँ, दो एक दिन पहले ही वहाँ पहुँच जाना चाहिये। पता नहीं कब क्या हो जाय। कह कर अन्दर चली गई और कुछ ही देर में शीला को लेकर वह अस्पताल के लिये चल दी।

३८

कई महीने व्यतीत होने पर भी जब शीला का कुछ पता न लगा तो डा० कान्त को विश्वास हो गया कि शीला ने अवश्य आत्महत्या कर ली। रञ्जना भी डा० कान्त की गृहस्थी का सञ्चालन शीला की भाँति करने लगीं। डाक्टर कान्त ने भी सम्पूर्ण व्यवस्था रञ्जना को ही सौंप दी। वह निश्चिन्त होकर अपने कार्य में जुट गये। उनका चिकित्सा कार्य दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति कर रहा था। रञ्जना

का हृदय नर्तन करने लगा। प्रसन्नता की सीमा न रही, फिर भी संकोच प्रदर्शित करते हुये उन्होंने कहा—"कहाँ वह और कहाँ मैं। उन जैसी महान नारी का स्थान मैं भला कैसे ग्रहण कर सकती हूँ।"

"किस बात में कम हो तुम उससे ?"

"हो सकता है कि आपकी दृष्टि में न होऊँ, परन्तु जो इतने दिनों से आप से दूर रहकर भी आपके हृदय में अपना स्थान बनाये हुये है वह महान नहीं तो और क्या है।"

"वास्तव में उसमें कुछ गुण ऐसे थे जो आज भी मुझे उसे भूलने नहीं देते।"

"उनकी तो चर्चा प्रायः आपके मुँह से सुनती हूँ।"

"लेकिन तुम तो शीला की भाँति ही उन गुणों से अलंकृत हो।"

"मैं तो ऐसा अनुभव नहीं करती परन्तु यदि आप ऐसा समझते है तो मेरा अहो भाग्य।"

"तुम्हारी यह हीन भावना मुझे अच्छी नहीं लगती।"

"आप क्या समझेंगे कि अपने देवता को छोटा समझने में कितना आनन्द है।"

"अच्छा अब मैं अपनी देवी से अपने को छोटा समक्ष कर उस आनन्द को अनुभव करने की चेष्टा करूँगा।"

"चेष्टा में आनन्द कहाँ। आनन्द तो स्वाभाविकता में है जो कि आपके लिये असम्भव है।"

"क्यों, मेरे लिये सम्भव क्यों नहीं ?"

"क्योंकि आपको इसके लिये चेष्टा करनी पड़ेगी। आप पुरुष हैं। पुरुष सदैव अपने को स्त्री से श्रेष्ठ मानता आया है। अपने को श्रेष्ठ समझने की इस भावना की जड़ें इतनीं गहरी हो चुकी हैं कि मनुष्य चाह कर भी अपने को पत्नी से छोटा अनुभव नहीं कर सकता।"

डा० कान्त मौन होकर कुछ सोचने लगे।

"आप चुप क्यों हो गये ? सोचने क्या लगे आप ?" डा० कान्त को

विचाराधीन देख कर रञ्जना ने प्रश्न किया।
"मैं सोच रहा हूँ कितना साम्य है तुम्हारे और शीला के विचारों में। ऐसे ही विचार प्रायः भी व्यक्त किया करती थी।" डा० कान्त ने अपना मौन भंग किया।
"वह महान विचारक थीं। उन्हें भला मैं कैसे पा सकती हूँ ?"
"लेकिन मुझे कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। कभी-कभी तो तुम्हारे हाव-भाव भी शीला की ही भाँति होते हैं।"
"यह तो आपकी कृपा दृष्टि का परिणाम है वरना.........।"
"नहीं, रञ्जना ऐसी बात नहीं है। तुम शीला से किसी भी बात में कम नही हो। मुझे तो प्रायः तुम्हें देखकर शीला का भ्रम हो जाता है।"
"और फिर वह भ्रम दूर कैसे होता है ?"
"तुम्हारे व्यवहार की कृत्रिमता उस भ्रम का निवारण कर देती है।"
"यह कृत्रिमता तो स्वरूप के अन्तर के कारण है।"
'उसी स्वरूप में तो तुम्हें देखना चाहता हूँ। मुझे तो उस दिन अपार हर्ष होगा जिस दिन तुम्हें शीला के रू रूप में पाऊँगा।"
डा० कान्त की बात सुनते ही रञ्जना को माँ का स्मरण हो आया। माँ भी तो उसे इसी रूप में देखना चाहती थीं। माँ द्वारा कहे गये एक-एक शब्द रञ्जना को सुनाई देने लगे। रञ्जना को मौन देखकर डा० कान्त ने निराशा पूर्ण स्वर में कहा—"सम्भवतः मैंने अनधिकार चेष्टा की है।"
"नहीं, ऐसी बात नहीं है डाक्टर ! यह तो आपकी महान कृपा है जो आप मुझे इस रूप में स्वीकार करने को तैयार हैं।"
डा० डान्त आगे कुछ सुनने की प्रतीक्षा किये बिना ही बोल उठे—"तो फिर मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ?"
रञ्जना कुछ न बोल सकीं। लज्जा ने उन्हें अपने अंक में समेट लिया। उनके चेहरे पर होने वाले परिवर्तन डा० कान्त की दृष्टि से छिपे न रह सके। वह दूने उत्साह से बोल पड़े—"मौन तो स्वीकृति का लक्षण

है।" कहकर डा० कान्त उठ खड़े हुये और रञ्जना को अंक में समेट लिया और प्यार का चिन्ह अंकित करते हुये कहा—"आज शीला को खो देने का मेरा दुःख तुम्हें पाकर समाप्त हो गया। मैं न जानता था कि एक वस्तु खो देने के बाद उससे भी बहुमूल्य निधि प्राप्त हो जायेगी।"

इसी बीच फोन की घंटी टनटना उठी। कान्त ने बन्धन ढीले कर दिये। रंजना ने तुक्त होकर फोन का चोगा उठा लिया।

३९

अस्पताल में भर्ती होने के दो दिन बाद शीला ने एक बालक को जन्म दिया। शीला की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वृद्ध भी बालक को देखकर फूला न समाया। वहाँ से भागता हुआ वह शुभ समाचार पड़ोसियों को सुनाने आ रहा था कि रास्ते में वह एक मोटर के नीचे आ गया। पहिया गरदन से निकल गया था। चेहरा इतना वीभत्स हो गया था कि पहचाना तक नहीं जा सकता था। लावारिश लाश समझ कर उसकी सरकार की ओर से अन्त्येष्टि क्रिया कर दी गई। शीला रोज उस वृद्ध की प्रतीक्षा करतीं लेकिन वह न आता। दिन बीत रहे थे। शीला का आश्चर्य बढ़ रहा था। आखिरकार एक दिन नर्स ने शीला से आकर कहा—"आज आप अपने घर जा सकती हैं।"

शीला हड़बड़ा कर उठ बैठीं। वह तो चाहती ही थीं कि उन्हें जल्दी से जल्दी छुट्टी मिले और वह वृद्ध से मिले। शीला ने पुत्र को चिपकाया और चलने लगीं। नर्स ने शीला को जाता हुआ देखकर कहा—"वह बुड्ढा लेने नहीं आयेगा क्या तुम्हें ?"

"उनका कई दिन से पता ही नहीं है।" कहकर शीला पुनः चलने को हुई।

"लेकिन बच्चे को तो ढक लो। बाहर बड़ी सर्द हवा चल रही है। बादल भी घिरे हुये हैं। पता नहीं कब बरसने लगे।"

शीला ने कातर दृष्टि से उस नर्स की ओर देखा और बिना कुछ कहे वह वार्ड के बाहर हो गईं। शीला लम्बे-लम्बे डग रखते हुये घर की ओर बढ़ने लगीं। कुछ ही दूर बढ़ पाई होंगी कि सहसा बादल गरज उठे। उनकी गति और तीव्र हो गई और जैसे ही मुँह आकाश की ओर किया मुँह पर चार-छै बूँदें गिर पड़ीं। बूँदों की संख्या में वृद्धि होती गई। शीत वायु झकझोरे डाल रही थी। मार्ग जन शून्य हो गया था। कोई सवारी भी नहीं दिखाई दे रही थी। पानी के तेज होते ही उन्होंने बच्चे को और कस कर चपका लिया और आँचल से ढकना चाहा, लेकिन वह भी गीला हो चुका था। शीला ने एक पेड़ के नीचे शरण ली। काफी देर तक वहाँ खड़ी रहीं। वहाँ भी कुछ न कुछ बूँदें दोनों माँ-बेटे को भिगोती रहीं। शीत से शीला का शरीर काँपने लगा था। पानी कुछ धीमा सा प्रतीत हुआ। शीला बड़ी तेजी के साथ चल दी वहाँ से। पानी जैसे उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। वह भी खूब तेजी से बरसने लगा। शीला ने बालक के चेहरे पर दृष्टि डाली। उसकी आँखें बन्द थीं। वह निश्चेष्ट हो रहा था। उसका शरीर तवे की भाँति जल रहा था। शीला घबड़ा उठीं। उन्होंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। सड़क के किनारे-किनारे पेड़ों के अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई दिया। कुछ दूरी पर स्थित शीला की दृष्टि बंगलों पर पड़ी। शीला बेतहासा उनकी ओर दौड़ीं और रक्षार्थ पहले बँगले में ही घुस गईं। पोर्टिको के नीचे खड़ी होकर शीला ने बच्चे पर पुनः दृष्टि डाली। बच्चे की हालत खराब प्रतीत हुई उन्हें। उन्होंने सीढ़ियाँ पार करके दीवाल पर लगी बिजली की घण्टी का बटन दबाया। वह इतनी घबड़ाई हुई थीं कि बटन से उँगली तब तक न हटाई जब तक भीतर से

आवाज न आ गई—"कौन है ?" आवाज के साथ ही विमला बाहर आ गईं।

"माता जी......।" शीला का स्वर कहते-कहते रुक गया और विमला की ओर देखती रह गईं।

विमला को भी शीला को पहचानते देर न लगी। मुन्ने की मृत्यु का दृश्य उनकी आँखों के सामने सजीव हो उठा। शीला के चेहरे की ओर देखते हुये उन्होंने कहा—"क्या लेने आई है तू यहाँ ?"

शीला कुछ न बोलीं और बालक को आगे बढ़ा दिया।

"यह कौन है ?"

"आपका पोता।"

'पोता' सुनते ही विमला के हृदय का सोया हुआ मातृत्व जाग उठा। सम्पूर्ण कठोरता न जाने कहाँ विलीन हो गईं। आगे बढ़कर बालक को थामते हुये उनके मुँह से निकला—"कान्ती का बेटा !"

शीला सिर झुकाये खड़ी थीं।

विमला बालक को लेकर भीतर भागीं और कक्ष में उनका स्वर गूंज गया—"अरे सुनते हो जी !"

"क्या है ? गला क्यों फाड़े डाल रही हो ?" कहने के साथ ही विमल बाबू आ गये।

विमला के हाथ में बालक को देखते ही उन्होंने पूँछा—"यह किसका बच्चा है ?"

"कान्ती का।"

"यहाँ कैसे आया ?"

विमला ने पीछे घूम कर देखा तो शीला बाहर ही खड़ी दिखाई दीं। वहीं से उन्होंने शीला को आवाज दी—"वहाँ क्यों खड़ी हो ? भीतर आ जाओ न।"

"किसे भीतर बुला रही हो ?"

"बहू को।"

"कौन वही देहातिन ? खबरदार जो उसे भीतर बुलाया।" विमला के पुकारने पर शीला पहले तो आगे बढ़ीं, लेकिन अपने ससुर का आदेश सुन कर वह वहीं की वहीं खड़ी रह गईं।

"यह कभी-कभी क्या हो जाता है तुम्हें ? कभी तो कहते हो अगर कान्ती आ जाय तो उसे रख लोगे और कभी उसकी स्त्री और उसके बच्चे को घुसने नहीं देना चाहते।"

"कान्ती मेरा बेटा है। उसमें मेरा खून है। उसे मैं स्वीकार कर सकता हूँ, लेकिन इस देहातिन को नहीं।"

"और अपने इस पोते को ?" विमला ने बच्चे को आगे कर दिया। विमला बाबू के हाथ अपने आप ही बच्चे को लेने के लिये फैल गये। विमला ने बच्चे को पति के हाथों में सौंपते हुये कहा—"देखो, कितना सुन्दर है। कान्ती भी इस अवस्था में ऐसा ही था।"

"अरे, इसका तो शरीर जल रहा।" विमल बाबू ने बच्चे को लेते ही कहा और उसको अच्छी तरह देखने लगे।

"क्या कहा ?" विमला ने आँखें फाड़ते हुये उसे पति के हाथों से छीन लिया और अपना शाल बालक को ओढ़ाते हुये कहा—जड़ा गया होगा। देखो न, कपड़े भी तो नहीं हैं ठीक से शरीर पर। बाहर की ओर देख कर आवाज दी—"अरे बहू, अन्दर क्यों नहीं आ जाती ?"

विमल बाबू चाह कर भी कुछ न बोल सके।

शीला ने धीरे धीरे भीतर की ओर पैर बढ़ाये। विमला ने शीला को भीतर प्रवेश करते हुये देख कर कहा—"बहू ! इसे तो बुखार मालूम दे रहा है और तू भी तो काँप रही है ?"

शीला कुछ न बोली और दृष्टि जमीन में गड़ाये रहीं।

"कुछ बता तो आखिरकार क्या कारण है तेरा इस हालत में यहाँ आने का ?"

शीला ने बालक की ओर संकेत कर दिया।

"क्या मतलब ?"

शीला ने सिसक-सिसक कर पूरी कहानी सुना दी। सुनने के पश्चात् विमला ने पति की ओर देखते हुये कहा—"सुना अपने बेटे की करतूत। फूले नहीं समाते थे अपने बेटे की तारीफ सुन कर! यह बेचारी यहाँ इस हालत में मारी-मारी फिर रही है और वह कहीं उस औरत के साथ दीवाली मना रहा होगा।"
विमल बाबू ने उठते हुये कहा—"उठो-चलो।"
"कहाँ?"
"उसी के यहाँ।"
"उसी के यहाँ! किसके यहाँ?"
"कान्ती के पास।"
"देखो, इस समय किसी डाक्टर को बुला कर पहले इस बच्चे को दिखाओ। मुझे इसकी हालत अच्छी नहीं मालूम दे रही है। यह झगड़ने का समय नहीं है।"
"जब इसका बाप डाक्टर है तो दूसरा डाक्टर क्यों देखे इसे? चलो जल्दी करो।" कह कर विमल बाबू चले गये।
"चल बहू उठ, तू भी चल।" विमला ने कहा।
"मैं नहीं जाऊँगी वहाँ।"
"क्यों?"
शीला 'क्यों' का उत्तर ढूँढ़ती रहीं लेकिन मिल न सका।
"देख बहू! मैं जानती हूँ कि तुम्हारे साथ उन्होंने ज्यादती की है। तुम्हारी आत्मा तुम्हें रोक रही है वहाँ जाने से, लेकिन यह बच्चा भी तो तेरी ही आत्मा है। इसी के लिये चली चल।"
"आप तो हैं।"
"मेरे होने से क्या होता है? तेरा होना वहाँ बहुत आवश्यक है। कान्त कैसे विश्वास करेगा कि यह उसी का बच्चा है? और फिर समय को पहचानने की कोशिश करो। हो सकता है तेरे दिन फिर लौट आयें।"
"जैसी आपकी इच्छा।" शीला ने धीरे से कहा।

"ताँगा आ गया।" बाहर से विमल बाबू का स्वर सुनाई दिया। विमला का अनुसरण करती हुई शीला आकर ताँगे में बैठ गई। विमल बाबू ने पत्नी के हाथ से बालक को लेकर ताँगे वाले के साथ आगे बैठ गये और ताँगा चल पड़ा।

पानी बरसना बन्द हो गया था। आकाश में तारे टिम-टिमाने लगे थे। सड़क के दोनों ओर लगी हुई बत्तियाँ मार्ग को प्रकाशित कर रही थीं। सिविल लाइन्स आ गया। दूर से ही डा॰ कान्त का बँगला जगमगा रहा था। सहस्रों विद्युत बल्ब रात्रि को दिन में परिणत करने का प्रयास कर रहे थे। चारो ओर चहल-पहल मची हुई थी। नौकर इधर से उधर दौड़ रहे थे। फाटक के बाहर सड़क पर अनेकों कारें खड़ी थीं। ताँगे को निकलने तक की जगह न थी इसलिये ताँगा कुछ दूरी पर ही रुक गया। तीनों लोग ताँगे से उतर कर पैदल ही चल दिये बँगले की ओर। विमला तो पति का साथ दे रही थीं लेकिन शीला का अन्तर बढ़ता ही जा रहा था।

विमल बाबू को बालक को लिये हुये देख कर फाटक पर ही खड़े व्यक्ति ने रोकते हुये कहा—"आज डाक्टर साहब किसी बच्चे को नहीं देखेंगे।"

"क्यों ?"

"उनको फुरसत नहीं है। आप देख नहीं रहे हैं कितने मेहमान आये हुये हैं ?"

"क्या है यहाँ ?"

"आपको नहीं मालूम !" द्वारपाल ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"नहीं।"

"आज डाक्टर साहब की शादी होने जा रही है।"

"शादी ! किसके साथ ?"

"डाक्टर के साथ।"

"डाक्टर कौन ?"

"डा० रञ्जना उन्हीं के अस्पताल में तो काम करती हैं।"

विमल बाबू एक क्षण खड़े कुछ सोचते रहे। उसके बाद उन्होंने आगे पैर बढ़ाये। द्वारपाल ने मार्ग रोकते हुये कहा—"आप कहाँ जा रहे हैं?"

"हट जा।" एक हाथ से बच्चे को छाती से चिपकाये और दूसरे हाथ से दारपाल को ढकेलते हुये उन्होंने कहा और आगे बढ़ गये। उस व्यक्ति ने उन्हें पकड़ना चाहा लेकिन साथ ही खड़े दूसरे द्वारपाल ने उसे पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुये कहा—"यह क्या कर रहा है? जानता नहीं ये डा० साहब के पिता विमल बाबू हैं।"

थोड़ी दूर पर खड़ी डा० रञ्जना मेहमानों का मुस्कान बिखेरते हुये स्वागत कर रही थीं। इसके पूर्व कि रञ्जना उनके स्वागत में कुछ कर सकें विमल बाबू ने कठोर स्वर में पूँछा—"कान्त कहाँ है?"

रञ्जना ने साश्चर्य उनकी ओर देखते हुये पूँछा—"आप किसे पूँछ रहे हैं?"

"तुम कौन हो? क्या नाम है तुम्हारा?" विमल बाबू ने रञ्जना को घूरते हुये पूँछा।

"मेरा नाम रञ्जना है।"

"तो तुम्हारे साथ ही वह शादी करने जा रहा हे?"

डा० कान्त के प्रति प्रयोग किये गये शब्दों पर ध्यान देने पर भी रञ्जना ने शिष्टाचार की सीमा का उल्लंघन न किया और बड़ी ही शालीनता पूर्वक प्रश्न किया—"आप कौन हैं?"

रञ्जना के प्रश्न की उपेक्षा करते हुये विमल बाबू ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाते हुये पूँछा—"वह है कहाँ?"

"आप बताते क्यों नहीं कि आप हैं कौन?" रञ्जना के स्वर में तेजी थी।

"मैं तुझसे बात नहीं करना चाहता।" विमल बाबू का स्वर तिरस्कार पूर्ण था।

रञ्जना का आत्माभिमान जाग उठा। उन्होंनें अधिकार पूर्ण स्वर में कहा—"तो आप नहीं मिल सकते उनसे।"
"मुझे कौन रोक सकता है?" आगे बढ़ते हुये विमल बाबू ने कहा।
विमल बाबू द्वारा किये जाने वाले अवसर के प्रतिकूल आचरण ने आस पास के लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। समस्त क्रिया-कलाप बन्द हो गये। मेहमानों ने अपनी-अपनी कुर्सियाँ छोड़ दीं और विमल बाबू की ओर बढ़ आये। वह द्वार की ओर बढ़ रहे थे। डा० कान्त उन्हें सीढ़ियों नीचे उतरते हुये दिखाई दिये। उन्होंने दूर से ही जोर से पुकारा—"कान्त।"
डा० कान्त को पिता का स्वर सुनाई दिया। वह उन्हें भीड़ में खोजने लगे। शीघ्र ही उनकी दृष्टि विमल बाबू पर पड़ गई और वह 'पिता जी' कहकर दौड़ पड़े।
रञ्जना को समझते देर न लगी कि विमल बाबू कौन हैं। उनके बढ़ते पैर रुक गये। एक क्षण के लिये वह किंकर्तव्य विमूढ़ होकर खड़ी रह गईं।
"लो सम्हालो यह अपना बच्चा।" विमल बाबू का यह स्वर रंजना के कान में पड़ा।
रंजना जैसे सोते से जाग पड़ीं। वह अपने को न रोक सकीं और दौड़ते हुये बीच में खड़े होकर कहा—"किसका बच्चा है यह?"
"जिसके साथ तुम शादी करने जा रही हो।" विमल बाबू ने कहा।
रंजना को वातावरण घूमता हुआ सा दिखाई पड़ने लगा। परन्तु शीघ्र ही अपने को सम्हालते हुये उन्होंने कहा—"झूठ सरासर झूठ।"
"झूठ नहीं सत्य है।" भीड़ के पीछे से आवाज आई।
सबकी दृष्टि स्वर के उद्गम स्थान को खोजने लगी। शीला बढ़ती आ रही थीं। शीला को देखकर डा० कान्त के मुँह से "शीला!"
विमल बाबू के हाथ से बच्चे कों लेकर शीला ने पति की

हुये कहा—"लीजिये देखिये इसे, यह आपका ही बच्चा है।"

"तुम कहाँ थी शीला ?"

"इसे पहले देखिये। यह बहुत बीमार है।"

डा० कान्त ने बच्चे को शीला के हाथ से ले लिया और ज्यों ही शाल हटाकर देखा तो सन्न रह गये वह।

"कैसा है मुन्ना ?" शीला ने पति के मुँह की ओर देखते हुये कहा।

डा० कान्त चुप।

"बोलिये, बोलते क्यों नहीं ? चुप क्यों हैं आप ?"

डा० कान्त पत्थर की मूर्ति के समान बच्चे को हाथों में थामे निश्चल खड़े थे।

शीला ने विमल बाबू की ओर देखते हुये कहा—"पिता जी ! आप ही पूँछिये न। ये तो कुछ बोलते ही नहीं ?"

"बहू ! काफी देर होगई तुम्हें यहाँ तक पहुँचने में। मुन्ना नहीं रहा।"

शीला के मुँह से 'मुन्ना' शब्द की जोर से चीख निकली और वहीं अचेत होकर गिर पड़ीं।

उपसंहार

शीला के पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो जाने के उपरान्त एक दिन एक साथ बैठ कर भोजन करते हुये विमल बाबू ने कहा—"देखो बेटा, गृहलक्ष्मी की उपेक्षा करके कोई भी सुखी नहीं रह सकता।"

"और अवज्ञाकारी पुत्र भी तो सुखी नहीं रह सकता।" शीला की बात सुनकर सब लोग हँस पड़े।

"बेटा, यह उपेक्षिता की शिक्षा है।" विमला की आत्मा बोल उठी।